# महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय

(संसद द्वारा पारित अधिनियम 1997, क्रमांक 3 के अंतर्गत स्थापित केंद्रीय विश्वविद्यालय)

Mahatma Gandhi Antarrashtriya Hindi Vishwavidyalaya

(A Center University Established by Parliament by Act No. 3 of 1997)


## एम.बी.ए. पाठ्यक्रम

## पाठ्यक्रम कोड : MBA - 001

## प्रथम सेमेस्टर

## पाठ्यचर्या कोड : MBA – 403

## पाठ्यचर्या का शीर्षक : प्रबंधकीय लेखांकन


## दूर शिक्षा निदेशालय

महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय

पोस्ट- हिंदी विश्वविद्यालय, गांधी हिल्स, वर्धा - 442001 (महाराष्ट्र)

1. आधार भूत जानकारी

| सत्र /वर्ष | विषय कोड | विषय का नाम | क्रेडिट अंक | प्रकार |
|---|---|---|---|---|
| प्रथम सत्र | **MBA 104** | प्रबंधकीय लेखांकन | 4 | **सैद्धांतिक** |

2. खंड

| खंड | खंडो के नाम |
|---|---|
| 1 | प्रबंधकीय लेखांकन की अवधारणा |
| 2 | बजट कार्यशील पुंजी और धन प्रबंध |
| 3 | पूंजी संरचना और पूंजी के प्रवाह |
| 4 | सीमान्त लागत |

3. पाठ्य विवरण

खंड 1

| इकाई | **इकाईयों का विस्तृत विवरण** |
|---|---|
| 1 | लेखांकन का परिचय<br>प्रस्तावना उददेश्य, लेखांकन का अर्थ,लेखांकन की आवश्यकता ,लेखांकन का विकाश |
| 2 | वित्तिय विवरण<br>प्रस्तावना उददेश्य, वित्तिय विवरणों के प्रकार, वित्तिय विवरणों के विश्लेषण की विधियां |

खंड 2 बजट कार्यशील पूंजी और धन प्रबंध

| इकाई | **इकाईयों का विस्तृत विवरण** |
|---|---|
| 1 | बजट एवं बजटरी नियंत्रण<br>प्रस्तावना उददेश्य, बजट का अर्थ एवं परिभाषा बजटरी नियत्र |
| 2 | कार्यशील पूंजी की अवधारणा<br>प्रस्तावना उददेश्य, कार्यशील पूंजी की अवधारणा, कार्यशील पूंजी के प्रकार,परिचालन चक्र,संतुलित कार्यशील पूंजी, कार्यशील पूंजी को प्रभावित करने वाले तत्व या कारक |
| ३ | रोकड़ का प्रबंध<br>प्रस्तावना उददेश्य, अनुकुलतम रोकड़ का निर्धारण |

खंड 3 पूंजी संरचना और पूंजी के प्रवाह

| इकाई | **इकाईयों का विस्तृत विवरण** |
|---|---|
| 1 | वित्त विनियोग एवं पूंजी ढांचा |

| | |
|---|---|
| | प्रस्तावना उददेश्य, विनियोग पूंजी ढांचा निर्णय,विनियोग को प्रभावित करने वाले कारक,विनियोग हेतु निर्णयन का महत्व, पूंजी के विभिन्न स्त्रोंतो की लागत,प्रकार, पूंजी लागत का महत्व, पूंजी के विभिन्न साधनों की लागत, पूंजी लागत का भारित औसत, |
| 2 | **अनुकूलतम पूंजी संरचना**<br>प्रस्तावना उददेश्य, मूल्यांकन एवं प्रत्याय दरें, औसत प्रत्याय विधि, शुद्ध वर्तमान मूल्य विधि, आन्तरिक प्रत्याय दर विधि |
| 3 | **कोष प्रवाह विवरण का परिचय**<br>प्रस्तावना उददेश्य, कोष प्रवाह विवरण का अर्थ एवं परिभाषाऐं, कोष प्रवाह विवरण के उददेश्य, कोष प्रवाह विवरण का महत्व, कोष प्रवाह विवरण की सीमायें, कोष प्रवाह विवरण तथा स्थिति विवरण मे अन्तर कोष प्रवाह विवरण बनाना, रोकड प्रवाह विवरण |

## खंड 4 सीमान्त लागत

| इकाई | इकाईयों का विस्तृत विवरण |
|---|---|
| 1 | **सीमान्त लागत लेखांकन**<br>प्रस्तावना उददेश्य, सीमान्त लागत का अर्थ एवं परिभाषायें, सीमान्त लागत एवं अवशोषण लागत लेखांकन मे अन्तर, सीमान्त लागत लेखांकन का महत्व, सीमान्त लागत लेखांकन की सीमायें |
| 2 | **सीमान्त लागत का वर्गीकरण**<br>प्रस्तावना उददेश्य, परिवर्तनशीलता के आधार पर लागत का वर्गीकरण,अर्द्ध परिवर्तनशील उपरिव्ययों के विभाजन की विधियां, सीमान्त लागत विवरण ,सीमान्त लागत का समीकरण एवं सम विच्छेद विश्लेषण |
| 3 | **सम विच्छेद बिन्दु**<br>प्रस्तावना उददेश्य, परिभाषा,सम विच्छेद बिन्दु के प्रकार, सुरक्षा सीमा |

विषय सूची

खण्ड - 1

इकाई- 1 प्रबंधकीय लेखांकन की अवधारणा

अध्ययन के उद्देश्य

1.0 प्रस्तावना

1.1 उद्देश्य

1.2 लेखांकन का अर्थ

1.3 लेखांकन की आवश्यकता

1.4 लेखांकन का विकास

इकाई-2 वित्तीय विवरण

अध्ययन के उद्देश्य

2.0 प्रस्तावना

2.1 उद्देश्य

2.2 वित्तीय विवरणों के प्रकार

2.3 वित्तीय विवरणों के विश्लेषणों की विधियां

खंड - 2

इकाई- 1 बजट एवं बजटरी नियंत्रण

अध्ययन के उद्देश्य

3.0 प्रस्तावना

3.1 उद्देश्य

3.2 बजट का अर्थ एवं परिभाषा

3.3 बजटरी नियंत्रण के प्रमुख तत्व

3.4 बजटरी नियंत्रण पद्धति के उद्देश्य

इकाई - 2 कार्यशील पूंजी की अवधारणा

अध्ययन के उद्देश्य

4.0 प्रस्तावना

4.1 उद्देश्य

4.2 कार्यशील पूंजी की अवधारणा

4.3 कार्यशील पूंजी के प्रकार

4.4 परिचालन चक्र

4.5 संतुलित कार्यशील पूंजी

4.6 कार्यशील पूंजी को प्रभावित करने वाले कारक या तत्व

इकाई - 3 रोकड का प्रबंध

अध्ययन के उद्देश्य

5.0 प्रस्तावना

5.1 उद्देश्य

5.2 अनुकूलतम रोकड का निर्धारण

5.3 रोकड निर्धारण करने के उद्देश्य

5.4 रोकड प्रवाह प्रबंध

खंड - 3

इकाई - 1 वित्त विनियोग एवं पूंजी ढांचा

अध्ययन के उद्देश्य

6.0 प्रस्तावना

6.1 उद्देश्य

6.2 विनियोग एवं पूंजी ढांचा निर्णय

6.3 विनियोग को प्रभावित करने वाले कारक

6.4 विनियोग हेतु विनिर्णयन का महत्व

6.5 पूंजी के विभिन्न साधनों का लागत

6.6 प्रकार

6.7 पूंजी लागत का महत्व

6.8 पूंजी के विभिन्न साधनों की लागत

6.9 पूंजी लागत का भारित औसत

इकाई - 2 अनुकूलतम पूंजी संरचना

अध्ययन के उद्देश्य

7.0 प्रस्तावना

7.1 उद्देश्य

7.2 मूल्यांकन एवं प्रत्याय दरें

7.3 औसत प्रत्याय विधि

7.4 शुद्ध वर्तमान मूल्य विधि

7.5 आन्तरिक प्रत्याय दर विधि

इकाई - 3 कोष प्रवाह विवरण का परिचय

अध्ययन के उद्देश्य

8.0 प्रस्तावना

8.1 उद्देश्य

8.2 कोष प्रवाह विवरण का अर्थ एवं परिभाषाएं

8.3 कोष प्रवाह विवरण के उद्देश्य

8.4 कोष प्रवाह विवरण का महत्व

8.5 कोष प्रवाह विवरण की सीमाएं

8.6 कोष प्रवाह विवरण तथा स्थिति विवरण में अंतर

8.7 कोष प्रवाह विवरण बनाना

8.8 रोकड प्रवाह विवरण

खंड - 04

इकाई - 1 सीमांत लागत लेखांकन

अध्ययन के उद्देश्य

9.0 प्रस्तावना

9.1 उद्देश्य

9.2 सीमांत लागत का अर्थ एंव परिभाषाएं

9.3 सीमांत लागत एवं अवशोषण लागत लेखांकन में अंतर

9.4 सीमांत लागत लेखांकन का महत्व

9.5 सीमांत लागत लेखांकन की सीमाएं

इकाई - 2 सीमांत लागत का वर्गीकरण

अध्ययन के उददेश्य

10.0 प्रस्तावना

10.1 उद्देश्य

10.2 परिवर्तनशीलता के आधार पर लागत का वर्गीकरण

10.3 अर्द्ध परिवर्तनशील उपरिव्ययों के विभाजन की विधियां

10.4 सीमांत लागत विवरण

10.5 सीमांत लागत समीकरण एवं सम विच्छेद विश्लेषण

इकाई - 3 सम विच्छेद बिन्दू

अध्ययन के उद्देश्य

11.0 प्रस्तावना

11.1 उद्देश्य

11.2 परिभाषा

11.3 सम विच्छेद बिन्दू के प्रकार,

11.4 सुरक्षा सीमा

# यूनिट – 1

## प्रबन्ध लेखांकन – प्रस्तावना
## (Management Accounting – An Introducation)

लेखांकन क्रिया कोई नवीन क्रिया नहीं है। लेखे रखने की क्रिया किसी न किसी रूप में उस समय से विद्यमान है जब से व्याख्यान का जन्म हुआ है। सामान्य लेखाकर्म, जिसे हम केलव लेखाकर्म भी कह सकते हैं और आज वित्तीय लेखाकर्म के नाम से लेखाकर्म की केवल एक शाखा के रूप में ही माना जाता है, व्यवसायी को यह जानकारी प्रदान करता है कि एक निश्चित अवधि में उसकी व्यावसायिक क्रियाओं का परिणाम क्या रहा? उन घटनाओं के परिणामस्वरूप उसे शुद्ध लाभ शुद्ध हानि कितनी हुई तथा उसकी सम्पत्तियां एवं दायत्वि एक निश्चित तिथि को क्या हैं ? दिन–प्रतिदिन जो कुछ भी व्यवहार होते हैं, उनका लेखा करने के लिए कुछ प्रलेख, पुस्तकें, लेखे तथा विवरण बनाये एवं रखे जाते हैं। एक लेखांकन अवधि के अन्त में इनकी सहायता से अन्तिम खाते (लाभ–हानि खाता तथा चिट्ठा) तैयार किये जाते है। ये व्यवसायी को तो संबंधित व्यापार की गतिविधियों के परिणामों की जानकारी देते ही हैं, किन्तु साथ–साथ बाहरी पक्षकारों जैसे लेनदारों, ऋणदाताओं, विनियोगकर्त्ताओं, सरकार, श्रमिक व सामान्य जनता को भी सूचना प्रदान करते हैं। इन सूचनाओं के आधार पर ये विभिन्न पक्षकार संस्था की शोधनक्षमता, लाभदायकता तथा प्रबंधकीय कुशलता, करदान क्षमता आदि के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। परन्तु वित्तीय लेखांकन गत अवधि में एक व्यवसाय के मामलों के शब परीक्षण के रूप में ही कार्य करता है। यह आधुनिक प्रबन्ध की आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर पाता। ए0सी0 लिटिलटन (Littleton A.C) ने ठीक ही कहा है, ''प्रबन्धकीय उपयोग हेतु बहुत से महत्त्वपूर्ण समंकों जैसे बाजार की मांग, प्रतिस्पर्द्धा की स्थिति, सामान्य व्यावसायिक दशाएं, इन्जीनियरिंग डिजाइन, व्यक्तिगत सूचनाएं, कानूनी नियमन की सीमाएं आदि की पूर्ति करना लेखाकर्म की योग्यता के बाहर है।'' व्यवसाय का बढ़ता हुआ आकार, उत्पादन स्तर में वृद्धि, तकनीकी प्रविधियों की जटिलता, सरकारी हस्तक्षेप तथा उद्योगों के सामाजिक दायित्व के प्रति जनता की जागरूकता के फलस्वरूप भावी नियोजन, नीतियों एवं योजनाओं का मूल्यांकन, लागत नियंत्रण, उत्तरदायित्वों एवं अधिकारों का विभाजन तथा शीघ्र एवं उचित निर्णयन आदि नवीन आवश्यकताओं का प्रादुर्भाव हुआ है। इन आवश्यकताओं की पूर्ति सामान्य लेखांकन या वित्तीय लेखांकन द्वारा सम्भव प्रतीत नहीं हुई, इसलिए प्रबन्धन लेखांकन का विकास व्यवसाय प्रबन्ध की समस्याओं को पूरा करने के लिए हुआ है।

वस्तुतः वर्तमान समय में प्रबन्ध और लेखा–विधि कार्य एक दूसरे के काफी निकट आ गये हैं और यह माना जाता है कि व्यवसाय के कुशल नियोजन, नियंत्रण और निर्णयन के लिए लेखा–विधि की भूमिका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। लेखा–विधि की यह भूमिका इतनी विस्तृत और महत्त्वपूर्ण है कि प्रबन्धकों की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए लेखांकन की एक नई शाखा का विस्तार किया गया है जिसे प्रबन्ध 'लेखांकन' कहते हैं। प्रबन्ध लेखांकन वास्तव में वित्तीय और लागत लेखांकन का व्यावहारिक पहलू है।

प्रबन्ध लेखांकन का उद्भव (Origin of Management Accounting) प्रबन्ध लेखांकन का विचार जेम्स एच॰ ब्लिस (James H. Bliss) के मौलिक प्रयत्नों से शुरू हुआ। उनके अनुसार प्रबन्ध लेखा समंको के बुद्धिमत्तापूर्ण व प्रभावशाली प्रयोग द्वारा ही व्यवसाय संचालन व स्थिति के सम्बन्ध में पूर्ण जानकारी प्राप्त कर सकता है और उस पर अधिकतम नियन्त्रण कर सकता है।

'प्रबन्ध लेखांकन' शब्दावली का उद्भव अभी हाल के कुछ दशकों में ही हुआ है। इस शब्द का सन् 1950 में आंग्ल–अमेरिकी उत्पादकता परिषद (Anglo-American Council on Productivity)

के तत्वावधान में संयुक्त राज्य अमेरिका (U.S.A.) का भ्रमण करने गये लेखापालकों के एक दल द्वारा सर्वप्रथम प्रयोग किया गया था। इस अध्ययन दल (Study group) के प्रतिवेदन देने के पूर्व तक लागत लेखांकन की पारिभाषिक शब्दावली में प्रबंध लेखांकन शब्द का कहीं कोई सन्दर्भ नहीं था।

स्पष्ट है कि लेखा–विधि के एक पृथक विषय के रूप में प्रबन्धकीय लेखा–विधि का विकास लगभग छः दशकों का ही है। इस प्रकार सन् 1950 से यह शब्द अमेरिका तथा अन्य देशों में काफी प्रचलित हो गया है।

## प्रबन्धकीय लेखा–विधि का विकास
## (Evolution of Management Accounting)

प्रारम्भ में लेखा–विधि का कार्य–क्षेत्र लेन–देनों के अभिलेखन तथा वित्तीय स्थिति और आय के आवधिक सारांश (अर्थात् चिट्ठा व लाभ–हानि खाता) के तैयार करने पर सीमित था। यद्यपि यह सारांश पर्याप्त उपयोगी होता है, व्यवसाय के बाह्य पक्ष इससे महत्वपूर्ण सूचनायें प्राप्त करते हैं किन्तु इससे भावी क्रियाओं के नियोजन और चालू क्रियाओं को निर्देशित और नियंत्रित करने में कोई सहायता नहीं मिलती है।

वैज्ञानिक प्रबन्ध आन्दोलन ने व्यवसाय के प्रशासन व कार्यवाहियों में प्रबन्धकों के मार्गदर्शन के लिए विश्वसनीय परिणामात्मक लेखा–समंकों की सुविस्तृत मांग जागृत कर दी जिससे बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों में लेखा–विधि का पुराना स्वरूप अपर्याप्त सिद्ध हो गया। समय व परिस्थितियों की मांग ने लेखपाल के दृष्टिकोण की विस्तृत बना दिया तथा लेखा–विधि में भूतकालीन घटनाओं के अभिलेखन के साथ–साथ वर्तमान और भावी घटनाओं को भी सम्मिलित किया जाने लगा और इस प्रकार लेखा–विधि के क्रमिक विकास से आज यह आधुनिक प्रबन्ध प्रौद्योगिकी का एक अभिन्न अंग बन गयी है।

इस प्रकार यद्यपि नियन्त्रणीय कार्य (controllership function), वित्तीय नियन्त्रण, क्रियात्मक शोध (operational research), प्रबन्ध सेवायें, प्रणाली कार्य–पद्धतियाँ और कार्य–विधि, उत्पादन नियोजन और प्रबन्ध से सम्बन्धित अन्य पद्धतियों के सम्बन्ध में पहले भी पर्याप्त सुना गया था।

प्रबन्धकीय लेखा–विधि के विकास की प्रक्रिया लागत लेखा–विधि में ''प्रमाप परिव्ययन'' (Standard Costing) के समावेश से प्रारम्भ होती है। इस तकनीक के समावेश से प्रत्येक निरीक्षक को पूर्व–निर्धारित प्रमाणित परिव्ययों के सम्बन्ध में उसके वर्तमान निष्पादनों से अवगत कराया जाता है तथा संस्था में लागत नियन्त्रण को पुष्ट बनाया जाता है। इसी तरह 'बजटन' तकनीक के विकास से भावी वित्तीय नियोजन के उसी विचार को चुनी गयी समयावधि में सभी क्रियाओं को सम्मिलित करने के लिए विस्तृत किया गया। इस तकनीक के समावेश से प्रबन्ध अपनी परिचालन योजनाओं (Operating Plans) के प्रत्याशित परिणामों का पूर्वानुमान भी लगा सकता है तथा परिणामों को सुधारने के लिये वह इन योजनाओं में परिवर्तन भी ला सकता है।

ऐतिहासिक प्रतिवेदनों में लेखापाल का सम्बन्ध केवल उन्हीं घटनाओं से होता है जो कि हो चुकी हैं। किन्तु प्रबन्ध–नियोजन में मार्ग–दर्शन के लिये समंक विकसित करने में लेखापाल को समस्त सम्भावित विकल्पों पर विचार करना चाहिये जिससे प्रबन्ध सर्वोत्तम विकल्प का चयन कर सके। चूंकि व्यावसायिक व औद्योगिक संस्थाओं में कार्यकरण का स्तर या उत्पादन–मात्रा सामान्यतया एक महत्वपूर्ण स्वतन्त्र कारक होता है, अतः लागत, मात्रा और लाभ के बीच कार्यात्मक सम्बन्धों के मापन के लिये 'सम–विच्छेद विश्लेषण', 'लाभ–मात्रा विश्लेषण' आदि तकनीकों का व्यापक विकास किया गया है। लागत–मात्रा–लाभ सम्बन्धों के सतत् और क्रमबद्ध विश्लेषण के लिये 'लोचदार बजटन' और 'सीमान्त परिव्यय' की तकनीकों का प्रयोग किया जाता है। इन तकनीकों के द्वारा उत्पादन–मात्रा के अतिरिक्त लागत कारकों के मूल्यों, उत्पादन पद्धतियों, उत्पाद मिश्रण और

विक्रय मूल्य आदि कारकों में परिवर्तनों का लागत और आय पर पड़ने वालों प्रभावों का मूल्यांकन किया जाता है तथा सर्वोत्तम कार्य स्तर ज्ञात किया जाता है। इसे 'लाभ–नियोजन' की तकनीक की संज्ञा दी जाती है। किसी प्रस्तावित योजना की स्वीकार्यता पर प्रबन्धकीय निर्णय के लिये 'विनियोजित पूंजी पर प्रत्याय की दर', विक्रय मात्रा तथा बाजार भाग' के आधारों का प्रयोग किया जाता है। इसी तरह पूंजीगत परियोजनाओं की तुलनात्मक वांछनीयता पर निर्णय के लिए 'अदायगी अवधि', असमायोजित प्रत्याय', 'समय समायोजित प्रत्याय' आदि को आधार बनाया जाता है।

## प्रबंधकीय लेखा–विधि का अर्थ और परिभाषा
## (Meaning and Definition of Management Accounting)

प्रबन्धकीय लेखा–विधि प्रबन्ध के प्रति लेखांकन सेवा है। वस्तुतः यह लेखा–विधि का प्रबन्धक के दृष्टिकोण से उपयोग है। इसे प्रबन्धोन्मुखी लेखा–विधि (Management Oriented Accouting) कहा जा सकता है। इसमें लेखा–कार्य का पुनर्विन्यास (Reorient) करके उसे प्रबन्धकीय कुशलता वृद्धि में सहायक हो, प्रबन्धकीय लेखा–विधि कहलाता है। मैसर्स एन्थौनी और हैकिमिअन के शब्दों में, ''प्रबन्धकीय लेखा–विधि लेखा–अंकों का प्रबन्धकीय समस्याओं, विशेषकर कार्यकरण से सम्बन्धित समस्याओं के हल के लिये प्रयोग है।'' इसलिये कुछ विद्वान इस विषाय के लिए 'प्रबन्ध के लिये लेखा–विधि (Accounting for Management) शब्द का प्रयोग अधिक करते हैं। वस्तुतः यह कोई एक नया विषय न होकर पुराने औजार का नया प्रयोग मात्र ही है। इसे वित्तीय लेखा–विधि की अगली सीढ़ी कहा जा सकता है क्योंकि जहां पर वित्तीय लेखा–विधि का कार्य–क्षेत्र समाप्त होता है, वहीं से प्रबन्धकीय लेखा–विधि प्रारम्भ होती है। इस प्रकार इसे वित्तीय लेखा–विधि का पूरक कहा जा सकता है। इसके अन्तर्गत लेखा–सूचनाओं का उद्देश्यानुसार विश्लेषण एवं व्याख्या की जाती है और इन्हें प्रबन्ध के समक्ष प्रस्तु किया जाता है जिससे उसे अपने नीति–निर्धारण, नियोजन, निर्णयन तथा नियन्त्रण के कार्यों के निष्पादन में सरलता रहे। इसीलिए इसे प्रबन्ध का एक यन्त्र (tool of management) भी कहा जाता है।

प्रबन्धकीय लेखा–विधि की एक अति सरल और संक्षिप्त परिभाषा रॉबर्ट एन्थौनी ने की है। उनके शब्दों में, ''प्रबन्धकीय लेखा–विधि का सम्बन्ध लेखा–सूचना से है जोकि प्रबन्ध के लिये उपयोगी होती है।'' दो बातें स्पष्ट है : पहली, प्रबन्धकीय लेखा–विधि के अन्तर्गत प्रयोग की जाने वाली सूचनायें वित्तीय लेखा–विधि से प्राप्त होती है तथा दूसरी, इसके अन्तर्गत केवल उन्हीं लेखा–सूचनाओं का संकलन, विश्लेषण और व्याख्या की जाती है। जोकि व्यवसाय के संचालन में प्रबन्धकों के लिये उपयोगी हों। दूसरे शब्दों में, इसके अन्तर्गत वित्तीय लेखों से प्राप्त सूचनाओं को प्रबन्ध के समक्ष इस प्रकार रखा जाता है जिससे कि उसे व्यवसाय के संचालन, नीति निर्धारण व नियन्त्रण में सरलता रहे।

प्रबन्धकीय लेखा–विधि की सर्वाधिक स्वीकार्य परिभाषा आंग्ल–अमरीका उत्पादकता परिषद की है। इसके अनुसार, ''एक व्यावसायिक संस्था के दिन–प्रति–दिन के संचालन तथा नीति–निर्धारण में प्रबन्ध की सहायता हेतु लेखा–सूचनाओं का प्रस्तुतीकरण ही प्रबन्धकीय लेखा–विधि है।'' इस परिभाषा से प्रकट होता है कि प्रबन्धकीय लेखा–विधि का सम्बन्ध लेखा–सूचनाओं के प्रस्तुतिकरण से है, न कि उसकी तैयारी मात्र से। वास्तव में इसका आशय वित्तीय लेखों का नये सिरे से लिखना नहीं है वरन् इसका आशय तो वित्तीय लेखा–विधि के अन्तर्गत तैयार किये गये लेखों का विश्लेषण एवं व्याख्या करके प्रबन्ध के समक्ष उचित ढंग से प्रस्तुत करने से है। लेखा–सूचनाओं के इस प्रकार प्रस्तुतीकरण का उद्देश्य प्रबन्ध को व्यवसाय के कुशलतापूर्वक संचालन में सहायता देना होता है।

श्री टी0जी0 रोज ने भी अपनी परिभाषा में इस बात पर ही जोर दिया है। उनके शब्दों में, ''प्रबन्धकीय लेखा–विधि लेखा–सूचना का इस प्रकार अनुकलन, विश्लेषण, निदान तथा व्याख्या है

जिससे प्रबन्ध को सहायता मिलती है।''

वाल्टर मैक फारलैण्ड – ''प्रबन्धकीय लेखा–विधि किसी उपक्रम के नियोजन और परिपालन में सभी स्तरों के प्रबन्ध के लिए उपयोगी वित्तीय समंक जुटाने से सम्बन्धित है।''

''लेखा–विधि का कोई भी रूप जोकि व्यवसाय को अधिक कुशलतापूर्वक संचालन योग्य बनाये, प्रबन्धकीय लेखा–विधि माना जा सकता है।''

दी इन्स्टीट्यूट आफ चार्टर्ड एकाउन्टैनट्स इंग्लैण्ड – ''प्रबंधकीय लेखाकर्म शब्द का प्रयोग उन लेखा–पद्धतियों, प्रणालियों और तकनीकों का वर्णन करने के लिये किया जाता है जो कि विशिष्ट ज्ञान तथा योग्यता के संयोजन से प्रबन्ध को अपने लाभों के अधिकतम या हानियों को न्यूनतम करने के कार्य में सहायता प्रदान करती है।''

## प्रबन्ध लेखाविधि की विशेषताएं या प्रकृति
## (Characteristics or Nature of Management Accounting)

प्रबन्ध लेखाविधि के अन्तर्गत लेखांकन सूचनाओं को प्रबन्ध के समक्ष इस प्रकार प्रस्तुत किया जाता है जिससे निर्णय लेने में सहायता मिल सके। वस्तुतः प्रबन्ध लेखा–विधि एक विज्ञान है किन्तु इसमें कुछ सीमा तक मानवीय निर्णय एवं भावनाएं भी निहित होती हैं। जो सूचनाएं संकलित एवं विश्लेषित की जाती है उन पर संकलनकर्त्ता के व्यक्तिगत निर्णयों का प्रभाव भी पड़ता है। इस रूप में प्रबन्ध लेखाविधि की प्रकृति कला की भी होती है। प्रबन्ध लेखा–विधि की प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित हैं –

(1) **लेखांकन सूचनाएं प्रदान करना** (Provide Accounting Information) – प्रबन्ध लेखाविधि लेखांकन सूचनाओं पर आधारित है, इनके अन्तर्गत लेखांकन सूचनाओं का विश्लेषण करके उन्हें प्रबन्ध के समक्ष इस प्रकार प्रस्तुत किया जाता है कि प्रबन्ध द्वारा अपने कार्यों को कुशलतापूर्वक निष्पादन किया जा सके।

(2) **कारण एवं प्रभाव का अध्ययन** (Study of Cause and Effect) – वित्तीय लेखाविधि में विभिन्न विवरणों को तैयार करके उनके आधार पर परिणाम ज्ञात किया जाता है किन्तु प्रबन्ध लेखांकन में उनके कारण एवं प्रभावों का अध्ययन किया जाता है। उदाहरणार्थ संस्था में हानि है तो उसके कारणों का अध्ययन करना तथा यदि संस्था में लाभ है तो उसका विभिन्न तत्वों के साथ सम्बन्ध स्थापित करना प्रबन्ध लेखाविधि का कार्य है।

(3) **समन्वित पद्धति** (Integrated System) – प्रबन्ध लेखांकन में सूचनाओं को प्रबन्ध के लिए अधिक उपयोगी बनाने के लिए प्रमाप लेखाविधि, सीमांत लागत–विधि, बजटरी नियन्त्रण तथा वित्तीय विश्लेषण आदि विभिन्न तकनीकों का प्रयोग किया जाता है। इस कारण इसे समन्वित पद्धति कहा जाता है।

(4) **चयनात्मक प्रकृति** (Selective Nature) – प्रबन्ध लेखांकन चयनात्मक प्रकृति की है। इसके अन्तर्गत विभिन्न सूचनाओं में से केवल उन्हें सूचनाओं का विश्लेषण एवं प्रस्तुतीकरण किया जाता है जो प्रबन्ध के लिए अधिक उपयोगी होती है।

(5) **लागत तत्वों पर जोर** (Emphasis on Elements of Cost) – प्रबन्ध लेखाविधि में लागत के वर्गीकरण एवं विश्लेषण पर अधिक ध्यान दिया जाता है। निर्णयन के दृष्टिकोण के कुल लागत को स्थिर, परिवर्तनशील और अर्द्ध परिवर्तनशील लागतों में विभाजित कर दिया जाता है। सीमान्त विश्लेषण, प्रत्यक्ष लागत–विधि और लागत–मात्रा–लाभ विश्लेषण आदि भी इसी वर्गीकरण पर आधारित हैं।

(6) **भविष्य से सम्बन्धित** (Concerned with future) – प्रबन्ध लेखाविधि भविष्य से सम्बन्धित है। ये प्रबन्ध को सभी आवश्यक सूचनाएं प्रदान करता है जिससे कि नियोजन करने और भविष्य में

सम्बन्धित पूर्वानुमान में सहायता प्राप्त हो सके। वास्तविक निष्पादन होने पर उसकी आलोचनात्मक जांच की जाती है। बजटरी नियन्त्रण और प्रमाप परिव्यय प्रणाली में भविष्य से सम्बन्धित पूर्वानुमान तैयार किये जाते हैं।

(7) **निश्चित नियमों एवं प्रमापों पर आधारित नहीं** (No fixed Norms followed) – प्रबन्ध लेखाविधि में सूचनाओं का विश्लेषण एवं प्रस्तुतीकरण किया जाता है जिससे कि प्रबन्ध अपने कार्यों का निष्पादन कुशलतापूर्वक कर सके। किन्तु इसके लिए वित्तीय लेखांकन की भांति निश्चित नियमों एवं सिद्धान्तों का प्रयोग नहीं किया जाता क्योंकि सूचनाओं का विश्लेषण एवं प्रस्तुतीकरण परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तित हो जाता है। इतना ही नहीं प्रबन्ध लेखांकन के समान उपकरणों का प्रयोग एक संस्था से दूसरी संस्था में भिन्न हो सकता है। लेखांकन सूचनाओं का विश्लेषण इसके प्रयोग करने वाले व्यक्तियों पर निर्भर करता है। इसी प्रकार निष्कर्ष निकालना भी प्रबन्धकीय लेखापालक के बौद्धिक स्तर पर निर्भर करता है। वस्तुतः प्रत्येक संस्था लेखांकन सूचनाओं का अपने ढंग से प्रयोग करती है।

(8) **विशिष्ट पद्धतियों का प्रयोग** (Use of Special Technique) – प्रबन्ध लेखाविधि में लेखांकन सूचनाओं को प्रबन्ध हेतु उपयोगी बनाने के लिए विशिष्ट तकनीकों का प्रयोग किया जाता है जैसे वित्तीय नियोजन, वित्तीय विश्लेषण, प्रमाप परिव्ययन, बजटरी नियन्त्रण आदि। किस तकनीक का प्रयोग कब उपयोगी होगा यह सूचनाओं की उपलब्धता और परिस्थितियों पर निर्भर करता है।

(9) **समंक प्रदान करना न कि निर्णय** (Provide data, Not the decision) – प्रबन्ध लेखांकन में प्रबन्ध को आवश्यक सूचनाएं प्रदान की जाती है न कि निर्णय। उपलब्ध लेखांकन सूचनाओं के आधार पर निर्णय लेने एवं उन्हें क्रियान्वित करने का कार्य प्रबन्ध का होता है।

## प्रबन्धकीय लेखा–विधि के कार्य
## (Functions of Management Accounting)

प्रबन्धकीय लेखा–विधि, लेखा–विधि की ही एक शाखा है। इसका विकास प्रबन्ध को उसके कार्यों के कुशलतापूर्वक निष्पादन में सहायता प्रदान करने के लिये हुआ। मूल रूप से यह प्रबन्धकीय समस्याओं के हल करने में वित्तीय लेखा–विधि का एक विशिष्ट प्रयोग है। इसमें वित्तीय लेखा–विधि से प्राप्त सूचनाओं को प्रबन्धकीय आवश्यकतानुसार विश्लेषित एवं व्याख्या करके उन्हें प्रबन्ध के सम्मुख प्रस्तुत किया जाता है ताकि वह अपने कार्यों को कुशलतापूर्वक निष्पादित कर सके। इस प्रकार प्रबन्धकीय लेखा–विधि के कार्य निम्नांकित हैं :–

(1) **पूर्वानुमान तथा नियोजन** (Forecasting and Planning) : संस्था के अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन लक्ष्य निर्धारित करना तथा इनकी प्राप्ति के लिये योजना बनाना प्रबन्धकीय लेखा–विधि का प्रमुख कार्य है। इसके अन्तर्गत विक्रय, उत्पादन, नकद प्राप्ति व भुगतान, लागत, आगम व लाभ आदि के पुर्वानुमान लगाये जाते हैं और इन पूर्वानुमानों के आधार पर भावी नियोजन किया जाता है। पूर्वानुमान तथा आयोजन के लिये सम्भाव्यता (Probability), प्रवृत्ति (trend), सह–सम्बन्ध (correlation) आदि सांख्यिकीय तकनीकों तथा कोष–प्रवाह विवरण, बजटन, पूंजी–व्यय आयोजन, सीमान्त परिव्ययन आदि प्रबन्धकीय लेखा–विधि की तकनीकें प्रयोग की जाती है।

(2) **संगठित करना** (Organising) : प्रबन्ध द्वारा स्वीकृत योजनाओं के क्रियान्वयन हेतु व्यावसायिक संस्था के उपलब्ध स्वल्प मानवीय तथा भौतिक साधनों के सर्वोत्तम एवं व्यवस्थित प्रयोग के लिये कार्यविधि निर्धारित करना प्रबन्धकीय लेखा–विधि का दूसरा महत्वपूर्ण कार्य है। इसके लिये प्रबन्ध–लेखापाल संस्था के विभिन्न कर्मचारियों का दायित्व–निर्धारण तथा अधिकार–रेखांकन करता है।

(3) **समन्वय** (Co-ordinating) : संस्था की सफलता के लिये इसके विभिन्न क्रियाकलापों में

समन्वय स्थापित करना आवश्यक होता है। समन्वय से विभागीय कुशलता बढ़ती है तथा संस्था के लाभ अधिकतम होते हैं। प्रबन्धकीय लेखा–विधि विभिन्न व्यावसायिक क्रियाओं में समन्वय स्थापित करती है। इसके लिये बजट प्रणाली महत्वपूर्ण है।

(4) **निष्पादन पर नियन्त्रण** (Controlling Performace) : कार्य–परिणामों की क्रमबद्ध जांच तथा नियन्त्रण का कार्य भी प्रबन्धकीय लेखा–विधि द्वारा ही सम्पादित होता है। इसके द्वारा यह विश्वास प्राप्त किया जाता है कि वास्तविक परिणाम योजनानुसार हुए हैं या नहीं। महत्वपूर्ण विचलनों की दशा में सुधारात्मक कार्यवाही भी इसी कार्य के अन्तर्गत आती है।

प्रबन्धकीय लेखा–विधि की प्रमाप–परिव्ययन तकनीक से परिव्यय नियन्त्रण तथा बजटरी नियंत्रण तकनीक से कार्यात्मक व विभागीय नियन्त्रण सम्भव होता है। सामग्री, श्रम व अप्रत्यक्ष व्ययों पर उचित नियन्त्रण रखने के लिये आवश्यक व्यवस्था की स्थापना भी प्रबन्धकीय लेखा–विधि का ही कार्य है। इसके अतिरिक्त समय रहते उचित कार्यवाही सम्भव बनाने के लिए प्रबन्ध–लेखापाल प्रबन्ध को अपनी अन्तरिम प्रतिवेदनों तथा कार्यकरण–विवरण प्रस्तुत करता है।

(5) **कर्मचारियों को अभिप्रेरित करना** (Motivating Employees) : प्रबन्धकीय लेखा–विधि का कार्य संस्था के प्रबन्धकों के समक्ष कर्मचारी अभिप्रेरण की योजनायें प्रस्तुत करना तथा उन्हें कार्यान्वित करना भी होता है।

(6) **वित्तीय विश्लेषण और व्याख्या** (Financial Analysis and Interpretation) : विभिन्न लेखा–प्रतिवेदनों तथा अन्य वित्तीय समंको का विश्लेषण एवं व्याख्या करके इन्हें स्पष्ट एवं सरलतम रूप में प्रबन्ध के समक्ष प्रस्तुत करना प्रबन्धकीय लेखा–विधि का कार्य है। वित्तीय विश्लेषण तकनीकी कार्य है। इसके लिये लेखाकर्म का व्यवसायिक ज्ञान आवश्यक है। प्रबंधकों में सामान्यतया इस ज्ञान का अभाव पाया जाता है। अतः इस कमी की पूर्ति प्रबन्ध लेखापाल ही करता है। प्रबन्ध–लेखापाल विभिन्न प्रस्तावित परियोजनाओं, योजनाओं तथा विधियों का वित्तीय शब्दों में विश्लेषण करता है तथा उनकी सही व्याख्या व मूल्यांकन में प्रबन्ध की सहायता करता है।

(7) **संवहन** (Communication) : संवहन का आशय संस्था के अन्तर्गत व्यक्तियों (प्रबन्धकों तथा कर्मचारियों) तथा बाहर के व्यक्तियों (ग्राहकों, लेनदारों, ऋण–पत्रधारियों, बैंकों इत्यादि) को निर्देश व सूचना भेजने से है। संस्था के कर्मचारियों को सही दिशा में अभिप्रेरित करने, इसके विभिन्न क्रियाकलापों पर प्रभावशाली नियन्त्रण रखने तथा श्रेष्ठ निर्णय लेने के लिए प्रबन्ध को संस्था के बारे में अप–टू–डेट ज्ञान होना आवश्यक है। किसी संस्था की संवहन प्रक्रिया में प्रबन्धकीय लेखा–विधि का महत्वपूर्ण स्थान होता है। प्रबन्ध–लेखापाल अपने प्रतिवेदनों तथा विभागीय कार्यकरण–विवरणों द्वारा प्रबन्धकों को व्यवसाय के कार्य–परिणामों से अवगत कराता है। इसी तरह वह प्रकाशित खातों के माध्यम से कम्पनी के अंशधारियों, लेनदारों तथा सामान्य जनता को संस्था की प्रगति तथा स्थिति से अवगत कराता है। संस्था के कर्मचारियों को संस्था की प्रगति के विषय में जानकारी देने के लिये वह संक्षिप्त लेखे तथा विवरण तैयार करता है। इसके अतिरिक्त केन्द्रीय, प्रान्तीय और स्थानीय कर–अधिकारियों के द्वारा अपेक्षित प्रतिवेदन तथा विवरण तैयार करना और उन्हें उनके समक्ष उचित समय पर प्रस्तुत करना भी प्रबन्धकीय लेखा–विधि के कार्य–क्षेत्र में ही आता है।

(8) **विशेष लागत और आर्थिक अध्ययन** (Special Cost and Economic Studies) : संस्था के लाभों में वृद्धि के लिये प्रबन्धकीय लेखा–विधि में विशेष अध्ययन कार्य चलता रहता है। उदाहरण के लिये, उत्पादन सम्बर्द्धन की अनुमानित पूंजीगत लागत तथा लाभों के सम्बन्ध में अध्ययन। इन अध्ययनों में लागत–लाभ–मात्र विश्लेषण, सम–विच्छेद चार्ट आदि तकनीकें महत्वपूर्ण होती हैं। इन अध्ययनों का उद्देश्य निर्णय कार्य में प्रबन्ध की सहायता करना और व्यवसाय के लाभ अधिकतम करना होता है।

(9) **संस्था के विभिन्न अधिकारियों को उनके लिये आवश्यक सूचना प्रदान करना** (Supplying

information to different authorities) : एक व्यावसायिक संस्था का कार्य बहुत से विभागों में बंटा होता है। प्रत्येक विभागीय अधिकारी की लेखा–सूचना संबंधी आवश्यकतायें एक दूसरे से भिन्न होती है। उदाहरण के लिये, एक उत्पादन–प्रबन्धक को प्राप्त आदेशों का विवरण चाहिये, जोकि अंशधारियों के लिये व्यर्थ है। अतः प्रबन्ध–लेखापाल को प्रत्येक विभागाध्यक्ष की आवश्यकताओं का सावधानीपूर्वक अध्ययन करना चाहिये और उन्हें उनसे सम्बन्धित आवश्यक सूचनायें उचित समय पर एवं उपयुक्त रूप से प्रदान करनी चाहिये। इस कार्य के कुशलतापूर्वक सम्पादन के लिये प्रबन्ध–लेखापाल विभिन्न वित्तीय तथा परिव्यय समंको का संग्रह करता है तथा वर्गीकरण और सम्मिलन (classisfication and combination) की विधि अपनाकर उन्हें प्रबन्धकीय निर्णयन के योग्य बनाता है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि प्रबन्धकीय लेखा–विधि के कार्य–क्षेत्र की सीमायें बहुत ही व्यापक है। वास्तव में इसमें वे सभी कार्य किये जाते हैं जिससे प्रबन्धकों की कुशलता बढ़ सके।

## प्रबन्धकीय लेखाविधि का क्षेत्र
## (Scope of Management Accounting)

प्रबन्धकीय लेखाविधि का क्षेत्र बहुत व्यापक है, इसके अन्तर्गत किसी संस्था का भूतकालीन एवं वर्तमान व्यवसायिक क्रियाओं का अध्ययन एवं विश्लेषण करके उपलब्ध सूचनाओं को प्रबन्ध के समक्ष इस प्रकार प्रस्तुत किया जाता है जिससे कि विभिन्न समस्याओं को समझने एवं हल करने में सहायता प्राप्त हो सके और जिसके आधार पर विभिन्न निर्णयों को लिया जा सके। प्रबन्धकीय लेखाविधि के अन्तर्गत उन सभी विषयों, पद्धतियों और तकनीकों का समावेश होता है जो कि इन सभी कार्यों के सम्पादन में सहायक होती हैं। प्रबन्ध लेखाविधि के क्षेत्र में मुख्यतः निम्नलिखित को सम्मिलित किया जाता है –

(1) **वित्तीय लेखांकन** (Financial Accounting) – वित्तीय लेखांकन का आशय व्यवसाय से सम्बन्धित लेनदेनों का अभिलेखन करने, वर्गीकरण करने तथा विश्लेषण करने से है। इसका उद्देश्य एक निश्चित अवधि के लिए अर्जित लाभों को ज्ञात करना तथा एक निश्चित तिथि को व्यवसाय का स्थिति विवरण तैयार करना होता है। यद्यपि वित्तीय लेखांकन ऐतिहासिक समंकों का व्यवहार करता है, परन्तु कार्य–निष्पादन मूल्यांकन का आधार लिपिबद्ध तथ्य एवं समंक ही होते हैं। प्रबंध का नियन्त्रण पक्ष भी वित्तीय आंकड़ों पर आधारित होता है। इस प्रकार प्रबन्धकीय लेखांकन का वित्तीय लेखांकन से निकट का सम्बन्ध होता है।

(2) **लागत लेखांकन** (Cost Accounting) – लागत लेखांकन वस्तुओं की निर्माण लागत या प्रदान की गयी सेवा की लागत निर्धारण हेतु विभिन्न तकनीक उपलब्ध करता है। यह विभिन्न उपकार्यों, उत्पादों या प्रक्रियाओं की लागत ज्ञात करने के लिए वित्तीय आंकड़ों का प्रयोग करता है। प्रमाप लागत, सीमान्त लागत, विभेदात्मक लागत एवं परिचालन लागत निर्धारित करने की प्रणालियां विभिन्न व्यावसायिक क्रियाओं के नियोजन हेतु प्रबन्ध के लिए सहायक होती है।

लागत लेखांकन उत्पादन के मितव्ययी और अमितव्ययी क्षेत्रों की जानकारी करने में भी सहायक होता है। विभिन्न विभागों की कार्यकुशलता का आंकलन मानक निर्धारित करके तथा विचरण ज्ञात करके किया जाता है। इस प्रकार, लागत लेखांकन प्रबन्धकीय लेखांकन का एक आवश्यक अंग है।

(3) **बजटिंग एवं पूर्वानुमान** (Budgeting and Forecasting) – बजटिंग का आशय भविष्य में किसी निश्चित अवधि के लिए संस्था की योजनाओं, नीतियों और लक्ष्यों को अभिव्यक्ति करना है। विभिन्न विभागों के लिए लक्ष्य निर्धारित किये जाते हैं तथा इन लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु उत्तरदायित्व निश्चित किया जाता है। वास्तविक उपलब्धियों की बजट में दिये गये आंकड़ों से तुलना, विभिन्न विभागों के निष्पादन के सम्बन्ध में प्रबन्ध को एक रूप–रेखा प्रदान करती है। दूसरी ओर, पूर्वानुमान

भविष्यवाणी करता है कि दी हुई परिस्थिति के परिणामस्वरूप क्या घटित होगा। पूर्वानुमान एक निर्णय (Judgement) है, जबकि बजटिंग एक संगठनात्मक उद्देश्य है। बजटिंग और पूर्वानुमान दोनों ही विभिन्न क्रियाओं के नियोजन में प्रबन्धकीय लेखापालक के लिए उपयोगी होते हैं।

(4) **नियन्त्रण क्रिया–विधि एवं पद्धतियां** (Control Procedures and Methods) – नियन्त्रण प्रक्रिया के अन्तर्गत वास्तविक निष्पादन की तुलना बजट प्रमापों से की जाती है, विचरणों का विश्लेषण किया जाता है तथा इसकी सूचना प्रबन्धकों को दी जाती है। व्यवसायिक क्रियाओं पर नियन्त्रण करने के लिए बजटरी नियन्त्रण और प्रमाप परिव्ययन पद्धतियों का प्रयोग किया जाता है।

(5) **कर लेखांकन** (Tax Accounting) – वर्तमान जटिल कर व्यवस्था के अंतर्गत कर नियोजन भी प्रबन्धकीय लेखांकन का एक महत्वपूर्ण अंग है। संस्थाओं में आय विवरण तैयार किए जाते हैं तथा कर दायित्वों की गणना की जाती है। केन्द्रीय सरकार, राज्य सरकार तथा स्थानीय सत्ताओं द्वारा लगाये जाने वाले करों के भार के बारे में प्रबन्ध–तन्त्र को सूचित किया जाता है। विभिन्न विभागों में विभिन्न कर विवरणी तैयार करके जमा की जाती है तथा समय से करों के भुगतान की व्यवस्था की जाती है। इस प्रकार का लेखांकन भी प्रबन्धकीय लेखापालक के कर्त्तव्यों की परिधि में आता है।

(6) **प्रबंध को प्रतिवेदन देना** (Reporting to Management) – प्रबंधकीय लेखापालक का एक कार्य प्रबंधकों को संस्था की विभिन्न क्रियाओं के बारे में प्रतिवेदन के माध्यम से सूचित करना है जिससे उपक्रम को नियंत्रित करने में सहायता मिल सके। ये प्रतिवेदन बिंदु–रेखीय चित्र, रेखा चित्र, सूचकांक या अन्य सांख्यिकीय तकनीकों के रूप में प्रस्तुत किए जाते हैं ताकि ये आसानी से समझा जा सकें। प्रबंधकीय लेखापालक प्रबंध के समक्ष अंतरिम प्रतिवेदन प्रस्तुत करता है और यह प्रतिवेदन मासिक, त्रैमासिक, छमाही या वार्षिक हो सकते है। इन प्रतिवेदनों में लाभ–हानि विवरण, रोकड़ प्रवाह विवरण, कोष प्रवाह विवरण, स्कन्ध प्रतिवेदन, अनुपस्थिति विवरण और हस्तगत आदेशों का विवरण आदि का उल्लेख किया जा सकता है। ये प्रतिवेदन व्यवसाय की कार्यप्रणाली की सतत् समीक्षा करने में सहायक होते हैं।

(7) **समंकों का निर्वचन** (Interpretation of Data) – प्रबंधकीय लेखापालक प्रबंध के उपयोग के लिए विभिन्न वित्तीय विवरणों का निर्वचन करता है। ये विवरण संस्था की वित्तीय तथा अर्जन स्थिति के बारे में चित्र प्रस्तुत करते हैं। इन विवरणों का पूर्व की अवधियों के विवरणों से तुलना करके अध्ययन किया जा सकता है अथवा उसी प्रकार की अन्य संस्थाओं के विवरणों के साथ इनकी तुलना की जा सकती है। निर्वचन की क्रिया द्वारा इन विवरणों के महत्व को प्रबंध के सम्मुख सरल भाषा में प्रस्तुत किया जाता है। यदि इनकी उचित ढंग से विश्लेषण व समीक्षा नहीं की जाती है तो इनसे गलत निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं। अतः वित्तीय विवरणों का निर्वचन करना उतना ही महत्वपूर्ण है जितना की इन विवरणों को तैयार करना।

(8) **आंतरिक अकेक्षण** (Internal Audit) – आंतरिक अकेक्षण के द्वारा विभिन्न विभागों तथा अधिकारियों के कार्यकलापों की जांच की जाती है। वास्तव में इसकी सहायता से आंतरिक नियंत्रण को सफल बनाने में सहायता मिलती है। इसके अतिरिक्त विभिन्न कर्मचारियों के उत्तरदायित्व निर्धारण में भी आंतरिक अकेक्षण प्रबंध की सहायता करता है।

(9) **कार्यालय सेवाएं** (Office Services) – प्रबंधकीय रेखा पालक से कार्यालय नियंत्रण की भी अपेक्षा की जा सकती है। उसे समंको के प्रसंस्करण, फाइल करने, प्रतिलिपिकरण, बहुलिपिकरण, सम्प्रेषण आदि कार्यों को सम्पन्न कराने के लिए कहा जा सकता है। उसे विभिन्न कार्यालय यंत्रों आदि के बारे में प्रतिवेदन देने हेतु कहा जा सकता है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि प्रबंध लेखा विधि का क्षेत्र बहुत व्यापक है। प्रमुख रूप से इसके अन्तर्गत प्रबंधकों को व्यवसाय की वित्तीय व्यवस्था की जानकारी देने, वित्तीय सूचनाओं के

निर्वचन की तकनीक, प्रभावपूर्ण प्रबंध नियंत्रण व्यवस्था करने तथा व्यवसायिक क्रियाओं में संबंध स्थापित करने से संबंधित विषय सम्मिलित होते हैं।

## प्रबंध लेखांकन के उद्देश्य
## (Objects or Purpose of Management Accounting)

प्रबन्ध लेखांकन के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं –

(1) वित्तीय सूचनाओं के निर्वचन में सहायता करना (Helpful in the interpretation of financial information)
(2) नियोजन व नीति निर्धारण में सहायक (Helpful in planning and policy formulation)
(3) निशपादन नियन्त्रण में सहायक (Helpful in Controlling performance)
(4) संगठन–कार्य में सहायक (Helpful in Organising)
(5) कर्मचारियों को अभिप्रेरित करना (Motivating Employees)
(6) व्यावसायिक क्रियाकलापों के समन्वय में सहायता करना (Helpful in Co-ordinating operations)
(7) निर्णयन में सहायता करना (Helpful in decision making)
(8) संवहन में सहायक (Helpful in communication)
(9) कर–प्रशासन में सहायता करना (Helpful in tax administration)

(1) **कार्यक्षमता में वृद्धि** (Increases Efficiency) – प्रबन्धकीय लेखांकन व्यावसायिक संचालन की कार्यकुशलता में वृद्धि करता है। विभिन्न विभागों के लिए लक्ष्य अग्रिम में निश्चित किए जाते हैं और इन लक्ष्यों की उपलब्धि ही उनकी कार्यकुशलता के मापन का उपकरण होता है।

(2) **उचित नियोजन** (Proper Planning) – प्रबंध लेखांकन के परिणामस्वरूप प्रबन्ध–तन्त्र नियोजन कार्य को प्रभावपूर्ण तरीके से सम्पन्न करता है। बजटिंग तकनीक विभिन्न क्रियाओं का पूर्वानुमान लगाने में एक मास्टर बजट बनाया जाता है। प्रत्येक व्यक्ति का कार्य–भार पहले से ही निशचित कर दिया जाता है। इस प्रकार प्रबन्ध लेखांकन की सहायता से संस्था के क्रिया–कलापों का एक व्यवस्थित ढंग से नियोजन किया जाता है।

(3) **कार्य–निष्पादन का मूल्यांकन** (Measurements of Performance) – बजटरी नियन्त्रण तथा प्रमाप लागत लेखांकन की पद्धतियां कार्य–निष्पादन के मापन को संभव बनाती है। प्रमाप लागत लेखांकन विधि में प्रमाप निर्धारित कर दिए जाते हैं और वास्तविक निष्पादन की पूर्व–निर्धारित प्रमापों से तुलना की जाती है। बजटरी नियन्त्रण प्रणाली भी सभी कर्मचारियों की दक्षता का माप करने में सहायक होती है।

(4) **विनियोजित पूंजी पर अधिकतम लाभ** (Maximum Profit on Invested Capital) – प्रबंध लेखांकन कार्य कुशलता में वृद्धि करके एवं प्रभावशाली नियन्त्रण के परिणाम स्वरूप लागतों में कमी करने में सहायक होती है। इन सबका परिणाम यह होता है कि संस्था को अधिकतम लाभ की प्राप्ति होती है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि विनियोजित पूंजी पर अधिकतम लाभ कमाया जा सकता है जो कि प्रत्येक व्यवसाय संस्था का प्रमुख लक्ष्य होता है।

(5) **प्रभावशाली प्रबंधकीय नियंत्रण** (Effective Management Control) – प्रबंधकीय लेखाविधि प्रभावशाली नियन्त्रण में भी सहायक है। वास्तविक निष्पादन की तुलना पूर्व लक्ष्यों से करके विचरण ज्ञात किए जाते हैं जिसके आधार पर नियन्त्रण प्रणाली को और अधिक प्रभावशाली बनाया जाता है।

(6) **उपभोक्ताओं की सेवा में सुधार** (Improves Service to Customers) – प्रबंधकीय लेखांकन में प्रयुक्त की जाने वाली लागत नियन्त्रण की तकनीकों से कीमतों को कम करने में सहायता मिलती

है। संस्था में समस्त कर्मचारी लागतों के संबंध में सतर्क रहते हैं कि ये नियन्त्रण में रहे। उत्पाद (वस्तु) की गुणवत्ता अच्छी होती है क्योंकि गुणवत्ता के लिए प्रमाप पहले से ही निर्धारित किए जाते हैं। इस प्रकार उपभोक्ताओं को उचित मूल्य पर उत्तम गुणवत्ता वाले माल की आपूर्ति होती है। माल के उत्पादन में वृद्धि होने से उपभोक्ताओं को माल की आपूर्ति भी बढ़ाना संभव हो पाता है।

## प्रबंध लेखांकन के उपकरण एवं तकनीक अथवा प्रणालियां
## (Tools and Techniques or System of Management Accounting)

प्रबन्ध को अपने कार्यों का कुशलतापूर्वक निष्पादन करने के लिए अनेक प्रकार की सूचनाओं की आवश्यकता होती है। प्रबंध लेखांकन एक अकेला ऐसा यन्त्र नहीं है जो प्रबंधकों की लेखांकन–सूचना संबंधी सभी आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके। प्रबंध लेखांकन अलग से कोई पद्धति नहीं है, बल्कि यह तो अनेक पद्धतियों को सम्मिश्रण एवं समन्वय है। अतः लेखांकन सूचना को अत्यंत प्रभावपूर्ण ढंग से प्रस्तुत करने हेतु प्रबंध लेखांकन में निम्नलिखित उपकरणों एवं तकनीकों का प्रयोग किया जाता है –

(1) **वित्तीय नीति एवं नियोजन** (Financial Policy and Planning) – वित्तीय नियोजन से आशय किसी संस्था के लिए आवश्यक पूंजी की कुल राशि का पूर्वानुमान लगाना तथा उसके स्वरूप के संबंध में निर्णय लेने की प्रक्रिया से है। प्रत्येक संस्था को कोश प्राप्त करने के संबंध में निर्णय लेना पड़ता है। ये कोश अंश पूंजी निर्गमन द्वारा या ऋण लेकर प्राप्त किए जा सकते हैं। यह भी निर्णय करना पड़ता है कि अंश पूंजी किस प्रकार की अर्थात् समता अंश पूंजी या पूर्वाधिकार अंश पूंजी होगी। इसी प्रकार ऋण दीर्घ–कालीन होंगे या अल्प–कालीन, इसका भी निर्धारण नीति–विषयक समस्या होती है। कुल प्राप्त किए जाने वाले कोश में अंश पूंजी तथा ऋण का क्या अनुपातिक भाग होगा, इसे निश्चित करना भी प्रबंधकीय निर्णयन का कार्य है। ये सभी निर्णय महत्वपूर्ण होते है जिसमें प्रबंधकीय लेखांकन वित्तीय नियोजन की तकनीक के माध्यम से निदान प्रस्तुत करता है।

(2) **वित्तीय लेखांकन** (Financial Accounting) – वित्तीय लेखांकन से प्राप्त सूचना के आधार पर ही वित्तीय विवरणों का विश्लेषण किया जाता है तथा संबंधित पक्षकारों के लिए अनेक निष्कर्ष निकाले जाते हैं। अतः प्रबंध लेखांकन के लिए सुव्यवस्थित वित्तीय लेखांकन पद्धति का होना आवश्यक है क्योंकि यह प्रबंध लेखांकन की आधारशिला होती है।

(3) **वित्तीय विश्लेषण** (Financial Analysis) – वित्तीय विश्लेषण का आशय वित्तीय विवरणों लाभ–हानि, खाता एवं चिटठा में प्रस्तुत किए गए परिणामों को किसी वैज्ञानिक विधि से सुविधाजनक भागों में बांटकर उनसे अर्थपूर्ण निष्कर्ष निकालना है। वित्तीय विवरणों के विश्लेषण का उद्देश्य समकों का इस प्रकार से वर्गीकरण तथा प्रस्तुतिकरण करना है कि ये प्रबंध के लिए उपयोगी सिद्ध हो सके। वित्तीय विवरणों के विश्लेषण की तकनीकों में तुलनात्मक वित्तीय विवरण, अनुपात विश्लेषण, कोष प्रवाह विवरण, रोकड़ प्रवाह विवरण, प्रवृत्ति विश्लेषण आदि शामिल हैं।

(4) **पुनर्मूल्यांकन लेखांकन** (Revaluation Accounting) – इसे पुनर्स्थापन लेखांकन भी कहते हैं। इसका आशय उन रीतियों से हैं जिसका प्रयोग बढ़ते हुए मूल्यों की अवधि में स्थायी सम्पत्तियों पुनर्स्थापन से संबंधित समस्याओं को हल करने में किया जाता है। इसका उद्देश्य इस बात का विश्वास दिलाना है कि संस्था की पूंजी सुरक्षित रखी गई है। अर्थात् मूल्य परिवर्तन का प्रभावों खातों में समायोजन कर लिया गया है तथा लाभों की गणना भी इसी आधार पर की गई है।

(5) **बजटरी नियंत्रण** (Budgetary Control) – यह एक ऐसी प्रणाली है जिसे बजटों का नियोजन तथा नियंत्रण के लिए प्रयोग किया जाता है। सभी कार्यात्मक विभागों के लिए पहले से ही बजट अग्रिम तैयार कर लिए जाते हैं। ये बजट ऐतिहासिक आंकड़ों तथा भावी संभावनाओं पर

आधारित होते हैं। वास्तविक उपलब्धियों को लेखबद्ध कर लिया जाता है तथा पूर्व निर्धारित लक्ष्यों से इनकी तुलना की जाती है तथा विभागीय कार्यकलापों को बजट के अनुकूल रखने का प्रयास किया जाता है।

(6) **प्रमाप लागत विधि** (Standard Costing) – प्रमाप लागत विधि लागतों पर नियंत्रण हेतु प्रबंध लेखांकन की एक महत्वपूर्ण तकनीक है। प्रमाप लागत लेखांकन प्रणाली में लागत के विभिन्न तत्वों के संबंध में प्रमाप निर्धारित किए जाते हैं। प्रमाप लागत का निर्धारण चालू दशाओं के व्यवस्थित विश्लेषण पर आधारित होता है। वास्तविक लागतों का अभिलेखन किया जाता है तथा प्रमाप लागतों से इनकी तुलना की जाती है। यदि कोई विचरण पाए जाते हैं तो उनका विश्लेषण किया जाता है और उनके लिए उत्तरदायी कारणों का पता लगाया जाता है। इस प्रकार प्रमाप लागत विधि संस्था की कार्य कुशलता को बढ़ाने में सहायक होती है एवं यह अपवाद द्वारा प्रबंध को संभव बनाती है।

(7) **सीमांत लागत विधि** (Marginal Costing) – प्रबंध लेखांकन की इस तकनीक के अंतर्गत उत्पादन की कुल लागतों को परिवर्तनशील तथा स्थिर, दो वर्गों में विभाजित किया जाता है। प्रत्येक लागत केन्द्र पर केवल परिवर्तनशील व्यय एकत्र (accumulate) किये जाते हैं। स्थिर लागतों को उस अवधि की बिक्री से प्राप्त आय में से घटाया जाता है जिसमें ये उदय होते हैं। सीमांत लागत–विधि प्रबंध को निर्णय लेने में बहुत सहायक होती है।

(8) **निर्णयन लेखांकन** (Decision Accounting) – निर्णय लेने का अर्थ किसी कार्य को करने के विभिन्न विकल्पों में से सर्वश्रेष्ठ विकल्प का चयन करने से है। वस्तुतः निर्णयन लेखांकन कोई पद्धति नहीं है वरन् यह एक प्रक्रिया है जिससे प्रबंध किसी कार्य के लाभ को अधिकतम व हानि को न्यूनतम करने का प्रयास करता है। इसके लिए सीमांत विश्लेषण, वृद्धिशील विश्लेषण (Incremental Analysis), सम–विच्छेद विश्लेषण, लाभ–मात्रा विश्लेषण आदि तकनीकें प्रयोग की जाती हैं। प्रबंधकीय लेखा–विधि की इन तकनीकों के आधार पर निर्णय लेने से 'प्रयोग और त्रुटि' (Trail and Error) की अवैज्ञानिक विधि के दोषों से बचा जा सकता है।

(9) **नियन्त्रण लेखांकन** (Control Accounting) – नियन्त्रण लेखांकन कोई पृथक प्रणाली नहीं है विभिन्न प्रणालियों में नियंत्रण युक्तियां होती है और इन्हें ही नियंत्रण लेखांकन में प्रयुक्त किया जाता है। सामान्यतः प्रमाप लागत–विधि एवं बजटरी नियंत्रण दोनों ही अपने–अपने तरीके से अर्थात् विचरण विश्लेषण, प्रतिवेदन, विवरण व अनेक क्रियाओं द्वारा लागतों, व्यय व अन्य मदों पर नियंत्रण रखने का कार्य करते हैं। इसके अतिरिक्त नियंत्रण लेखांकन में आंतरिक जांच अंकेक्षण (internal audit), वैज्ञानिक अंकेक्षण आदि का नियंत्रण उद्देश्यों के लिए प्रयोग किया जाता है। प्रभावपूर्ण लागत नियंत्रण के लिए उत्तरदायित्व लेखा–विधि की तकनीक का भी प्रयोग किया जाता है।

(10) **वित्तीय प्रतिवेदन** (Financial Reporting) – वित्तीय प्रतिवेदन से तात्पर्य व्यवसाय के कार्य–परिणामों तथा अन्य महत्वपूर्ण तथ्यों के बारे में प्रबंध को सूचना प्रदान करने से है। इसके लिए प्रतिवेदन, विवरण, बिंदु रेखीय व चित्रमय प्रदर्शन एवं चार्ट आदि विधियों का प्रयोग किया जाता है।

(11) **क्रियात्मक अनुसंधान एवं सांख्यिकीय विधियां** (Operational Research and Statistical Techniques) – गत कुछ वर्षों से प्रबंध संबंधी समस्याओं को हल करने में क्रियात्मक अनुसंधान एवं सांख्यिकीय विधियों का उपयोग निरंतर बढ़ता जा रहा है। प्रायिकता सिद्धांत (Probability), प्रतिचयन सिद्धांत (Sampling Theory), रेखीय कार्यक्रम (Linear Programming), क्रीड़ा सिद्धांत एवं पंक्ति सिद्धांत (Game Theory and Queing Theory), अनुरूपन सिद्धांत (Simulation Theory) आदि इस क्षेत्र की प्रमुख तकनीकें हैं।

## प्रबंधकीय लेखा–विधि के लाभ
## (Advantages of Management Accounting)

संस्था में प्रबंधकीय लेखा–विधि के प्रयोग से निम्न लाभ प्राप्त हो सकते हैं :

(1) प्रबंधकीय लेखा–विधि के सतत् प्रयोग से व्यवसाय मौसमी व सामान्य व्यापारिक चक्रों के प्रयोग से मुक्त हो जाता है अर्थात् व्यवसाय पर व्यवसायिक उच्चावचनों का प्रभाव नहीं पड़ता है। क्षमतापूर्ण योजना व प्रभावशाली संगठन जो प्रबंधकीय लेखा–विधि के परिणाम होते हैं के कारण व्यवसायिक क्रियाओं में एक प्रकार की क्रमबद्ध नियमितता आ जाती है।

(2) योजना, वितरण व नियंत्रण क्रियाओं में सहायक होने के कारण, प्रबंधकीय लेखा विधि विनियोजित पूंजी पर अधिकतम लाभ कमाने में सहयोग देती है।

(3) प्रबंध द्वारा ग्राहकों को प्रदत्त सेवाओं में सुधार करने में सहायक होती है।

(4) अमान्य प्रमापों को, जो सामान्यतः प्रबंध व श्रम के बीच बुरे संबंध के लिए उत्तरदायी होते हैं, प्रबंधकीय लेखा–विधि के प्रयोग से दूर किया जा सकता है और श्रम संबंध (labour relations) को सुधारा जा सकता है।

(5) प्रबंधकीय लेखा–विधि की सहायता से अनावश्यक क्षय, अपव्यय व कार्यदोषों को नियंत्रित तथा दूर किया जा सकता है जिसके फलस्वरूप औद्योगिक उत्पादकता व श्रम क्षमता में वृद्धि हो सकती है।

(6) प्रबंधकीय लेखा–विधि द्वारा पूरे राष्ट्र व समुदाय का आर्थिक उत्थान किया जा सकता है।

## प्रबंधकीय लेखा–विधि की सीमाएं
## (Limitations of Management Accounting)

यद्यपि वर्तमान व्यवसाय जगत में प्रबंधकीय लेखा–विधि का अत्यधिक महत्वपूर्ण स्थान है और इसके प्रयोग से प्रबंध लाभ प्राप्त कर सकता है, फिर भी अन्य विज्ञानों की तरह इस शास्त्र की भी कुछ निजी मर्यादाएं व सीमाएं है जब तक इन सीमाओं को ध्यान में रखकर प्रबंधकीय लेखा–विधि का प्रयोग नहीं किया जाएगा, तथाकथित लाभ प्राप्त नहीं हो सकते। प्रबंधकीय लेखा की निम्न सीमाएं हैं :

(1) प्रबंधकीय लेखा विधि में प्रयुक्त अधिकांश सूचनाएं वित्तीय लेखा–विधि, लागत लेखा–विधि व अन्य प्रलेखों से एकत्र की जाती हैं। अतः प्रबंध लेखापालक द्वारा निकाले गए निष्कर्षों की सत्यता एवं शुद्धता पर्याप्त सीमा तक इन मौलिक प्रलेखों की सत्यता व शुद्धता पर निर्भर करती है। कहने का तात्पर्य यह है कि प्रबंधकीय लेखा–विधि के गुण–दोष आधारभूत लेखों के गुण–दोष पर निर्भर करते हैं।

(2) प्रबंधकीय लेखापालक द्वारा निकाले गए निष्कर्ष अपने आप में महत्वहीन होते हैं, जब तक उनका सही ढंग से कार्यान्वयन न किया जाए। इसके लिए प्रबंधक के सभी स्तर पर सतत् प्रयत्न की आवश्यकता पड़ सकती है।

(3) प्रबंधकीय लेखा–विधि प्रबंध व प्रशासन का प्रतिस्थापन नहीं है। यह तो प्रबंध के लिए औजार–मात्र है। निर्णय व उचित कदम प्रबंध द्वारा लिये जाते हैं, न कि लेखापालक द्वारा। हां, प्रबंध की सहायता के लिए आंकड़ों के संकलन, विश्लेषण व प्रस्तुतिकरण की क्रिया लेखापालक द्वारा की जाती है।

(4) प्रबंधकीय लेखा–विधि का अभ्युदय अनेक विज्ञानों जैसे, सांख्यिकी, प्रबंध सिद्धांत, अर्थशास्त्र, अंक गणित, इंजीनियरिंग आदि के विकास व नये सिद्धांत के कारण हुआ है। अतः इन सभी विषयों का सम्यक् ज्ञान प्राप्त करने के बाद ही इस लेखा–विधि का यथोचित लाभ उठाया जा

सकता है।

(5) प्रबंधकीय लेखा–विधि द्वारा जो भी सूचनाएं प्रदान की जाती हैं, उनमें मानव–निर्णय का तत्व शामिल होता है। सूचनाओं के संकलन से लेकर निर्वचन तक जिन व्यक्तियों की सेवाएं ली जाती हैं, उनके व्यक्तिगत चरित्र, भावना व विचार का थोड़ा प्रभाव इन सूचनाओं पर अवश्य पड़ता है। अतः बहुत ही कम संभावना होती है कि इन सूचनाओं पर व्यक्तिगत निर्णय के प्रभाव के कारण ये गलत पथ पर ले जा सकती हैं।

## प्रबंधकीय लेखा–विधि व लागत लेखा–विधि में भेद
## (Distinction Between Management Accounting and Cost Accounting)

लागत लेखा–विधि भी प्रबंधकीय लेखा–विधि का ही एक अंग है। ऐतिहासिक लागत लेखा–विधि और प्रबंधकीय लेखा–विधि में तो भेद महत्वपूर्ण दिखाई देता है परन्तु आधुनिक लागत लेखा–विधि, जिसमें सीमांत लागत, उत्पादन सीमा–स्तर बिन्दु विश्लेषण, प्रमाप लागत, एकरूपता लागत आदि का समावेश किया जाता है, प्रबंधकीय लेखा–विधि का ही समरूप बन जाता है और सामान्य व्यक्ति के लिए दोनों में कोई भी भेद प्रतीत नहीं होता है। इसके बावजूद भी दोनों में सूक्ष्म अंतर पाये जाते हैं, जिसकी विवेचना इस प्रकार है :

(1) **लागत लेखा** – विधि का प्रमुख उद्देश्य वस्तु, उत्पाद या सेवा की प्रति इकाई लागत ज्ञात करना व निर्धारण करना होता है, परन्तु प्रबंधकीय लेखा–विधि प्रबंधकीय क्रियाओं के समक्ष संचालन व निष्पादन में प्रबंध की सहायता हेतु लागत समंकों के प्रस्तुतिकरण पर जोर देती है।

(2) **लागत लेखा** – विधि अधिकतम भूत व वर्तमान से संबंधित तथ्यों पर ही आधारित होती है लेकिन प्रबंधकीय लेखा–विधि में भावी तथ्यों का (भूत व वर्तमान के संदर्भ में) विवेचन किया जाता है।

(3) **यद्यपि लागत लेखा** – विधि प्रबंधकीय लेखा–विधि का एक अंग है, फिर भी प्रबंधकीय लेखा–विधि का क्षेत्र उससे अधिक व्यापक है। इसमें लागत लेखा–विधि द्वारा प्रदत्त सूचनाओं के अलावा अन्य लेखांकन सूचनाओं गैर–मौद्रिक तथ्यों का भी प्रयोग किया जा सकता है।

(4) **लागत लेखा** – विधि में कुछ निश्चित सिद्धांतों व प्रारूपों का प्रयोग किया जाता है, परन्तु प्रबंधकीय लेखा–विधि में प्रबंधक आवश्यकता के अनुरूप प्रारूपों व सिद्धांतों में परिवर्तन लाकर तथ्यों का अनुविन्यसन किया जाता है।

(5) **लागत लेखा** – विधि द्वारा प्रदत्त समंकों व तथ्यों में आंतरिक व बाह्य दोनों पक्ष (व्यक्ति) अभिरूचि रखते है, परन्तु प्रबंधकीय लेखा–विधि द्वारा प्रस्तुत समंक में केवल प्रबंध ही रूचि रखते हैं।

## प्रबंधकीय लेखाविधि प्रणाली की स्थापना
## (Installation of Management Accounting System)

एक संस्था में प्रबंधकीय लेखा विधि प्रणाली की स्थापना प्रबंधक लेखापाल की देखरेख में होनी चाहिए और इसकी स्थापना से पूर्व निम्नलिखित प्रारम्भिक कदमों को उठाना आवश्यक है।

(1) **संगठनात्मक नियमावली** (Organisational Manual) – संस्था के अंतर्गत एक संगठन पुस्तिका तैयार करनी और अपनानी चाहिए जिसमें संस्था के प्रत्येक प्रबंधकीय स्तर पर अधिकारों और उत्तरदायित्वों के क्षेत्र का स्पष्ट उल्लेख होना चाहिए।

(2) **फार्मों तथा प्रतिवेदनों के प्रारूप की तैयारी** (Preparing of Forms and Returns) – उपयुक्त फार्मों तथा प्रतिवेदन प्रारूपों की अभिकल्पना तथा उनकी तैयारी की जानी चाहिए जिससे कि विभिन्न सूचनाओं को प्रभावशाली ढंग से संकलित एवं प्रस्तुत किया जा सके।

(3) **कर्मचारियों को उचित प्रशिक्षण** (Proper Training to the Staff) – संस्था के सभी संबंधित

कर्मचारियों को उचित प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए जिससे कि उन्हें इस प्रणाली के उद्देश्यों तथा तकनीकों की जानकारी हो सके।

(4) **खातों का वर्गीकरण एवं संकेतीकरण** (Classifying Accounts and integrating the System) – खातों का आवश्यतानुसार वर्गीकरण एवं संकेतीकरण किया। जाए तथा वित्तीय लेखाविधि एवं लागत लेखाविधि में पारस्परिक समन्वय किया जाए।

(5) **प्रमाप परिव्ययन प्रणाली अपनायी जाए** (Introducing Standard Costing Techniques) – संस्था में प्रमाप परिव्ययन प्रणाली अपनायी जाए तथा निष्पादन के प्रमाप निर्धारित किये जाए।

(6) **बजटरी नियंत्रण प्रणाली की स्थापना** (Setting up Budgetary Control System) – विभिन्न विभागों की क्रियाओं का नियोजन करने के लिए बजटरी नियंत्रण की स्थापना की जानी चाहिए। इसके लिए लागत केन्द्रों, बजट केन्द्रों तथा लाभ केन्द्रों को निर्धारित किया जाना चाहिए।

(7) **क्रियात्मक शोध तकनीकों को अपनाना** (Introducing Operational Research Techniques) – विभिन्न सूचनाओं का प्रभावशाली ढंग से विश्लेषण करने के लिए क्रियात्मक शोध एवं सांख्यिकीय तकनीकों को अपनाना चाहिए।

## वित्तीय लेखा–विधि और प्रबंधकीय लेखा–विधि में अंतर
## (Difference between Financial Accounting and Management Accounting)

वित्तीय लेखा–विधि का आशय किसी व्यवसाय के दैनिक व्यवहारों को लेखाकर्म के सिद्धांतों के अनुरूप लेखा–पुस्तकों में इस प्रकार लिखने, वर्गीकरण करने, विश्लेषण करने और संक्षिप्तकरण से है जिससे कि एक निश्चित अवधि के अंतर्गत व्यवसाय द्वारा अर्जित लाभ या हानि ज्ञात किया जा सके तथा एक निश्चित तिथि पर व्यवसाय की आर्थिक स्थिति का सही एवं सच्चा चित्र प्रस्तुत किया जा सके। दूसरी और प्रबंधकीय लेखा–विधि का आशय वित्तीय लेखा–विधि के अंतर्गत तैयार किये लेखों तथा अन्य स्रोतों से महत्वपूर्ण समंको का चयन करने तथा उनका यथोचित विश्लेषण एवं व्याख्या करके प्रबंध के समक्ष प्रस्तुत करने से होता है जिससे कि व्यवसाय के प्रबंधकों की नीति निर्धारण, नियोजन, निर्णयन तथा नियंत्रण में सरलता हो। इस प्रकार, जहां पर वित्तीय लेखा–विधि का कार्य–क्षेत्र समाप्त होता है, वहीं से प्रबंधकीय लेखा–विधि प्रारम्भ होती है। वस्तुतः दोनों दोनों लेखा–विधियां एक दूसरे की पूरिपूरक हैं। किन्तु कई बातों में ये एक–दूसरे से भिन्न हैं। इनकी मुख्य भिन्नताएं निम्नलिखित हैं :

(1) **उद्देश्य** (Object) – वित्तीय लेखा–विधि का उद्देश्य किसी व्यवसाय के व्यवहारों का क्रमबद्ध अभिलेखन, उसकी आय मापन तथा एक निश्चित तिथि पर उसकी स्थिति दर्शाना होता है जबकि प्रबंधकीय लेखा–विधि का उद्देश्य प्रबंधकों को उनके कार्यों की कुशलतापूर्वक निष्पादन के लिए आवश्यक सूचनायें प्रदान करना होता है।

(2) **विषय–सामग्री** (Subject Matter) – वित्तीय लेखा–विधि के अंतर्गत लेखे समूचे उपक्रम के लिए तैयार किये जाते हैं जबकि प्रबंधकीय लेखा–विधि में लेखों व विवरणों की तैयारी और सूचनाओं का संवहन समूचे उपक्रम की क्रियाओं के लिये न किया जाकर खंड या विभाग के आधार पर किया जाता है। इस प्रकार वित्तीय लेखा–विधि वित्तीय सौदों के योगों से सम्बंध रखती है जबकि प्रबंधकीय लेखा–विधि प्रत्येक उपकार्य व उत्पाद की लागत और आगम की विस्तृत विश्लेषण से सम्बन्ध रखती है।

(3) **प्रकृति** (Nature) – वित्तीय लेखा–विधि का सम्बन्ध ऐतिहासिक घटनाओं के अभिलेखन से है जबकि प्रबंधकीय लेखा–विधि मुख्यतया भविष्य की घटनाओं से सम्बन्धित है क्योंकि इसका उद्देश्य तो व्यावसायिक अवसरों की खोज है। यद्यपि इसमें भी भूतकालीन घटनाओं व तथ्यों का प्रयोग किया जाता है किन्तु केवल उस सीमा तक ही, जहां तक वे व्यवसाय की भावी स्थिति को प्रभावित करती

है। वित्तीय लेखा–विधि में व्यवसाय की भूतकालीन घटनाओं की वास्तविक स्थिति दर्शायी जाती है जबकि प्रबंधकीय लेखा–विधि में सूचनाओं का उद्देश्यपूर्ण विश्लेषण व व्याख्या की जाती है। इसीलिये वित्तीय लेखा–विधि में वास्तविक समंक दिये हाते हैं जबकि प्रबंधकीय लेखा–विधि में बनाये गए समंक (projected data) दिये जाते हैं।

(4) **अनिवार्यता** (Compulsion) – आजकल प्रत्येक व्यवसाय के लिए वित्तीय लेखा–विधि कानून व अन्य बहुत से कारणों से अनिवार्य–सी हो गई है जबकि प्रबंधकीय लेखा–विधि ऐच्छिक है। किसी व्यवसाय में प्रबंधकीय लेखा–विधि का स्थापन और उसके लिए आवश्यक सूचनाओं का संकलन तभी किया जाता है जबकि ऐसा करने की उपयोगिता उसमें निहित लागत से अधिक हो।

(5) **सूचना देना** (Reporting) – वित्तीय लेखा–विधि का उद्देश्य व्यवसाय के बाह्य पक्षों को उसकी सुदृढ़ता एवं लाभार्जन–शक्ति का सही–सही ज्ञान कराने के लिये उपयुक्त सूचनायें प्रदान करना होता है जबकि प्रबंधकीय लेखा–विधि व्यवसाय संचालन में लगे लोगों के प्रयोग के लिए आवश्यक सूचनायें प्रस्तुत करने से सम्बंधित है। इस प्रकार वित्तीय लेखा–विधि मुख्यतः बाह्य सूचन से सम्बन्ध रखती है जबकि प्रबंधकीय लेखा–विधि केवल आन्तरिक सूचन से सम्बन्ध रखती है। बाह्य सूचना के लिए तैयार किये गए लेखे व प्रतिवेदन एक निश्चित समयावधि पर तैयार किए जाते हैं, इनमें दिए गए समंक ऐतिहासिक, वास्तविक और विषय–परक होते हैं, ये समूचे व्यवसाय की स्थिति दर्शाते हैं, इनका एक निर्दिष्ट प्रारूप होता है और इनमें केवल मौद्रिक तथ्य ही दिए जाते हैं। इसके विपरीत, आंतरिक सूचन के लिए तैयार किए गए प्रतिवेदन व विवरण बार–बार (at frequent intervals) तैयार किये जाते हैं, इनमें विषयगत (subjective), प्रक्षेपित (projected) तथा वर्तमान व भावी घटनाओं से संबंधित समंक दिए जाते हैं, ये खण्ड या विभागीय आधार पर तैयार किये जाते हैं, इनका कोई प्रमापित प्रारूप नहीं होता तथा इनमें मौद्रिक व अमौद्रिक सभी महत्वपूर्ण आर्थिक घटनाओं का समावेश किया जाता है।

(6) **लेखा–सिद्धांत** (Accounting Principles) – वित्तीय लेखा–विधि में विभिन्न खाते तथा वित्तीय विवरणों के तैयार करने में लेखा–विधि के सामान्यता स्वीकृत सिद्धांतों का पालन किया जाता है जबकि प्रबंधकीय लेखा–विधि इन नियमों, सिद्धांतों और प्रथाओं की कठोरता से मुक्त है। इसमें प्रबंध के विशिष्ट उद्देश्यों की पूर्ति के लिए विभिन्न विषयों पर अपने पृथक सिद्धांत अपनाये जा सकते हैं। इसीलिए वित्तीय लेखा–विधि के अंतर्गत तैयार किए गए लेखे व विवरण प्रमापित व एकरूप होते हैं जबकि प्रबंधकीय लेखा–विधि के अंतर्गत तैयार तथा प्रस्तुत किए गए विवरणों में रूप–भेद रहता है।

(7) **कार्य पद्धति** (Methodology) – वित्तीय लेखा–विधि के अंतर्गत अभिलेख आगम, आय और व्यय,व्यक्तिगत खातों और सम्पत्ति खातों के रूप में रखे जाते हैं, जबकि प्रबंधकीय लेखा–विधि के अंतर्गत लागत और आगम अधिकतर उत्तरदायित्व केन्द्रों या लाभ केन्द्रों के अनुसार सूचित किये जाते हैं।

(8) **बाह्य आदेश** (Outside Dictates) – चूंकि वित्तीय लेखा–विधि का उद्देश्य व्यवसाय के बाह्य पक्षों के हितों की सुरक्षा करना होता है, इसीलिए इसमें सत्यता व शुद्धता लाने के लिए वित्तीय लेखा–विवरण बाह्य पक्षों द्वारा निर्धारित प्रमापों के अनुसार तैयार किये जाते हैं तथा ये प्रमाप निश्चित व स्थिर होते है। इसके विपरीत प्रबंधकीय लेखा–विधि मात्र आंतरिक प्रबंध के उपयोग के लिए होती है और इसीलिए इसके अंतर्गत विवरणों व प्रतिवेदनों के तैयार करने और प्रस्तुत करने के संबंध में प्रमाप स्वयं प्रबंध द्वारा निर्धारित किये जाते हैं तथा उनमें समय–समय बदलती हुई परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तन भी किये जाते हैं।

(9) **शुद्धता** (Precision) – वित्तीय लेखा–विधि में सूचना की पूर्ण शुद्धता अपेक्षित होती है जबकि प्रबंधकीय लेखा–विधि में सूचना की पूर्ण शुद्धता पर जोर नहीं होता। प्रबंधकीय लेखा–विधि में

निकटतम या पूर्णांक राशियां वास्तविक राशियों से प्रायः अधिक महत्वपूर्ण समझी जाती है।

(10) **क्षेत्र** (Scope) – प्रबंधकीय लेखा–विधि का क्षेत्र वित्तीय लेखा–विधि से बहुत अधिक व्यापक है। प्रबंधकीय लेखा–विधि में लागत लेखा–विधि, वित्तीय, सांख्यिकीय तथा अन्य तकनीकों का प्रयोग किया जाता है। वित्तीय लेखा–विधि में इन तकनीकों का कोई उपयोग नहीं होता।

(11) **अवधि** (Period) – वित्तीय लेखे एक निश्चित अवधि के पश्चात सामान्यता एक वर्ष के समयांतर पर तैयार किये जाते हैं, जबकि प्रबंधकीय लेखा–विधि के अंतर्गत प्रतिवेदन व विवरण बार–बार और थोड़े–थोड़े समयांतर पर तैयार व प्रस्तुत किये जाते हैं।

(12) **संवहन की शीघ्रता** (Dispatch) – वित्तीय लेखा–विधि की तुलना में प्रबंधकीय लेखा–विधि में सूचना के अतिशीघ्र संवहन की आवश्यकता होती है। शीघ्र तथा नवीनतम सूचनाएं ही प्रबंध की कार्यवाही का आधार होती हैं।

(13) **निहित लागतें** (Implicit Costs) – वित्तीय लेखा–विधि में वास्तविक व्यय को ही दिखाया जाता है। अतः व्यवसाय स्वामी के निजी स्वामित्व वाले साधनों की लागत को वित्तीय लेखा–विधि में नहीं दिखलाया जाता है जबकि प्रबंधकीय लेखा–विधि में ये लगाते कुल लागत का ही भाग मानी जाती हैं।

(14) **विशेषताएं** (Characteristics) – वित्तीय लेखा–विधि की सूचनाओं पर विषय–परकता, वैद्यता, निरपेक्षता आदि पर विशेष जोर दिया जाता है जिससे उन पर सभी विश्वास कर सके जबकि प्रबंधकीय लेखा–विधि में सूचनाओं की उपयोगिता पर अधिक बल दिया जाता है तथा वे विषयगत होती है।

(15) **प्रकाशन** (Publication) – वित्तीय लेखा–परिणामों लाभ–हानि खाता तथा स्थिति विवरण का सामान्य जनता की सूचनार्थ प्रकाशन किया जाता है, जबकि प्रबंधकीय लेखा–परिणामों का प्रकाशन नहीं किया जाता है। प्रबंध–लेखापालक द्वारा तैयार की गई सूचना प्रतिवेदन केवल प्रबंधकों के उपयोग के लिए ही होते हैं तथा वे गुप्त रखे जाते हैं।

(16) **अंकेक्षण** (Audit) – वित्तीय लेखा–समंकों का अंकेक्षण संभव होता है जबकि प्रबंधकीय लेखा–समंकों का नहीं। इसका कारण यह है कि वित्तीय लेखा–विधि में ऐतिहासिक, मौद्रिक तथा विषयगत समंकों का प्रयोग किया जाता है जिनके संबंध में उपयुक्त प्रमाण उपलब्ध होते हैं जबकि प्रबंधकीय लेखा–विधि में वर्णनात्मक, सांख्यिकीय, विषयगत तथा भविष्य से संबंधित समंकों का प्रयोग किया जाता है जिनका प्रमाणन संभव नहीं।

(17) **वर्णन** (Description) – वित्तीय लेखा–विधि में केवल उन्हीं आर्थिक घटनाओं को लिखा जाता है जिन्हें मुद्रा के रूप में व्यक्त किया जा सकता है जबकि प्रबंधकीय लेखा–विधि में ऐसी आर्थिक घटनाओं का पर्याप्त महत्व होता है जिनका मौद्रिक माप संभव नहीं, जैसे प्रतिस्पर्धात्मक वातावरण, तकनीकी प्रवर्तनों, मुद्रा के मूल्य में परिवर्तन आदि। ये घटनाएं प्रबंधकीय निर्णयों पर पर्याप्त प्रभाव डालती हैं। अतः प्रबंधकीय लेखा–विधि में इनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती है।

## प्रबंधकीय लेखा–विधि में प्रयुक्त औजार व विधियां
## (Tools and Techniques used in Management Accounting)

प्रत्येक विषय–ज्ञान (discipline) की तरह प्रबंधकीय लेखा–विधि, जो प्रबंध के प्रति विभिन्न कार्यों के माध्यम से लेखांकन सेवा अर्पित करती है, के अन्तर्गत अनेक विधियों, औजारों व रीतियों का प्रयोग अपरिहार्य है। एक महत्वपूर्ण तथ्य इस सम्बन्ध में यह है कि इन विधियों एवं औजारों का उद्‌गम, विकास व प्रयोग सम्बंधी अवधि एकसामान नहीं हैं। तत्कालीन परिस्थितियों में प्रचलित औजारों की कमियों को दूर करने का प्रयास किया गया होगा और उसके परिणामस्वरूप नवीन औजारों का आविष्कार हुआ होगा। वस्तुतः प्रबंधकीय लेखा–विधि के विभिन्न औजारों का उद्‌भव इस

विषय के ज्ञान–विकास के समकक्ष रहा है। यही कारण है कि वर्तमान में एक ही प्रकार की प्रबंधकीय समस्या के निराकरण हेतु अनेक वैकल्पिक औजार व विधि प्रबंधकीय लेखा–विधि के अन्तर्गत विद्यमान हैं। इनमें से कुछ पुरातन हैं, जो कुछ पूर्णतः आधुनिक हैं। ये वैकल्पिक औजार प्रबंध लेखापालक व प्रबंध–विज्ञों के द्वारा किये गये उन प्रयत्नों के प्रतीक है, जो पुरातन औजारों की कमियों को दूर करने के लिए नवीन व श्रेष्ठतम विधियों एवं औजारों के प्रतिपादन में उनके द्वारा कदम उठाये गये हैं। वर्तमान में प्रबंधकीय लेखा–विधि में प्रयुक्त विभिन्न औजारों को निम्नलिखित वर्गों में रखा जा सकता है :

(अ) **वित्तीय लेखांकन सूचनाओं पर आधारित औजार :**
- (i) अनुपात विश्लेषण (Ratio Analysis)
- (ii) तुलनात्मक विवरण, बिन्दुरेखीय चित्र, औसत आदि (Comparative Statements, Trend, Graph, Average, etc.)
- (iii) फण्ड–बहाव व रोकड़–बहाव विवरण (Fund-Flow and Cash-Flow Statement)
- (iv) विनियोजित पूंजी पर प्रत्याय की दर तकनीकी (Return on Capital Employed Techniques)

(ब) **लागत लेखांकन सूचनाओं पर आधारित औजार :**
- (i) सीमावर्ती लागत पद्धति व लागत–मात्रा–लाभ विश्लेषण (Marginal Costing and Cost-Volume-Profit Analysis)
- (ii) प्रत्यक्ष लागत पद्धति (Direct or Incremental Costing)
- (iii) प्रमाप लागत पद्धति (Standard Costing)
- (iv) लागत विचरणांष विश्लेषण (Analysis of Cost Variances)

(स) **भावी सूचनाओं पर आधारित औजार :**
- (i) व्यावसायिक पूर्वानुमान (Business Forecasting)
- (ii) बजट तथा बजटिंग (Budget and Budgeting)
- (iii) बजटरी नियन्त्रण व बजट विचरणांश नियन्त्रण (Budgeting Control & Analysis of Budget Variances)
- (iv) परियोजना मूल्यांकन (Project Appraisal)

(द) **गणित पर आधारित औजार :**
- (i) संचालनात्मक अनुसन्धान (Operational Research)
- (ii) रेखीय कार्यक्रम (Linear Programming)
- (iii) खेल का सिद्धान्त व पंक्ति का सिद्धान्त (Games Theory and Queing Theory)
- (iv) शुद्ध–कार्य विश्लेषण (Net Work Analysis)
- (v) समरूपता सिद्धान्त (Simulation Theory)

## प्रबंध–लेखपाल
## (Management Accountant)

जो व्यक्ति प्रबंध लेखांकन का कार्य करता है उसे प्रबंधन–लेखपाल कहते हैं। दूसरे शब्दों में प्रबंध–लेखपाल वह व्यक्ति होता है जो किसी संस्था में प्रबंध–लेखांकन को व्यावहारिक रूप देता है तथा लेखांकन एवं वित्तीय मामलों से सम्बन्धित आवश्यक सूचना एकत्रित करके उचित प्रारूप में विभिन्न स्तर के प्रबंधकों को प्रस्तुत करता है ताकि वे अपना कार्य कुशलतापूर्वक निष्पादित कर सकें, नीति निर्धारित कर सकें एवं आवश्यक निर्णय ले सकें। अमेरिका में इन्हें 'नियंत्रक' (Controller) अथवा 'वित्तीय नियंत्रक' (Finance Controller) कहा जाता है। भारत में कुछ कम्पनियों विशेष रूप से

सरकारी कम्पनियों में इसे वित्तीय नियंत्रक या वित्त निदेशक पदनाम से सम्बोधित किया जाता है। इसके अतिरिक्त इसे कुछ अन्य नामों जैसे मुख्य लेखापाल, लेखांकन प्रबंधक, लेखा नियन्त्रक, वित्तीय सलाहकार आदि नामों से भी संबोधित किया जाता है। वस्तुतः प्रबंधकीय लेखापाल की भूमिका व्यावहारिक रूप से नियन्त्रक की नहीं होती बल्कि उसका कार्य तो रेखा अधिकारियों (Line Authorities) को उनकी संचालन क्रियाओं में सहायता प्रदान करना होता है।

**प्रबंध लेखापाल की स्थिति** (Status or Position of Management Accountant) – किसी भी उपक्रम की प्रबंधकीय क्रम व्यवस्था (Managerial Hierarchy) में प्रबंध–लेखापाल का कोई एक निश्चित स्थान नहीं है।

किसी एक संस्था में उसे एक अधिकारी (executive) के रूप में माना जा सकता है तो अन्य किसी संस्था में यह संचालक मण्डल का सदस्य भी हो सकता है। वस्तुतः संस्था में उसकी स्थिति केवल उसके पद से जुड़ी हुई नहीं होती बल्कि यह उसके व्यक्तित्व, उसकी मानसिक स्थिति, उसकी व्यक्तिगत योग्यता, कार्यकुशलता, ईमानदारी तथा प्रबंध संचालक एवं संचालक मण्डल को विश्वास दिलाने की क्षमता पर निर्भर करती है। इसके अतिरिक्त संचालन मण्डल तथा कम्पनी के पार्षद सीमा नियम द्वारा निर्धारित नियुक्ति की शर्तें भी प्रबंध लेखापाल की स्थिति को प्रभावित करती हैं। अतः प्रबंधकीय लेखापाल की स्थिति विभिन्न व्यावसायिक संस्थाओं में भिन्न–भिन्न होती है। सामान्यतः प्रबंध लेखापाल संस्था में लेखांकन विभाग का अध्यक्ष अथवा प्रमुख लेखा अधिकारी होता है। इस प्रकार उसका स्थान उच्च–स्तरीय प्रबंध में होता है। वित्तीय मामलों के संबंध में संस्था का सर्वोच्च अधिकारी एवं विशेषज्ञ होने के कारण वह सीधा संचालन मण्डल अथवा प्रबन्ध–संचालक के प्रति उत्तरदायी होता है। वह लेखांकन प्रणाली के सम्बंध में अन्य विभागों के लिए अपने सुझाव प्रबंधक–संचालन को भेज देता है तथा प्रबंध–संचालक इन सुझावों के आधार पर आवश्यक निर्देश संबंधित लेखा अधिकारियों के पास भेज देता है। इस प्रकार वह केवल स्टाफ विशेषज्ञ है जिसका अन्य विभागों पर नियन्त्रण नहीं होता बल्कि वह अन्य विभागाध्यक्षों के समन्वय एवं सहयोग से कार्य करता है। अमेरिका की कन्ट्रोलर्स इन्स्टीट्यूट कमेटी ने प्रबंध लेखापाल अथवा नियन्त्रक की संगठनात्मक स्थिति के संबंध में निम्नलिखित संस्तुति की है –

(1) नियन्त्रक नीति निर्धारित करने वाले स्तर पर एक कार्यकारी अधिकारी होना चाहिए जो संस्था के मुख्य कार्यकारी अधिकारी (प्रबन्ध संचालक अथवा मुख्य प्रबन्धक) के प्रति प्रत्यक्ष रूप से उत्तरदायी हो।

(2) नियंत्रक से अन्य आवश्यक सूचनाओं के साथ–साथ व्यापार की क्रियाशीलता के परिणाम तथा वित्तीय स्थिति को प्रभावित करने वाले प्रतिवेदनों को सीधा संचालक मण्डल को प्रस्तुत करने के लिए कहा जाए।

(3) नियन्त्रक, संचालक मण्डल तथा अन्य उच्चस्तरीय नीति निर्धारित करने वाली समितियों का सदस्य होना चाहिए। यदि ऐसा नहीं है तो कम से कम नियन्त्रक को संचालक मण्डल की सभाओं में उपस्थित होने तथा अपनी बात कहने का अधिकार होना चाहिए।

## प्रबंध लेखापाल अथवा नियंत्रक के गुण
## (Qualities of a Management Accountant or Controller)

सामान्यतः एक प्रबंध लेखापाल में निम्नलिखित गुणों का होना आवश्यक माना गया है –

(1) **लेखांकन का ज्ञान** (Knowledge of Accounting) – प्रबंध लेखापाल को वित्तीय लेखांकन एवं लागत लेखांकन की पूर्ण जानकारी होनी चाहिए। यदि उसे लेखांकन की सम्पूर्ण जानकारी नहीं होगी तो वह प्रबंधकों को वांछित सूचना का प्रेषण नहीं कर पायेगा।

(2) **सांख्यिकी का ज्ञान** (Knowledge of Statistics) – प्रबंध लेखापाल को सांख्यिकी की

विभिन्न विधियों की भी अच्छी जानकारी होनी चाहिए। सांख्यिकी विधियों की सही जानकारी होने पर ही वह समंकों का उचित वर्गीकरण एवं विश्लेषण करके उन्हें रेखाचित्रों चार्टों, तालिकाओं आदि के माध्यम से विभिन्न स्तर के प्रबंधकों के समक्ष प्रस्तुत कर सकता है।

(3) **अर्थशास्त्र का ज्ञान** (Knowledge of Economics) – मांग और आपूर्ति के आधार पर मूल्य निर्धारण, अनुकूलतम उत्पादन मात्रा का निर्धारण, पूंजी का पूर्ण उपयोग आदि बातें अर्थशास्त्र के नियमों पर आधारित हैं। इनको ध्यान में रखते हुए प्रबंध लेखापाल द्वारा भावी अनुमान लगाये जाते हैं तथा संस्था की भावी नीति का निर्धारण किया जाता है। अतः प्रबंध लेखापाल को अर्थशास्त्र का पूर्ण ज्ञान होना आवश्यक है।

(4) **कानून का ज्ञान** (Knowledge of Law) – वर्तमान व्यवस्था कानूनी जटिलताओं से घिरी हुई है। वस्तुतः एक व्यावसायिक संस्था को आयकर अधिनियम, कम्पनी अधिनियम आदि अनेक कानूनों के अन्तर्गत कार्य करना पड़ता है। नयी अंश–पूंजी का निर्गमन, लाभांश का वितरण, ह्रास एवं संचय, अन्तिम खातों का प्रकाशन एवं अंकेक्षण आदि के लिए भी विभिन्न कानूनी व्यवस्थाएं हैं, जिनका पालन किया जाना आवश्यक है। अतः नियन्त्रक को व्यवसाय को प्रभावित करने वाले समस्त कानूनों का ज्ञान होना चाहिए।

(5) **मनोविज्ञान का ज्ञान** (Knowledge of Psychology) – प्रबंध लेखापाल का कार्य केवल लागतों पर ही नियन्त्रण करना नहीं है बल्कि अपने अधीनस्थ कर्मचारियों पर भी नियन्त्रण करना है। कार्यकारी अधिकारी होने के कारण उसे उनसे कार्य लेने के साथ–साथ अन्य विभागाध्यक्षों से सहयोग भी लेना होता है। इन सभी कार्यों के लिए उसे एक कुशल मनोवैज्ञानिक विश्लेषक होना भी आवश्यक है जिसके लिए मनोविज्ञान का ज्ञान परमावश्यक है।

(6) **व्यक्तिगत गुण** (Personal Qualities) – एम॰ ई॰ मर्फी के अनुसार प्रबंध लेखापाल में प्रबंधकों के विचार को जानने, उनके द्वारा मांगी गई सूचना के महत्त्व को समझने, संस्था की लाभदायकता तथा प्रगति सम्बन्धित विषयों पर सोचने एवं प्रबन्धकों से विचार विमर्श करने, एक विशेषज्ञ सलाहकार की आवश्यक समझ, व्यवहार कुशलता, ईमारदारी, कार्य की प्रति निष्ठा, विनोदी स्वभाव आदि गुणों का होना आवश्यक है।

## प्रबंध लेखापाल अथवा नियन्त्रक के कार्य/कर्त्तव्य
## (Functions/Duties of Management Accountant or Controller)

प्रबंध लेखापाल का प्रमुख कार्य व्यवसाय के प्रबंधकों को आवश्यक सूचनाएं उपलब्ध कराना है, ताकि प्रबन्धकीय कार्यों का निष्पादन कुशलतापूर्वक किया जा सके। उसे समस्त सूचनाओं को उपलब्ध कराने के लिये वित्तीय एवं लागत लेखांकन के अतिरिक्त बाह्य स्रोतों से भी सूचनाओं का संग्रह एवं सम्पादन का कार्य करना पड़ता है, ताकि व्यवसाय के संचालन एवं नियन्त्रण में सहायता मिल सके। इस हेतु सामान्यतः प्रबन्ध लेखापाल को निम्नलिखित कार्य करने पड़ते हैं –

(1) **सूचनाओं का विश्लेषण एवं पुनर्विन्यास** (Analysis and Rearrangement of Informations) – विभिन्न स्रोतों से प्राप्त सूचनाएं अव्यवस्थित, उलझी हुई तथा जटिल होती हैं जिन्हें यदि उसी रूप में प्रबन्धकों के समक्ष प्रस्तुत किया जाये तो कोई लाभकारी निष्कर्ष निकालना सम्भव नहीं होता। प्रबन्ध लेखापाल इन प्राप्त सूचनाओं का विश्लेषण, वर्गीकरण, सम्पादन एवं पुनर्विन्यास करके प्रबन्धकों के समक्ष इस रूप में प्रस्तुत करता है ताकि प्रबन्धकों के द्वारा उन सूचनाओं का प्रयोग करके सही निष्कर्ष को प्राप्त किया जा सके।

(2) **सूचनाओं का मूल्यांकन** (Evaluation of Informations) – प्रबन्ध लेखापाल/नियन्त्रक प्राप्त सूचनाओं की जांच एवं मूल्यांकन करके उनमें से सारहीन, असंगत तथा व्यर्थ की सूचनाओं को अलग करता है और महत्वपूर्ण व औचित्यपूर्ण सूचनाओं को महत्व के क्रम में विन्यासित करके

प्रबन्धकों के समक्ष प्रस्तुत करता है।

(3) **सूचनाओं की व्याख्या या निर्वचन** (Interpretation of Informations) – प्राप्त सूचनाओं के विश्लेषण, पुनर्विन्यास एवं मूल्यांकन से ही कोई निष्कर्ष निकालना सम्भव नहीं है जब तक कि उन सूचनाओं की व्याख्या न की जाये। व्याख्या करने से ही सूचनाओं से सम्बन्ध से विस्तृत जानकारी हो पाती है। लेखापाल पूर्व–निर्धारित प्रमापों की तुलना वास्तविक कार्य निष्पादन से करता है तथा अंदर के कारण एवं इसके लिए उत्तरदायी व्यक्तियों का पता लगाता है तत्पश्चात् उद्देश्यों की प्राप्ति के सम्बन्ध में प्रबंधकों के समक्ष अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत करता है।

(4) **सूचनाओं का प्रस्तुतिकरण** (Presentation of Informations) – प्रबंध लेखापाल/नियन्त्रक का अन्तिम एवं महत्वपूर्ण कार्य सूचनाओं को उचित समय पर प्रबन्धकों को समक्ष प्रस्तुत करता है जिसने प्रबन्धकीय कार्यों का कुशलतापूर्वक निष्पादन किया जा सके।

## प्रबन्ध–लेखापाल की भूमिका
## (Role of Management Accountant)

प्रबन्ध–लेखापाल की किसी भी संस्था में महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इसे प्रबन्ध के आंख और कान कहा जाता है। वस्तुतः इसका व्यावसायिक संस्था में वही स्थान होता है जो स्थान मानव शरीर में नाड़ी–तन्त्र (Nervous System) का होता है यह एक कुशल व्यवसाय विश्लेषक होता है जोकि अपने प्रशिक्षण और अनुभव के कारण व्यवसाय के वित्तीय लेखों के रखने तथा प्रबन्ध के मार्गदर्शन के लिये इनकी व्याख्या करने के लिये संस्था का सर्वाधिक योग्य व्यक्ति होता है।

पी॰ एल॰ टण्डन के शब्दों में, प्रबन्ध लेखापाल की स्थिति पहिये में आरा की तरह है जो सूचना प्राप्त करने वाले केन्द्र तथा पहिये के किनारे को जोड़ता है। वह सूचना को संशोधित करता है तथा संशोधित (processes) सूचना को जहां से वह आई थी, वापस लौटा देता है।

टण्डन का उपर्युक्त कथन संस्था में उसके महत्व को प्रकट करता है। सामान्यतः प्रबन्ध लेखापाल संस्था के लेखांकन विभाग का अध्यक्ष अथवा प्रमुख लेखा अधिकारी होता है। इस प्रकार उसका स्थान उच्च–स्तरीय प्रबन्ध में होता है। वित्तीय मामलों के सम्बन्ध में संस्था का सर्वोच्च अधिकारी एवं विशेषज्ञ होने के कारण वह सीधा संचालन मण्डल अथवा प्रबन्ध–संचालन के प्रति उत्तरदायी होता है। वह लेखांकन प्रणाली के सम्बन्ध में अन्य विभागों के लिये अपने सुझाव प्रबन्ध–संचालक को भेज देता है तथा प्रबन्ध–संचालक इन सुझावों के आधार पर आवश्यक निर्देश सम्बन्धित लेखा अधिकारियों के पास भेज देता है। इस प्रकार वह केवल स्टाफ विशेषज्ञ है जिसका अन्य विभागों पर कोई नियन्त्रण नहीं होता बल्कि वह अन्य विभागाध्यक्षों के समन्वय एवं सहयोग से कार्य करता है।

## प्रबन्ध लेखापाल/नियन्त्रक का उत्तरदायित्व
## (Responsibility of Management Accountant or Controller)

प्रबन्ध लेखापाल का महत्वपूर्ण कार्य विभिन्न स्तरों के प्रबन्धकों को सूचनाएं प्रेषित करना तथा उसकी व्याख्या करना होता है। प्रबन्ध लेखापाल द्वारा प्रेषित सूचनाओं के आधार पर ही प्रबन्धक व्यवसाय के सन्दर्भ में महत्वपूर्ण निर्णय लेते है। इस सम्बन्ध में एक प्रश्न यह उठता है कि उसके द्वारा दी गई सूचनाओं के आधार पर यदि प्रबन्धक गलत निर्णय लेते हैं तो उसके लिये किसे उत्तरदायी ठहराया जाये–प्रबन्ध लेखापाल को अथवा प्रबन्धकों को। इस सम्बन्ध में निम्नलिखित दो बातें ध्यान में रखनी चाहिये –

(1) **मामले की स्थिति** (Condition of Matter) – यदि प्रबन्ध लेखापाल अपनी पूर्ण सावधानी के साथ प्रबन्धकों को सूचना प्रेषित करता है तथा उन्हें इस प्रकार प्रबन्धकों के समक्ष रखता है,

ताकि उसका सही निर्वचन हो सके तो इसके लिए प्रबन्ध लेखापाल उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता है। इसके विपरीत, यदि लेखापाल द्वारा प्रेक्षित सूचनाएं त्रुटिपूर्ण, अशुद्ध, पक्षपातपूर्ण तथा भ्रमोत्पादक हैं तथा उनके आधार पर गलत निर्णय हो गये हैं तब ऐसी स्थिति में प्रबन्ध लेखापाल को निःसन्देह उत्तरदायी ठहराया जा सकता है।

(2) **प्रबन्ध लेखापाल की स्थिति** (Position of Management Accountant) – प्रबन्ध लेखापाल के उत्तरदायित्व के सम्बन्ध में संस्था में उसकी स्थिति पर भी ध्यान दिया जाना चाहिये। यदि प्रबन्ध लेखापाल की स्थिति केवल सूचनाओं के अभिलेखन तथा उक्त सूचनाओं को प्रेषित करने तक ही सीमित है तो उसके द्वारा प्रेषित सूचनाओं के आधार पर किये गये गलत प्रबन्धकीय निर्णयों हेतु उसे उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता है। इसके विपरीत, यदि प्रबन्ध लेखापाल सूचनाओं के अभिलेखन तथा प्रेषण के साथ–साथ व्यावसायिक क्रियाओं के नियोजन, नीति निर्धारण तथा निर्णयन में भी सक्रिय भाग लेता है अर्थात् वह भी प्रबन्ध–समुदाय का एक महत्वपूर्ण सदस्य है तो ऐसी स्थिति में गलत प्रबन्धकीय निर्णयों के लिए भी उत्तरदायी ठहराया जायेगा।

# यूनिट – 2

## वित्तीय विवरण
## (Financial Statement)

वित्तीय विवरण से तात्पर्य किसी भी मौद्रिक विवरण से हो सकता है, जो किसी व्यवसाय या उद्योग के सम्बन्ध में आवश्यक वित्तीय सूचनाओं को प्रदर्शित करता हो। परन्तु वर्तमान काल में 'वित्तीय विवरण' के अन्तर्गत दो खातों या विवरणों को सम्मिलित किया जाता है जिन्हें लेखापालक किसी निश्चित अवधि के अन्त में तैयार करता है। ये दो विवरण हैं – आर्थिक चिट्ठा अथवा वित्तीय स्थिति का विवरण और लाभ–हानि खाता या आय विवरण (Income Statement)। वर्तमान व्यावसायिक संस्थाओं द्वारा एक तीसरा विवरण भी तैयार किया जाने लगा है जिसे 'आधिक्य विवरण' या 'बचत लाभ विवरण' के नाम से जाना जाता हैं। पाश्चात्य देशों में एक चौथा विवरण भी तैयार किया जाने लगा है जिसे वित्तीय स्थिति में परिवर्तन का विवरण कहते हैं।

उपर्युक्त विवरण में प्रदत्त आंकड़ों एवं सूचनाओं के पूरक रूप में विभिन्न प्रकार की अनुसूचियां भी तैयार की जाती हैं। इन अनुसूचियों में मुख्य रूप से 'स्थायी सम्पत्तियों की अनुसूची', 'देनदारों की अनुसूची', 'लेनदारों की अनुसूची', 'संचितियों की अनुसूची', 'विक्रय–योग्य वस्तुओं की लागत की अनुसूची', आदि को शामिल कर सकते हैं। विश्लेषण व निर्वचन के दृष्टिकोण से, इन अनुसूचियों को वित्तीय विवरणों का ही भाग माना जाता है। यहां पर प्रत्येक विवरण की प्रकृति व उद्देश्य के बारे में जानना अनावश्यक नहीं है।

### वित्तीय विवरणों की प्रकृति (Nature of Financial Statements)

(1) वित्तीय विवरण ऐतिहासिक प्रलेख होते हैं। ये घटित घटनाओं के सारांश मात्र ही होते हैं।

(2) वित्तीय विवरण 'व्यापार की चालू अवधारणा' की मान्यता के आधार पर तैयार किये जाते हैं। इसलिये चिट्ठे में व्यवसाय की सम्पत्तियों को उनके लागत मूल्य पर दिखलाया जाता है, न कि बाजार मूल्य पर।

(3) वित्तीय विवरण लेखा–वर्ष की समाप्ति पर तैयार किये जाते हैं।

(4) वित्तीय विवरणों में प्रदर्शित समंक तथ्यों, लेखांकन परम्पराओं तथा लेखापाल के व्यक्तिगत निर्णयों के सामूहिक परिणाम होते हैं।

**लाभा–लाभ खाता और स्थिति विवरण तथ्य और मत दोनों ही दिखलाते हैं।** A.I.C.P.A. के अनुसार "…. They (financial statements) reflect a combination of recorded facts, accounting conventions and personal judgements and the judgements and conventions applied affect them materially." अतः स्पष्ट है कि वित्तीय विवरणों में प्रदर्शित समंक तथ्यों और व्यक्तिगत निर्णय दोनों पर आधारित होते हैं।

(1) **लिपिबद्ध तथ्य** (Recorded Facts) – वित्तीय विवरणों के सम्बन्ध में ''लिपिबद्ध तथ्यों'' का आषय यह है कि इनमें दिखाये गये समंक लेखा–अभिलेखों (accounting records) में अभिलिखित वास्तविक घटनायें ही होते हैं। व्यावसायिक लेन–देन सबसे पहले हिसाब–किताब की पुस्तकों में लिखे जाते हैं और फिर इन पुस्तकों में विभिन्न खातों के शेषों से ही वित्तीय विवरण तैयार किये जाते हैं। इस प्रकार ये वित्तीय विवरण तथ्य ही प्रदर्शित करते हैं। उदाहरण के स्वरूप स्थिति विवरण में दिखाई गई हस्तस्थ रोकड़ (Cash in hand), बैंक में रोकड़, देनदार, देय बिल, प्राप्य बिल, स्कन्ध, स्थायी सम्पत्तियों की लागत आदि सभी अभिलिखित तथ्य ही होते हैं। चूँकि ये मदें ऐतिहासिक अभिलेख के आधार पर दिखायी जाती हैं, अतः ये घटना के समय के मूल्यों पर ही दिखाये जाते हैं।

इसीलिये वित्तीय विवरणों में वर्तमान मूल्य (Current Value) या आर्थिक मूल्य (Economic value) का समावेश नहीं हो पाता है। वित्तीय विवरणों के तथ्यों पर आधारित होने का एक महत्वपूर्ण प्रभाव यह होता है कि ऐसे बहुत से महत्वपूर्ण कारक वित्तीय विवरणों में नहीं दिखलाये जाते हैं जोकि लेखा अभिलेखों में नहीं लिखे गये हैं, जैसे अपूर्त आदेश (Unfilled Orders), क्रय–विक्रय के अनुबन्ध या वायदे, गारंटियाँ आदि। चिट्ठे में इन्हें टिप्पणियों के रूप में दिखलाया जा सकता है।

(2) **लेखांकन प्रथायें** (Accounting Conventions) – वित्तीय विवरणों की तैयारी में लेखांकन की प्रथायें पर्याप्त प्रभाव रखती हैं। व्यवसाय के व्ययों का पूँजीगत और आयगत में विभाजन, स्थायी सम्पत्तियों की लागत को विभिन्न लेखावधियों में फैलाना, ह्रास पद्धति का चुनाव, स्कन्ध का मूल्यांकन आदि लेखांकन प्रथाओं से प्रभावित होते हैं। लेखांकन की सारता की प्रथा (Materiality Convention) के कारण पेन्सिल, पैन आदि कम कीमत के माल को एक्सपेन्डीचर के वर्श का ही व्यय मान लिया जाता है जबकि मशीन आदि कीमती माल को सम्पत्ति माना जाता है। इन्हीं प्रथाओं के कारण लेखा वर्ष के अन्त में डाक टिकट के शेष को सम्पत्तियों में न दिखाकर उस अवधि का ही व्यय मान लिया जाता है। इसी तरह स्टेशनरी को लागत या बाजार में से जो भी कम हो, के आधार पर न मूल्यांकित करके लागत पर ही मूल्यांकित किया जाता है। इसी तरह ऐसे बहुत से क्षेत्र हैं जहाँ वित्तीय विवरणों की तैयारी में लेखांकन की सारता, रूढ़िवादिता तथा समरूपता की प्रथाओं का पालन किया जाता है।

(3) **स्वयं सिद्ध** (Postulates) – वित्तीय विवरणों को तैयार करते समय लेखापाल कुछ बातों को स्वीकृत मानकर चलता है, चाहे उनकी सत्यता संदेहजनक ही क्यों न हो। उदाहरण के लिये लेखापाल रुपये के मूल्य को स्थिर मानकर चलता है तथा विभिन्न तिथियों पर किये गये लेन–देनों में कोई अन्तर नहीं करता। इसी प्रकार 'व्यवसाय की चालू स्थिति' की मान्यता को लेकर यह स्थायी सम्पत्तियों को उनके लागत–मूल्य पर दिखलाता है। इसी तरह आय वसूली के सम्बन्ध में यह बिक्री होते ही लाभ अर्जित मान लेता है, चाहे इस बिक्री के धन को वसूल करने में काफी लम्बा समय ही क्यों न लग जाये।

(4) **व्यक्तिगत निर्णय** (Personal Judgements) – वित्तीय विवरणों पर लेखापाल के व्यक्तिगत मतों का भी प्रभाव पड़ता है। लेखांकन में ऐसे बहुत से क्षेत्र हैं जहाँ पर लेखांकन की कई वैकल्पिक पद्धतियाँ प्रचलित हैं। इन पद्धतियों के परिणाम भी एक दूसरे से अलग होते हैं। किसी संस्था में कई वैकल्पिक रीतियों में से कौन–सी रीति प्रयोग की जाय, यह उस संस्था के लेखापाल के व्यक्तिगत निर्णय पर निर्भर करेगा। उदाहरण के लिये स्कन्ध का मूल्यांकन प्रायः 'लागत या बाजार मूल्य' में जो भी कम हो, के आधार पर किया जाता है। स्कन्ध की लागत बिक्री, फिफो लीफो, प्रमापित लागत, औसत लागत आदि किसी भी आधार पर ज्ञात की जा सकती है। किसी संस्था में इनमें से कौन सा आधार अपनाया जाये, यह संस्था के लेखापाल के मत पर निर्भर करता है। इसी तरह अशोध्य ऋण संचिति की राशि का निर्धारण, स्थायी सम्पत्तियों पर ह्रास गणना की पद्धति तथा ह्रास दर का चयन, व्ययों का आयगत और पूँजीगत में बँटवारा, कृत्रिम सम्पत्तियों के अपलेखन (write off) की अवधि का निर्धारण आदि मामलों में लेखापाल का मत प्रभाव डालता है और इस प्रकार वित्तीय विवरणों की मदें वास्तविकता से परे भी जा सकती हैं।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि वित्तीय विवरणों की मदें अभिलिखित तथ्यों, लेखांकन प्रथाओं और लेखापाल के व्यक्तिगत निर्णयों का सामूहिक परिणाम होती हैं तथा इसका वित्तीय विवरणों पर सामूहिक प्रभाव यह होता है कि ये विवरण जब तक विशिष्ट रूप से ही न तैयार किये जायें, चालू आर्थिक मूल्य नहीं दर्शाते हैं।

## आदर्श वित्तीय विवरणों के गुण या विशेषताएँ
## (Attributes or Characteristics of Ideal Financial Statement)

वित्तीय विवरणों को तब आदर्श कहा जा सकता है जबकि वे व्यवसाय की स्थिति तथा उसकी लाभप्रदता का सही एवं सच्चा चित्र प्रस्तुत करें। अमेरिकन एकाउन्टिंग एसोसिएशन ने वित्तीय विवरणों के गुणों में सरलता, विषयपरकता तथा एकरूपता पर जोर दिया है। उनके शब्दों में, "Every corporate statements should be based on accounting principles which are sufficiently uniform, objective and well understood to justify opinions as to the condition and progress of the business enterprise behind it." इस प्रकार एक आदर्श वित्तीय विवरणों में निम्नलिखित गुण होते हैं –

(1) **प्रासांगिकता या अनुरूपता** (Relevance) – वित्तीय विवरण व्यवसाय के उद्देश्यों के अनुरूप होने चाहियें। ऐसा तभी सम्भव है जबकि लेखापालक को यह जानकारी हो कि इन लेखों का किस प्रकार प्रयोग किया जायेगा।

(2) **सरलता** (Easiness) – वित्तीय विवरणों की रचना को सरल बनाया जाये। रचना में सरलता से अभिप्राय यह है कि इनके लिये आवश्यक समंक खाताबाही से सरलता से प्राप्त होने चाहिये। इसके लिये बहुत गणनाओं की आवश्यकता नहीं होनी चाहिये। इसके अतिरिक्त इसका आकार बहुत बड़ा नहीं होना चाहिये और लेखा–मशीनों के प्रयोग के योग्य होना चाहिये। इनमें बहुत अधिक कॉलम हो एवं इन्हें विवरण रूप में तैयार किया जाये।

(3) **साधारण व्यक्ति के लिये भी सगम** (Intelligible to a Common Man) – वित्तीय विवरण स्पष्ट व बोधगम्य होने चाहिये। ये इस प्रकार से तैयार किये जायें जिससे कि लेखाशास्त्र के सिद्धान्तों का ज्ञान न रखने वाला व्यक्ति भी इनका अध्ययन कर सके और उन्हें समझ सके। इसके लिये यह उचित होगा कि इनका प्रारूप हो, जहाँ तक हो सके सरल एवं गैर–तकनीकी भाषा का प्रयोग किया जाये तथा महत्वपूर्ण मदों और उनकी राशियों को बड़े अक्षरों में अथवा भिन्न स्याही में दिया जाये।

(4) **शुद्धता** (Accuracy) – वित्तीय विवरण पूर्णतया शुद्ध होने चाहियें जिससे कि इनके अध्ययनकर्त्ता इनसे व्यवसाय की स्थिति, प्रगति और भविष्य की सही जानकारी प्राप्त कर सकें।

(5) **पूर्णता** (Completeness) – वित्तीय विवरणों में व्यवसाय से सम्बन्धित सभी सूचनायें एवं आँकड़े दिये जायें किन्तु अनावश्यक, अमहत्वपूर्ण व विस्तृत आँकड़े और सूचनाओं को देकर इन्हें अनावश्यक विस्तृत तथा जटिल नहीं बनाया जाना चाहिये। अंतः पूर्णता के साथ–साथ इनकी संक्षिप्तता पर भी ध्यान देना चाहिये।

(6) **आकर्षक** (Attractive) – वित्तीय विवरण तैयार करते समय महत्वपूर्ण सूचना रेखांकित करके अथवा बड़े अक्षरों में या किसी भिन्न स्याही से दी जानी चाहिये जिससे कि पाठकों का ध्यान वित्तीय विवरणों की सर्वाधिक महत्वपूर्ण मदों की ओर स्वतः ही खिंचाये।

(7) **तुलनात्मक** (Comparability) – जब तक वित्तीय विवरण के परिणामों की तुलना न की जाये, इन परिणामों का कोई महत्व नहीं होता। अतः ये इस प्रकार तैयार किये जायें कि जिससे विभिन्न अंकों की तुलना सम्बन्धित पिछली अवधियों से अथवा अन्य उसी प्रकार की संस्थाओं से की जा सके। यह तुलना पूर्व–निर्धारित प्रमापों या लक्ष्यों से भी की जा सकती है। व्यवसाय के भूतकालीन क्रियाकलापों से तुलना के लिये यह उचित होगा कि वित्तीय विवरणों में वर्तमान वर्ष के समंकों के साथ–साथ गत वर्ष के समंक भी दिये जायें। इनके विश्लेषणात्मक परीक्षण के लिये पिछले वर्ष के समंक बहुत उपयोगी सिद्ध होते हैं। वित्तीय विवरणों में तुल्यता के लिये प्रतिवर्ष में एकरूपता बनाये रखना तथा एकरूप व विषयपरक लेखा–सिद्धान्तों का प्रयोग करना आवश्यक होगा।

(8) **शीघ्रता** (Promptness) – वित्तीय विवरणों को लेखा–वर्श की समाप्ति के पष्चात् अति षीघ्र प्रकाषित कर देना चाहिये।

(9) **विश्लेषणात्मक प्रस्तुतीकरण** (Analytical Representation) – वित्तीय विवरणों में इनके विश्लेषण और व्याख्या के लिये आवश्यक सूचनायें स्पष्ट व वर्गीकृत रूप में प्रस्तुत की जानी चाहियें जिससे कि विश्लेषण के लिये आवश्यक मदें व अंक सरलतापूर्वक ज्ञात की जा सके। वित्तीय विवरणों में कुछ महत्वपूर्ण अनुपात देकर इनकी महत्वपूर्ण मदों के आपसी सम्बन्धों को प्रकट किया जा सकता है। वित्तीय विश्लेषण में ये अनुपात बहुत सहायक सिद्ध होते हैं।

(10) **अनुसूचियों का प्रयोग** (Use of Schedules) – यदि वित्तीय विवरणों की किन्हीं मदों के सम्बन्ध में विस्तृत सूचना देना आवश्यक है तो इस प्रकार की विस्तृत सूचनाओं को वित्तीय विवरणों के पश्चात् अनुसूचियों के रूप में देना चाहिये। यद्यपि ये अनुसूचियाँ वित्तीय विवरणों का अंग होती हैं, किन्तु इनके देने से वित्तीय विवरण का मुख्य भाग आँकड़ों के जंजाल से बच जाता है।

## वित्तीय विवरणों में हित रखने वाले पक्ष अथवा इनका महत्व
## (Parties Interested in Financial Statements or their Importance)

वित्तीय विवरण किसी कम्पनी के एक बहुत ही उपयोगी प्रपत्र माने जाते हैं। हेनरी फेयोल के शब्दों में, ''वित्तीय विवरण किसी भी उपक्रम की आँखें होते हैं।'' कम्पनी के क्रियाकलापों से सम्बन्धित प्रत्येक पक्ष इनमें हित रखता है। कम्पनी की अर्जन क्षमता, शोधनक्षमता एवं इसके विवरण में प्रबन्ध व अंशधारियों के साथ–साथ विनियोक्ता, ऋणदाता, ऋण–पत्रधारक, बैंक, सरकार आदि सभी पक्ष पर्याप्त रुचि रखते हैं। इन विभिन्न पक्ष के लिये इनका महत्व इस प्रकार है –

(1) **प्रबन्ध** (Management) – वित्तीय विवरणों का सर्वप्रथम उपयोग उन लोगों की सेवा करना है जो व्यवसाय का संचालन व नियन्त्रण करते हैं। प्रबन्ध अपनी नीतियों और निर्णय की सफलता चिट्ठे, लाभ–हानि खाते और अंकेक्षक के प्रतिवेदन से ही आँकता है। इनके आधार पर ही वह अपने कर्मचारियों की कार्यकुशलता का विश्लेषण एवं जाँच कर सकता है। ये विवरण ही प्रबन्ध को अपने व्यवसाय की सम्पूर्ण उद्योग से या उसी व्यवसाय में लगी अन्य इकाइयों से अथवा अपने ही व्यवसाय के पिछले क्रियाकलापों से तुलना करने का अवसर प्रदान करते हैं। इनसे ही प्रबन्ध को विवरणात्मक रूप में उन कारणों का भी ज्ञान हो जाता है, जो व्यावसायिक स्थिति के परिणाम के लिये उत्तरदायी होते हैं। ये विवरण ही प्रबन्ध की वित्तीय नीति, नियोजन व नियंत्रण के आधार होते हैं। वास्तव में व्यवसाय के संचालन और नियंत्रण के लिए ये विवरण प्रबन्ध के लिये आवश्यक उपकरण होते हैं।

(2) **बैंक** (Bankers) – बैंक अपने ग्राहकों को साख सुविधायें प्रदान करते हैं। ऋण देते समय प्रत्येक बैंक इनकी अन्तिम रूप से वसूली में ही रूचि नहीं रखता, बल्कि वह यह भी जानना चाहता है कि उसका ऋण वायदानुसार समय पर भुगतान कर दिया जाये। प्रत्येक बैंक के बहुत से ग्राहक होते हैं तथा विस्तृत क्षेत्र में फैले हुए होते हैं। एक बैंक के लिये उनसे व्यक्तिगत सम्पर्क सामान्यतया सम्भव नहीं होता। अतः बैंक अपने ग्राहक की आर्थिक स्थिति, लाभार्जन–क्षमता, भावी योजनाओं व विकास के सम्बन्ध में आवश्यक सूचनायें वित्तीय विवरणों से ही प्राप्त करता है। वित्तीय विवरणों में चिट्ठा बैंक के लिये सबसे अधिक महत्वपूर्ण प्रलेख होते हैं। इसके विश्लेषण से ही बैंक ग्राहक की वास्तविक व तकनीकी शोधनक्षमता का ज्ञान प्राप्त करता है तथा वित्तीय जोखिम की मात्रा (degree of financial risk) निर्धारित करता है।

(3) **व्यापारिक लेनदार** (Trade Creditors) – इनका भुगतान अल्पकाल में ही करना होता है। अतः बैंक की तरह ये भी कम्पनी की तकनीकी शोधनक्षमता पर ही अपना ध्यान केन्द्रित रखते हैं। यद्यपि यह साख अधिकतर क्रेता की आर्थिक स्थिति की व्यापारिक पूछताछ, ईमानदारी और भुगतान

क्षमता के आधार पर प्रदान की जाती है फिर भी वास्तविक स्थिति का पता लगाने के लिये वित्तीय विवरणों का प्रयोग बहुत ही महत्वपूर्ण होता है।

(4) **विनियोगकर्ता** (Investors) – विनियोक्ताओं के अन्तर्गत कम्पनी के अंशधारी तथा दीर्घकालीन ऋणदाता आते हैं। इनका कम्पनी में स्थायी हित होता है। अतः इनका दृष्टिकोण बैंक या व्यापारिक लेनदारों से भिन्न होता है। इनका मुख्य उद्देश्य अपने मूलधन की सुरक्षा एवं उस पर पर्याप्त आय प्राप्त करना होता है। अतः विनियोक्ता कम्पनी के सम्पूर्ण आर्थिक ढाँचे की दृढ़ता का विवेचन करता है। वह लाभ–हानि खाते से कम्पनी की अर्जन–शक्ति व उसमें वृद्धि के सुअवसरों तथा प्रबन्धकीय कुशलता का पता लगाता है और चिट्ठे से कम्पनी की शोधनक्षमता (वास्तविक और तकनीकी दोनों ही) और पूँजी संरचना का ज्ञान प्राप्त करता है। कम्पनी की क्रियाओं में प्रबन्धकों की ईमानदारी व विभिन्न प्रकार की अनियमितताओं का पता लगाने के लिये अंकेक्षक के प्रतिवेदन का अध्ययन किया जाता है। कम्पनी की विकास योजनाओं तथा भावी सम्भावनाओं के सम्बन्ध में जानकारी के लिये अध्यक्षीय भाषण और संचालकों के प्रतिवेदन का अध्ययन करना चाहिये।

(5) **सरकार** (Government) – सरकार कम्पनी की कराधान क्षमता के निश्चयन तथा कर निर्धारण में उसके वित्तीय विवरणों का ही उपयोग करती है। इनसे ही देष के आर्थिक उत्थान का अनुमान लगाया जाता है। ये विवरण ही कम्पनी–कर नियमों के आधार होते हैं। कम्पनी के कुप्रबन्ध का ज्ञान भी इन्हीं विवरणों से होता है। इन्हीं विवरणों के आधार पर सरकार यह आश्वस्त होती हैं कि इन विवरणों की तैयारी तथा प्रकाशन में कम्पनी अधिनियम की विभिन्न व्यवस्थाओं का पालन किया गया है या नहीं।

(6) **व्यवस्थापकीय संस्थायें** (Regulatory Agencies) – विभिन्न सरकारी विभाग और एजेन्सियाँ (जैसे कम्पनी लॉ बोर्ड, कम्पनियों का रजिस्ट्रार, सेबी और विभिन्न कर प्राधिकारी) वित्तीय विवरणों को न केवल कर निर्धारण के आधार के रूप में प्रयोग करते हैं वरन् व्यवसायों के व्यवस्थापकीय विधा के अन्तर्गत परिचालन के मूल्यांकन के लिये भी करते हैं। आय–कर, बिक्री कर आदि के निर्धारण के लिये आवश्यक सूचनायें इन्हीं विवरणों से ही प्राप्त होती हैं।

(7) **स्कन्ध विनिमय** (Stock Exchange) – स्कन्ध विनिमय के दलालों आदि को कम्पनियों के सम्बन्ध में आवश्यक सूचनायें उनके वित्तीय विवरणों से ही प्राप्त होती हैं। इन विवरणों के आधार पर ही अंशों का मूल्य निर्धारित किया जाता है।

(8) **शोध छात्र** (Research Scholars) – वित्तीय विवरण शोध छात्रों द्वारा लेखांकन सिद्धान्तों और व्यावसायिक मामलों और व्यवहारों में उनके शोध में भी प्रयोग किये जाते हैं।

उपर्युक्त के अतिरिक्त देश के नेता, अर्थशास्त्री, श्रम नेता तथा कर्मचारी और समाजसेवी सभी कम्पनी के वित्तीय विवरणों में रुचि रखते हैं। इनके आधार पर ही ये कम्पनियों के क्रियाकलापों की टीका–टिप्पणी करते हैं। श्रम नेता इन विवरणों के आधार पर ही अपने सदस्यों के वेतन वृद्धि, बोनस व अन्य सुविधाओं के लिये माँग करते हैं।

## वित्तीय विवरणों का महत्व
## (Importance of Financial Statements)

वित्तीय विवरण दर्पण होते हैं जिसमें संस्था की वित्तीय स्थिति और परिचालन सामर्थ्य या कमजोर प्रतिबिम्बित होती है। ये विवरण प्रबन्धकों, निवेशकों, लेनदारों, बैंकर्स, कर्मचारियों, सरकारी व्यवस्थापकीय संस्थाओं और सर्वसाधारण के लिये उपयोगी होते हैं। जार्ज ओ॰मे॰ ने वित्तीय विवरणों के निम्नलिखित प्रमुख उपयोग बतलाये हैं :

1. कार्याधीशत्व (Stewardship) की एक प्रतिवेदन।
2. राजकोषीय नीति (fiscal policy) के लिये एक आधार।

3. लाभांशों की वैधता निश्चित करना।
4. लाभांश कार्यवाही पर परामर्श के लिये मार्गदर्शन करना।
5. साख स्वीकृति का आधार प्रदान करना।
6. एक उपक्रम के सम्भावी निवेशकों के लिये सूचनादायक।
7. किये गये निवेशों के मूल्य के लिये मार्गदर्शन करना।
8. सरकारी निरीक्षण में सहायता प्रदान करना।
9. मूल्य या दर नियम के लिये आधार प्रदान करना।
10. कर निर्धारण के लिये आधार प्रदान करना।

## वित्तीय विवरणों की सीमायें
## (Limitations of Financial Statements)

(1) **समंकों में यथार्थता का अभाव** (Lack of precision in data) – वित्तीय विवरणों के समंकों में सूक्ष्मता नहीं पायी जाती है, क्योंकि ये विवरण ऐसे मामलों से सम्बन्धित होते हैं जिन्हें सूक्ष्मता से नहीं व्यक्त किया जा सकता है। वित्तीय विवरणों के समंक लेखांकन पेश द्वारा विकसित प्रथाओं और मान्यताओं तथा लेखापाल के निर्णय के आधार पर ज्ञात किये जाते हैं। अतः उनमें सूक्ष्मता असम्भव है।

(2) **वित्तीय स्थिति का ज्ञान नहीं** (No true picture of financial position) – वित्तीय विवरण व्यवसाय की वित्तीय स्थिति का सही स्थिति नहीं दर्शाते हैं, क्योंकि इनमें केवल उन्हीं तथ्यों का समावेश किया जाता है जिनका मौद्रिक माप सम्भव है। किन्तु व्यवसाय में बहुत से कारक गुणात्मक प्रकृति के भी होते हैं जिनका, मौद्रिक माप तो सम्भव नहीं है किन्तु जो व्यवसाय की वित्तीय स्थिति और उनके संचालन परिणामों पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालते हैं, जैसे व्यवसाय की प्रसिद्धि व प्रतिष्ठा, इसके कर्मचारियों की वफादारी, प्रबन्धकीय कुशलता व ईमानदारी, प्रशासकीय अधिकारियों में परिवर्तन, प्रतिस्पर्धा स्थिति में परिवर्तन, सरकारी नीतियों व सन्नियमों में परिवर्तन तथा राजनैतिक स्थिति में परिवर्तन आदि। इन्हें वित्तीय विवरणों में नहीं दिखलाया जाता है।

(3) **ऐतिहासिक प्रलेख** (Historical Documents) – वित्तीय विवरण ऐतिहासिक प्रलेख होते हैं। ये व्यवसाय का सही मूल्य नहीं दर्शाते। आर्थिक चिट्ठे में विभिन्न स्थायी सम्पत्तियों को उनकी मूल लागत से एकत्र (Accumulated) ह्रास की राशि घटाकर दिखलाया जाता है। किन्तु इन सम्पत्तियों का यह मूल्य इनके बाजार मूल्य से पर्याप्त भिन्न हो सकता है। इसी प्रकार लाभ–हानि खाते की बहुत सी मदें (जैसे : अशोध्य ऋण संचिति, ह्रास आदि) अनुमान के आधार पर ज्ञात किये जाते हैं। अतः इसके द्वारा प्रदर्शित लाभ संस्था का वास्तविक लाभ नहीं होता।

(4) **घटनाओं का पूर्वा भास नहीं** (No expectation of future events) – वित्तीय विवरण केवल भूतकालीन घटनाओं, सूचनाओं तथा विवरणों का विवेचन करते हैं। इनसे भावी घटनाओं का अनुमान नहीं मिलता।

(5) **ऊपरी दिखावट** (Window Dressing) – वित्तीय विवरणों में, विशेषकर आर्थिक चिट्ठे में ऊपरी दिखावट की प्रकृति पायी जाती है।

(6) **अन्तरिम प्रतिवेदन** (Interim Reports) – वित्तीय विवरण मूलतः अन्तरिम प्रतिवेदन होते हैं। अतः ये अन्तिम नहीं हो सकते, क्योंकि व्यवसाय का वास्तविक लाभ या हानि व्यवसाय के पूर्णतया बन्द हो जाने के पश्चात् ही मालूम हो सकता है। लेकिन बहुत से कारणों से व्यवसाय के जीवन काल में समय–समय पर (सामान्यता एक वर्ष बाद) लेखों के परिणाम ज्ञात किये जाते हैं। इसके कारण व्यवसाय के जीवनकाल की समस्त आयों व व्ययों को लेखावधि के अनुसार विभाजित करना होता है। इसमें लेखापाल के व्यक्तिगत निर्णय का प्रभाव अधिक रहता है। इस स्थिति में

वित्तीय विवरण पूर्ण, निश्चित और शुद्ध नहीं हो सकते। इसके अतिरिक्त व्यवसाय में सम्भाव्य दायित्व और सम्पत्तियाँ, स्थगित रख–रखाव (deferred maintenance) आदि के अस्तित्व के कारण वित्तीय विवरणों में अशुद्धता बनी रहती है।

(7) **मूल्य स्तर में परिवर्तन** (Price Level Changes) – मूल्य स्तर में तेजी से परिवर्तन की दशा में वित्तीय विवरण व्यवसाय की स्थिति का सही चित्र नहीं प्रस्तुत कर पाते हैं और इनकी तुल्यता समाप्त हो जाती है। इसी तरह वित्तीय विवरणों की निर्माण तिथि, लेखावधि अथवा व्यवसाय की प्रकृति में अन्तर होने पर भी उनका तुलनात्मक अध्ययन सम्भव नहीं होता।

(8) **विषयपरकता का अभाव** (Lack of Objectivity) – वित्तीय विवरणों के समंक मूक होते हैं। ये अपने आप कुछ नहीं बतलाते। अतः इनकी व्याख्या में व्यक्तिगत मत महत्वपूर्ण प्रभाव डालता है। प्रत्येक प्रयोगकर्त्ता अपनी कुशलता व अनुभव के आधार पर एक ही सूचना का भिन्न–भिन्न अर्थ लगा सकता है।

(9) **रोकड़ प्रवाह सूचना का अभाव** (Lack of Cash Flow Report) – भारत में वित्तीय विवरणों में लेखा–वर्ष में रोकड़ के परिवर्तन की व्याख्या के लिये रोकड़ प्रवाह सूचना नहीं दी जाती है। उपार्जित लाभ और परिचालन रोकड़ प्रवाह के बीच काफी अन्तर रहता है। इसीलिये अनेक देशों ने अपने बैंकों में वित्तीय विवरणों के साथ रोकड़ प्रवाह सूचना देना अनिवार्य कर दिया है। AICA द्वारा निर्गमित संशोधित लेखांकन मानदण्ड 3 के अनुसार अब कम्पनियों के वित्तीय विवरणों के साथ रोकड़ प्रवाह विवरण देना आवश्यक हो गया है।

## वित्तीय विवरणों के प्रकार
## (Types of Financial Statements)

सामान्यतया स्वीकृत लेखांकन सिद्धान्तों (Generally Accepted Accounting Principles) के अनुसार वित्तीय विवरणों में निम्नलिखित प्रलेख सम्मिलित किये जाने चाहिए।

(i) **आर्थिक चिट्ठा** (Balance Sheet)

(ii) **आय विवरण** (Income Statement)

(iii) **स्वामियों के खातों में परिवर्तनों का विवरण** (Statement of Changes in Owners' Accounts)

(iv) **वित्तीय स्थिति में परिवर्तनों का विवरण** (Statement of Changes in Financial Position)

## आर्थिक चिट्ठा
## (Balance Sheet)

साधारण भाषा में, आर्थिक चिट्ठा को एक तुलन–पत्र कहा जा सकता है जिसके अन्तर्गत एक तरफ सम्पत्तियों के मूल्यों और दूसरी तरफ दायित्वों व स्वामी–फण्ड (Owner's fund) के मूल्यों को प्रदर्शित करके सन्तुलन (Equality) लाया जाता है। हॉवर्ड (Howard) और अप्टन (Upton) के अनुसार, "The balance Sheet is a statement which reports the property's value owned by the enterprise and the claims of the creditors and owners against these properties."

आर्थिक चिट्ठा के दोनों पक्षों के योग के सन्तुलन को एक अन्य दृष्टिकोण से भी समझा जा सकता है। वास्तव में एक ही तथ्य के दो भिन्न पहलुओं के प्रदर्शन का परिणाम ही आर्थिक चिट्ठे के दोनों तरफ के योग का सन्तुलन होता है। सम्पत्ति की तरफ उस प्रारूप को दर्शाता है, जिसमें व्यवसाय के फण्ड के प्रयोग किया गया है और दायित्व की तरफ से यह पता चलता है कि उस फण्ड को प्राप्त करने के लिए किन–किन विधियों का प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार आर्थिक चिट्ठा एक ऐसा विवरण है, जो एक तरफ उन साधनों पर प्रकाश डालता है जिनसे व्यवसाय में

फण्ड का आगमन हुआ है, और दूसरी तरफ, उस फण्ड के प्रयोग के विभिन्न रूपों का चित्रण करता है। इस अर्थ में दोनों तरफ के मध्य स्थिति–सम्बन्ध को समानता (Identity) कह सकते हैं न कि सन्तुलन (Equality)। इस दृष्टिकोण को अपनाते हुए 'आर्थिक चिट्ठा को व्यावसायिक संस्था की वित्तीय स्थिति का विवरण' कह सकते हैं (A Balance Sheet is a snapshot of financial position of a company at a given date.)

(1) **शीर्षक** (Title) – व्यवहार में आर्थिक चिट्ठे को अनेक नामों से जाना जाता है, जिसका मुख्य कारण लेखांकन पद्धति में एकरूपता का अभाव है। सामान्यतः आर्थिक चिट्ठे के सम्बन्ध में निम्न शीर्षकों का प्रयोग किया जाता है :

(i) आर्थिक चिट्ठा या सामान्य आर्थिक चिट्ठा।
(ii) वित्तीय–स्थिति या दशा का विवरण।
(iii) सम्पत्तियों एवं दायित्वों का विवरण।
(iv) साधनों एवं दायित्वों का विवरण।
(v) सम्पत्तियों, दायित्वों एवं स्वामी–फण्ड का विवरण, आदि।

जिनमें 'आर्थिक चिट्ठा' शीर्षक का अत्यधिक प्रयोग किया जाता है। 'आर्थिक चिट्ठा' शीर्षक के प्रयोग का यह मन्तव्य होता है कि इसमें प्रदर्शित अंकों को खातों की बाकियों से लिया गया है। अन्य शीर्षकों के सम्बन्ध में भी यही बात सत्य हो सकती है, बशर्ते कि उनका प्रयोग बड़ी संस्थाओं के सन्दर्भ में किया गया हो। छोटी संस्थाओं के सन्दर्भ में, जिनके यहां खाते अपूर्ण व अवैज्ञानिक ढंग से रखे जाते हैं, इन अंकों को कुछ दशाओं में अनुमान के आधार पर भी लिखा जा सकता है। ऐसी परिस्थिति में 'आर्थिक चिट्ठा' की जगह 'वित्तीय–स्थिति का विवरण' शीर्षक का प्रयोग करना चाहिए।

(2) **प्रारूप** (Form) – परम्परागत आर्थिक चिट्ठे को दो भागों में बाँटा जाता है। दायीं तरफ सम्पत्तियों और बायीं तरफ दायित्वों व स्वामी–फण्ड को दिखाया जाता है। अमरीका में ठीक इसके विपरीत होता है। 'आर्थिक चिट्ठा' के इस प्रारूप को 'खाता–रूप' (Account Type) या "I" आकार वाला चिट्ठा कहते हैं। 'आर्थिक चिट्ठा' का यह प्रारूप भारत में कानून द्वारा भी प्रमाणित किया गया है। परन्तु हाल ही में कुछ लेखापालक विश्लेषण सुविधा के लिए आर्थिक चिट्ठा को "I" आकार में नहीं बल्कि विवरण रूप में (इसे इकहरा खाता प्रणाली 'आर्थिक चिट्ठा' भी कहते हैं) प्रस्तुत करने पर जोर देते हैं। यद्यपि भारत में इस प्रारूप को कानूनी मान्यता नहीं मिली है, फिर भी केन्द्रीय सरकार की अनुमति लेकर इसे अपनाया जा सकता है। इस प्रारूप के विषय–सूची व प्रदर्शन–विधि के सम्बन्ध में लेखापालकों ने कोई विशेष कदम नहीं उठाये हैं।

(3) **आर्थिक चिट्ठा के आधार रूप भाग** (Basic Divisions of Balance Sheet) – उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो गया है कि अधिनियम में निर्धारित प्रारूप विश्लेषण के दृष्टिकोण से उपयोगी नहीं है। निर्वचन के दृष्टिकोण से आर्थिक चिट्ठा की मदों को निम्न वर्गीकरण में रख सकते हैं :

| सम्पत्तियां | दायित्व |
|---|---|
| (अ) चालू सम्पत्तियां | (र) चालू दायित्व |
| (ब) स्थायी सम्पत्तियां | (ल) गैर–चालू दायित्व |
| (स) अमूर्त सम्पत्तियां | (व) शुद्ध मूल्य (Net Worth) |
| (द) अन्य सम्पत्तियां | |
| (य) स्थगित व्यय | |

(अ) **चालू सम्पत्तियां** (Current Assets) – एक सामान्य व्यावसायिक संस्था में चालू सम्पत्तियां वे सम्पत्तियां होती हैं, जो व्यवसाय में कार्यशील रूप में प्रयोग की जाती है और जिन्हें अल्पकाल में

संचालन के दौरान नकद धन में परिवर्तित किया जा सकता है। अन्य शब्दों में, नकद धन से प्राप्त की गयी वे सम्पत्तियां, जिन्हें पुनः नकद धन में परिवर्तित किया जा सकता है, चालू सम्पत्तियां कहलाती हैं। साधारणतया यह चक्र (नकद धन–सम्पत्ति–नकद धन) पूरा होने में एक वर्ष से अधिक समय नहीं लगता है। कुछ दशाओं में इससे अधिक समय भी लग सकता है। इस चक्र में चाहे कितना भी समय क्यों न लगे, हमेशा सम्पत्ति के प्रयोग के आधार पर ही चालू सम्पत्तियों के रूप में वर्गीकरण करना चाहिए, न कि समय के आधार पर। साधारणतया निम्न को चालू सम्पत्तियों में शामिल किया जाता है :

(i) रोकड़ हाथ में व बैंक में (ii) पुस्तकीय ऋण (Book Debts)

(iii) प्राप्य बिल (Bills Receivable) (iv) स्कन्ध

(iv) सरकारी प्रतिभूतियों में विनियोग (vi) अग्रिम भुगतान (Advance Payment)

(ब) **स्थायी सम्पत्तियां** (Fixed Assets) – स्थायी सम्पत्तियों से आशय उन सम्पत्तियों से होता है जिनका क्रय व्यवसाय–संचालन में प्रयोग के लिए किया जाता है, न कि पुनर्विक्रय करके नकद धन प्राप्त करने के लिए। इस प्रकार की सम्पत्तियों का प्रयोग करके ही आय हेतु उत्पादन या वितरण का कार्य किया जाता है। स्थायी सम्पत्तियों में शामिल होने वाली कुछ प्रमुख सम्पत्तियां निम्न प्रकार हैं :

(i) भूमि (ii) भवन

(iii) यन्त्र व मशीन (iv) फर्नीचर व फिक्सचर्स।

(स) **अमूर्त सम्पत्तियां** (Intangible Assets) – ये सम्पत्तियां अमूर्त व अदृश्य होती हैं। इनको न देखा जा सकता है और न स्पर्श किया जा सकता है। इस प्रकार की सम्पत्तियों का वास्तविक मूल्य व्यवसाय की लाभार्जन क्षमता पर निर्भर होता है। इस प्रकार सम्पत्तियों के मूल्यांकन के सम्बन्ध में लेखापालक, वकील और प्रबन्धक मतभेद रखते हैं और विश्लेषक के ऊपर एक भारी बोझ पड़ता है। अमूर्त सम्पत्तियों में निम्न को शामिल करते हैं :

(i) पेटेण्ट्स तथा ट्रेड मार्क्स (Patents and Trade marks)

(ii) मुद्रण–अधिकार, सूत्र व लाइसेंस (Copyright, Formula and License)

(iii) ख्याति (Goodwill)

(द) **अन्य सम्पत्तियां** (Other Assets) – जिन सम्पत्तियों को उक्त तीनों वर्गों में से किसी में भी शामिल नहीं करते हैं, उन्हें इस वर्ग में शामिल करते हैं। वस्तुतः इस प्रकार की सम्पत्तियों का व्यापार के संचालन में प्रत्यक्ष प्रयोग नहीं किया जाता है, परन्तु इनका मूर्त रूप होता है। अतः संस्था के कुल साधनों का विश्लेषण करते समय इन्हें अवश्य ध्यान में रखना चाहिए। अन्य सम्पत्तियों में निम्न को शामिल कर सकते हैं :

(i) विनियोग (सरकारी प्रतिभूतियों को छोड़कर)

(ii) गैर–व्यापारिक ऋण (Non-trade Debtors)

(iii) सम्पत्ति–संवर्द्धन, ऋणपत्र शोधन या सांयोगिक ऋण–शोधन के लिए अलग रखी गयी रकम।

(य) **स्थगित व्यय** (Deferred Expenditure) – वे खर्चे जो बार–बार नहीं किये जाते हैं और जो वर्तमान संचालन से उत्पन्न या उद्रित नहीं होते हैं, स्थगित खर्चे कहलाते हैं। इस प्रकार के खर्चों का लाभ आने वाले वर्षों में भी उठाया जाता है। अतः इन्हें भावी संचालन लाभ का प्रभार माना जाता है। अन्य शब्दों में, इन खर्चों को कई वर्षों में धीरे–धीरे अपलिखित किया जाता है। अपलिखित न किये गये मूल्य को सम्पत्ति के रूप में आर्थिक चिट्ठे में दिखाया जाता है। चूंकि विघटन की दशा में इन खर्चों का मूल्यांकन (प्राप्य–मूल्य) या संचालन पर इनके प्रभाव का मापन एक जटिल कार्य है, इसलिए विश्लेषक इनके सम्बन्ध में बहुत ही उदार नीति अपनाता है।

(र) **चालू दायित्व** (Current Liabilities) – चालू दायित्वों के अन्तर्गत ऐसे ऋणों एवं भारों को शामिल करते हैं, जो मांग पर या आर्थिक चिट्ठा की तिथि से एक वर्ष के भीतर देय होते हैं। साथ ही, यदि किसी दायित्व का भुगतान चालू फण्ड में से करना पड़ता है, तो उसे भी चालू दायित्व की श्रेणी में रखेंगे। चालू दायित्व के वर्ग में निम्नलिखित को शामिल करते हैं :

(i) व्यापारिक ऋणदाता (Trade Creditors)
(ii) देय बिल (Bills Payables)
(iii) अल्पकालीन जन–निक्षेप (Short term public deposits)
(iv) अदत्त लाभांश (प्रस्तावित लाभांश नहीं) (Outstanding Dividened)
(v) अदत्त खर्चे (Outstanding Expenses)
(vi) बैंक अधिविकर्ष (बैंक ऋण नहीं) (Bank Overdraft)
(vii) सहायक कम्पनी को देय रकम
(viii) देय कर या कर के लिए प्रावधान
(ix) दीर्घकालीन ऋण जो चालू वर्ष में देय हों।

(ल) **गैर–चालू दायित्व** (Non-current Liabilities) – इन्हें कभी–कभी दीर्घकालीन ऋण या दायित्व भी कहते हैं। अन्य शब्दों में, वे दायित्व जिनका भुगतान दीर्घकाल में (साधारणतया एक वर्ष के बाद) करना होता है, गैर–चालू दायित्व के रूप में माने जाते हैं। इस प्रकार के दायित्वों के उदाहरण निम्न हैं :

(i) बन्धक पर ऋण (Loan on Mortgage)
(ii) ऋणपत्र या बॉण्ड्स (Debentures or Bonds)
(iii) दीर्घकालीन बैंक ऋण
(iv) वित्तीय संस्थाओं से ऋण।

(व) **शुद्ध मूल्य** (Net Worth) – इसे कभी–कभी शुद्ध सम्पत्ति (Net Assets), अंशधारियों का फण्ड (Shareholders' Fund) या स्वामियों का इक्विटी (Owners' Equity) भी कहते हैं। सामान्यतया कुल सम्पत्तियों में से ऋणों एवं दायित्वों (अल्पकालीन व दीर्घकालीन दोनों) को घटाने पर जो शेष बचता है, उसे शुद्ध मूल्य या अंशधारियों का फण्ड कहते हैं। चूंकि कम्पनी संगठन स्वरूप के प्रयोग में अनेक प्रकार की जटिलताएं व विभिन्नताएं पायी जाती हैं, अतः कम्पनी की शुद्ध सम्पत्ति या शुद्ध मूल्य को आर्थिक चिट्ठे में दिखाने की विधि में एकरूपता का अभाव पाया जाता है। कुछ कम्पनियों के आर्थिक चिट्ठों में इसे स्पष्ट रूप से नहीं दिखाया गया होता है तथा कुछ के आर्थिक चिट्ठों में

कुल सम्पत्तियों में से कुल दायित्वों को घटाकर शेष शुद्ध मूल्य के रूप में दिखाया गया होता है। इस विभिन्नता के बावजूद भी एक विश्लेषक इस मद का विश्लेषण करते समय निम्न को ध्यान में रख सकता है :

(i) अधिमान अंश–पूंजी

(ii) सम–अंश पूंजी

(iii) सामान्य संचिति

(iv) पूंजीगत संचिति

(v) अन्य संचिति या अवितरित लाभ जिन्हें अंशधारी लाभांश के रूप में पाने का अधिकार रखते हों।

## विश्लेषण में प्रयुक्त व आर्थिक चिट्ठा के भाग पर आधारित कुछ महत्वपूर्ण शब्द
## (Some Important Terms Used in the Analysis and Based on Divisions of Balance Sheet)

(अ) **तरल सम्पत्तियां** – तरल सम्पत्तियों से आशय उन सम्पत्तियों से होता है, जिन्हें इच्छानुसार अथवा आवश्यकता पड़ने पर तत्काल नकद धन में बिना किसी पूंजीगत हानि के परिवर्तित किया जा सकता है। यह परिवर्तन विक्रय या विनिमय के रूप में हो सकता है। जैसा कि पूर्व में बताया गया है, सभी चालू सम्पत्तियां व्यवसाय के सामान्य संचालन अवधि में नकद धन में परिवर्तित की जा सकती हैं। चालू सम्पत्तियों में से स्कन्ध को छोड़कर शेष सभी को जब चाहे तब बिना किसी पूंजी–हानि के नकद धन में परिवर्तित कर सकते हैं। स्कन्ध को इच्छानुसार जब चाहे तब परिवर्तित नहीं कर सकते और यदि ऐसा करने का प्रयत्न किया जाता है, तो वह इस प्रकार की 'जबरदस्ती' (Forced) बिक्री होगी जिसका कीमत पर बुरा प्रभाव पड़ सकता है और बिक्री पर हानि की सम्भावना भी बनी रहती है। इस प्रकार स्कन्ध को छोड़कर शेष सभी चल सम्पत्तियों में तरलता का तत्व विद्यमान होता है और इसलिए इन्हें 'तरल सम्पत्ति' कहते हैं।

सूत्र के रूप में :

तरल सम्पत्तियां = चल सम्पत्तियां – स्कन्ध (कच्चा माल, अर्धनिर्मित एवं निर्मित माल)

इसी प्रकार कुछ विद्वानों का मत है कि 'पूर्वदत्त व्यय' को भी तरल सम्पत्ति से अलग रखना चाहिए। वस्तुतः पूर्वदत्त व्ययों से रोकड़ परिवर्तन की सम्भावना नहीं होती है। अतः इन्हें पूर्वदत्त व्ययों को शामिल नहीं किया गया है।

(ब) **कार्यशील पूंजी** – विश्लेषण के उद्देश्य से यह बहुत ही महत्वपूर्ण शब्द है। इसे कभी–कभी शुद्ध कार्यशील पूंजी भी कहते हैं। लेखांकन दृष्टिकोण से कार्यशील पूंजी चल सम्पत्तियों का चल दायित्व पर आधिक्य को दर्शाता है। चूंकि व्यवसाय में लगायी गयी पूंजी स्थायी पूंजी और कार्यशील पूंजी दोनों के बराबर होती है, और लगायी गयी पूंजी स्थायी सम्पत्तियों + चल सम्पत्तियों – चल दायित्वों के बराबर होती है, अतः कार्यशील पूंजी (लगायी गयी पूंजी – स्थायी सम्पत्तियों) के बराबर भी होगी। सूत्र के रूप में :

(i) कार्यशील पूंजी = चल सम्पत्तियां – चल दायित्व

(ii) कार्यशील पूंजी = लगायी गयी पूंजी – स्थायी सम्पत्तियां

(स) **'लगायी गयी पूंजी'** (Capital Employed) – 'लगायी गयी पूंजी' शब्द का कई अर्थों में प्रयोग किया जाता है और प्रत्येक अर्थ में प्रयोग का उद्देश्य भी भिन्न–भिन्न होता है। इसका विस्तृत वर्णन अध्याय 'विनियोजित पूंजी पर प्रत्याय' में किया गया है। वर्तमान उद्देश्य के लिए इस शब्द का निम्न में से कोई रूप हो सकता है :

(i) **कुल पूंजी** (Total Capital) – इसे कुल संसाधन (Total resources) या सकल लगायी गयी पूंजी (Gross Capital Employed) भी कहते हैं और यह संस्था की कुल सम्पत्तियों (Total Assets) के बराबर होती है।

(ii) **लगायी गयी पूंजी** (Capital Employed) – इसे कभी–कभी 'प्रबन्ध नियन्त्रण व नियोजन के लिए लगायी गयी पूंजी' या 'शुद्ध लगायी गयी पूंजी' भी कहते हैं। यह कुल सम्पत्तियों में से चल दायित्वों को घटाने के बाद शेष रकम के बराबर होती है। विकल्प रूप में यह स्थायी सम्पत्तियों एवं कार्यशील पूंजी के बराबर होती है। सूत्र के रूप में,

(a) लगायी गयी पूंजी = कुल सम्पत्तियां – चल दायित्व

चूंकि कुल सम्पत्तियां = स्थायी सम्पत्तियां + चल सम्पत्तियां, अतः

(b) लगायी गयी पूंजी = स्थायी सम्पत्तियां + चल सम्पत्तियां – चल दायित्व

चूंकि चल सम्पत्तियां – चल दायित्व बराबर कार्यशील पूंजी के होता है, अतः

(c) लगायी गयी पूंजी = स्थायी सम्पत्तियां + कार्यशील पूंजी

(iii) **मालिकों की लगायी गयी शुद्ध पूंजी** (Proprietor's Net Capital Employed) – इसे कभी–कभी शुद्ध मूल्य (Net Worth), स्वामी इक्विटी (Owner's Equity), अंशधारियों का फण्ड (Shareholders' Fund) भी कहते हैं। जैसा कि पहले बतलाया गया है, यह कुल सम्पत्तियों में से कुल दायित्वों को घटाने के बाद शेष रकम के बराबर होती है।

(द) **औसत स्कन्ध** (Average Stock or Inventory) – विभिन्न प्रकार के स्कन्ध जैसे, कच्चे माल का स्कन्ध, चालू कार्य का स्कन्ध, तैयार माल का स्कन्ध, आदि में पूरे वर्ष के दौरान औसतन विनियोजित रकम को ही औसत स्कन्ध कहते हैं। सैद्धान्तिक रूप में, इसकी गणना व्यवसाय में रखे गये प्रतिदिन, साप्ताहिक व मासिक स्कन्ध के सन्दर्भ में होनी चाहिए। परन्तु बाह्य विश्लेषक को इतनी सूक्ष्म व व्यापक सूचना नहीं मिल पाती है। इस प्रकार औसत स्कन्ध की गणना प्रारम्भिक स्कन्ध व अन्तिम स्कन्ध के सन्दर्भ में की जाती है। प्रारम्भिक व अन्तिम स्कन्ध के योग को दो से विभाजित करने पर आने वाला भजनफल ही औसत स्कन्ध कहलाता है। यदि प्रारम्भिक स्कन्ध का भी मूल्य ज्ञात नहीं है, तो अन्तिम स्कन्ध को ही औसत स्कन्ध मान लिया जाता है।

सूत्र के रूप में,

$$\text{औसत स्कन्ध} = \frac{\text{प्रारम्भिक स्कन्ध} + \text{अन्तिम स्कन्ध}}{2}$$

## 2. लाभ–हानि खाता
## (PROFIT & LOSS ACCOUNT)

आर्थिक चिट्ठे से केवल यह ज्ञात होता है कि एक निश्चित तिथि को संस्था की वित्तीय स्थिति क्या है। परन्तु प्रत्येक व्यावहारिक लेन–देन का तुरन्त और प्रत्यक्ष प्रभाव आर्थिक चिट्ठे की मदों पर पड़ता है और परिवर्तन हो जाता है। परन्तु इस परिवर्तन की तत्काल मापित करना सम्भव नहीं होता है, क्योंकि आर्थिक चिट्ठा एक विशेष तिथि को तैयार किया जाता है। हां, दो विभिन्न तिथियों पर तैयार किये गये आर्थिक चिट्ठों का तुलनात्मक अध्ययन करके वर्ष–भर के शुद्ध परिवर्तनों को ज्ञात किया जा सकता है। परन्तु यह शुद्ध परिवर्तन कई कारणों का सामूहिक परिणाम होता है। विश्लेषण क्रिया से प्रत्येक कारक के प्रभाव के विषय में ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक होता है। यह कार्य लाभ–हानि खाते द्वारा पूरा किया जाता है।

लाभ–हानि खाता एक निश्चित लेखा–अवधि के बीच व्यवसाय संचालन के परिणाम की रिपोर्ट होता है। हैरी जी. गुथमन्न (Harry G. Guthmann) के अनुसार, "लाभ और हानि का वितरण, ऐसे आय व खर्च का वर्गीकृत व संक्षिप्त अभिलेख है जो एक निश्चित अवधि के लिए स्थायी हित में परिवर्तन के कारण होते हैं। "

(1) **प्रारूप** (Form) – आर्थिक चिट्ठे की तरह लाभ–हानि को भी 'खाता' के रूप में या विवरण के रूप में तैयार किया जा सकता है। यह स्मरणीय है कि भारतीय कम्पनी अधिनियम के अन्तर्गत लाभ–हानि खाते का ऐसा कोई प्रारूप नहीं निर्धारित किया गया है जैसा कि आर्थिक चिट्ठे के सम्बन्ध में हैं। परिणामस्वरूप व्यवहार में उद्योग के प्रकार व व्यवसाय–हित की भिन्नता के आधार पर लाभ–हानि खाता भिन्न–भिन्न रूप में तैयार किया जाता है। लाभ–हानि खाते का कोई भी प्रारूप क्यों न हो, उसमें स्पष्ट रूप से संस्था की आय एवं व्यय की मदों को, उचित शीर्षकों में दिखाया जाता है। फिर लाभ–हानि खाता इस रूप में तैयार किया जाता है कि उसके द्वारा कम्पनी के कार्यों का परिणाम स्पष्ट रूप से प्रदर्शित किया गया हो। यह भी महत्वपूर्ण है कि अपवाद–प्रवृत्ति व बार–बार न होने वाले खर्चों की मदों को अलग से दिखाया जा सके। लाभ–हानि खाते का चाहे कोई भी प्रारूप क्यों न हो, उसके द्वारा निम्न पर प्रकाश अवश्य पड़ना चाहिए :

(i) व्यवसाय के संचालन में आय के स्रोत जैसे, विक्रय, विनियोग पर आय, अन्य ब्याज, विनियोग के विक्रय पर लाभ, लाभांश प्राप्ति, आदि (ii) ऐसा लाभ जो अपवाद स्वरूप, असाधारण या बार–बार न किये जाने वाले लेन–देन से कमाया हुआ हो। (iii) व्यवसाय संचालन के सभी व्यय। (iv) बेची गयी वस्तु की लागत। (v) आय कर। (vi) किये गये विभिन्न प्रावधान। (vii) शुद्ध लाभ या हानि।

उपर्युक्त सूचनाओं की प्राप्ति हेतु लाभ–हानि खाते का एक काल्पनिक प्रारूप नीचे दिया गया है :

**Statement of Profit or Loss**
(For the year ending....)

| *Last Year Figures* | | | | *Amount* | *% to Net Sales* |
|---|---|---|---|---|---|
| | SALES | | --- | | |
| | Less : Returns/Excise duty, etc. | | --- | --- | --- |
| | COST OF SALES : | | | | |
| | Purchases | | --- | | |
| | Carriage Inward | | --- | | |
| | Direct Labour | | --- | | |

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| | Direct Expenses | | --- | | |
| | Stock Variation | | --- | --- | --- |
| | **Gross Profit** | | | --- | --- |
| | SELLING COST : | | | | |
| | Variable | | --- | | |
| | Fixed | | --- | | |
| | OTHER VARIABLE EXPENSES : ADMINISTRATIVE | | --- | | |
| | Fixed Expenses | | --- | --- | --- |
| | **Operating Profit** | | | --- | --- |
| | OTHER EXPENSES : | | | | |
| | Interest paid | | --- | | |
| | Discount allowed | | --- | | |
| | | | --- | | |
| | *Less :* Other Incomes : | | | | |
| | Discount Recd. | --- | | | |
| | Interest | --- | | | |
| | Dividends | --- | --- | --- | --- |
| | **Net Profit** | | | --- | --- |
| | Taxes and Appropriation : | | | | |
| | Income Tax | | --- | | |
| | Dividends | | --- | | |
| | Transfer to Reserves | | --- | --- | --- |
| | Balance to Balance Sheet | | | --- | --- |

(2) **शीर्षक** (Title) – आर्थिक चिट्ठे की तरह लाभ–हानि खाते को भी कई नामों से पुकारा जाता है। व्यवहार में इस विवरण के शीर्षक देने में कोई एकरूपता नहीं है। साधारणतया निम्न शीर्षकों में से किसी एक का प्रयोग किया जाता है :

(1) आय व उपर्जित बचत का विवरण, (2) आय का विवरण, (3) आय, लाभ और हानि का विवरण, (4) आय व खर्च का विवरण, (5) संचालन विवरण।

किसी संस्था का आर्थिक चिट्ठा और लाभ–हानि खाता दोनों उस संस्था की वित्तीय स्थिति व लाभार्जन शक्ति एवं प्रगति के विषय में महत्वपूर्ण सूचनाएं प्रदान करते हैं। इन दो विवरणों का अध्ययन करने से उन कारकों का भी पता लग जाता है जो अमुक वित्तीय स्थिति व प्रगति के लिए उत्तरदायी होते हैं। परन्तु इन विवरणों में केवल वित्तीय कारकों (Financial factors) का ही लेखा हो पाता है, जबकि एक संस्था के व्यावसायिक जीवन पर अन्य सामाजिक, राजनीतिक व आर्थिक कारकों का भी प्रभाव पड़ता है, जिनका विवरण आर्थिक चिट्ठा व लाभ–हानि खाते में नहीं दिया जा सकता है। इस प्रकार के कारकों के सम्बन्ध में सूचना देने के लिए प्रबन्ध संचालक रिपोर्ट व अध्यक्षीय भाषण का प्रयोग करता है। अतः किसी भी संस्था की प्रगति व स्थिति के विषय में पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के लिए आर्थिक चिट्ठा व लाभ–हानि खाता के साथ–साथ संचालक रिपोर्ट व अध्यक्षीय भाषण का भी अध्ययन करना अनिवार्य हो जाता है।

## विश्लेषण में प्रयुक्त एवं लाभ–हानि खाता के मदों पर आधारित कुछ महत्वपूर्ण षब्द
## (SOME IMPORTANT TERMS USED IN THE ANALYSIS AND BASED ON THE ITEMS OF PROFIT AND LOSS ACCOUNT)

(अ) **बेचे गये माल की लागत** (Cost of Goods Sold or Cost of Sales) – एक व्यावसायिक संस्था द्वारा जो माल बेचा गया है, उस माल को बनाने या खरीदने में जो लागत आती है, उसे बेचे गये माल की लागत कहते हैं। सामान्यतः इस लागत में लाभ का एक निश्चित प्रतिशत जोड़कर विक्रय मूल्या या विक्रम आगम की राशि ज्ञात की जाती है। बेचे गये माल की लागत की निर्धारित रीति भिन्न–भिन्न संस्थाओं में अलग–अलग हो सकती है और यह मुख्यतः उस व्यवसाय की प्रकृति पर निर्भर करती है। एक व्यापारिक संस्था की दशा में बेचे गये माल की लागत का निर्धारण निम्न प्रकार से होता है :

| | | |
|---|---|---|
| माल का प्रारम्भिक स्कन्ध | –– | |
| जोड़ा : वर्ष के दौरान किया गया कुल क्रय | –– | |
| क्रय पर किये गये प्रत्यक्ष व्यय | –– | |
| घटायाः क्रय वापसी | –– | |
| माल का अन्तिम स्कन्ध | –– | –– |
| बेचे गये माल की लागत | | –– |

एक निर्माणी संस्था की दशा में, बेचे गये माल की लागत का निर्धारण लागत पत्र (Cost Sheet) या लागत–विवरण (Statement of Cost) तैयार करके किया जाता है। इस लागत पत्र या विवरण में प्रमुख लागत (Prime Cost) से लेकर सभी अप्रत्यक्ष व्ययों (Overheads) को जोड़कर उस अवधि के उत्पादन की कुल लागत (Total Cost of Production) ज्ञात कर ली जाती है। इस उत्पादन की लागत में तैयार या निर्मित माल का प्रारम्भिक स्कन्ध जोड़ दिया जाता है और तैयार या निर्मित माल का अन्तिम स्कन्ध घटा दिया जाता है। यदि विक्रय व वितरण व्यय स्थायी नहीं हैं, तो वास्तव में बेची गयी इकाइयों के सम्बन्ध में किये गये विक्रय व वितरण व्यय को भी जोड़ देते हैं। यह योगफल ही बेचे गये माल की लागत होता है।

बेचे गये माल की लागत का निर्धारण आगम व व्यय के समीकरण को हल करके भी ज्ञात किया जा सकता है। चूंकि लागत (बिक्री–विक्रय वापसी) में से बेचे गये माल की लागत घटाने पर सकल लाभ प्राप्त होता है, अतः बिक्री व सकल लाभ की रकम ज्ञात होने पर बेचे गये माल की लागत को निम्न सूत्र द्वारा प्राप्त किया जाता है :

$$\text{बेचे गये माल की लागत} = \text{बिक्री} - \text{सकल लाभ}$$

कभी–कभी सकल लाभ की रकम ज्ञात नहीं होती है बल्कि उसकी जगह बिक्री पर सकल लाभ का अनुपात ज्ञात होता है। ऐसी स्थिति में बेचे गये माल की लागत का निर्धारण निम्न सूत्र से जाना जा सकता है :

$$\text{बेचे गये माल की लागत} = \text{बिक्री} - \frac{\text{बिक्री} \times \text{प्रतिशत}}{100}$$

(ब) **संचालन व्यय** (Operating Expenses) – व्यावसायिक संस्था के मुख्य कार्य (निर्माण या क्रय) के सम्बन्ध में किये गये खर्चों (जिन्हें बेचे गये माल की लागत के रूप में प्रकट करते हैं) के अलावा व्यवसाय के संचालन में अनेक अन्य व्यय भी करने पड़ते हैं। ये खर्चे प्रत्यक्ष रूप से व्यवसाय के सतत संचालन में सहायक होते हैं। इस प्रकार सामान्य व्यय, प्रशासन व्यय, विक्रय व वितरण, वित्त–प्राप्ति, आदि पर अनेक खर्चे किये जाते हैं। इन सभी प्रकार के प्रशासनिक व्यय, वित्त व्यय व विक्रय एवं वितरण के सामूहिक योग को संचालन व्यय कहते हैं। सकल लाभ में से संचालन व्यय

को घटाने पर शुद्ध संचालन लाभ (Net Operating Profit) ज्ञात होता है। अतः संचालन व्यय की रकम इस सूत्र द्वारा भी ज्ञात की जा सकती है:

संचालन व्यय = सकल लाभ – शुद्ध संचालन लाभ

(स) **शुद्ध संचालन लाभ** (Net Operating Profit) – यह व्यवसाय के मुख्य संचालन से उदित होने वाला लाभ होता है और सकल लाभ में से संचालन व्ययों को घटाने के बाद बचने वाली रकम के बराबर होता है। प्रबन्ध नियोजन व नियन्त्रण के उद्देश्य से लाभ–हानि खाते का यह बहुत ही महत्वपूर्ण मद होता है क्योंकि यह उन क्रियाओं एवं उनके परिणामों को ध्यान में नहीं रखता है, जो मुख्य संचालन से सम्बन्धित नहीं होती हैं।

शुद्ध संचालन लाभ के बिन्दु तक लाभ–हानि खाता को समीकरण के रूप में निम्न प्रकार समझा जा सकता है :

(i) सकल लाभ = विक्रय – बेचे गये माल की लागत

(ii) शुद्ध संचालन लाभ = सकल लाभ – संचालन व्यय

(iii) शुद्ध संचालन लाभ = विक्रय – बेचे गये माल की लागत – संचालन व्यय

## आर्थिक चिट्ठा बनाम लाभ–हानि खाता
## (Balance Sheet Vs. Profit and Loss Account)

आर्थिक चिट्ठा को महत्वपूर्ण पत्र माना जाता है जिससे स्वामियों, लेनदारों, बैंकरों और सरकार, आदि को महत्वपूर्ण सूचनाएं दी जाती हैं। वर्तमान में लाभ–हानि खाता की उपयोगिता महत्व आर्थिक चिट्ठे की तुलना में अधिक हो गया है। प्रबन्धकीय लेखा–विधि का प्रचलन आंशिक रूप में इसी परिवर्तन के कारण बढ़ा है। आर्थिक चिट्ठा को पीछे ढकेलते हुए लाभ–हानि खाता को प्राथमिकता प्रदान करने सम्बन्धी वित्तीय विवरणों के प्रयोग में यह परिवर्तन आर्थिक चिट्ठा सम्बन्धी आलोचना हेतु दिये गये कथनों से भी स्पष्ट होता है। अब आर्थिक चिट्ठे को केवल एक ऐतिहासिक प्रपत्र माना जाने लगा है जो सम्पत्तियों के प्राप्य मूल्य (Realisable value) को नहीं दर्शाता है। संस्था के जीवनकाल में प्राप्त की गयी मुद्रा व उसके विनियोग का सारंक्षित रूप ही यह प्रस्तुत करता है और किसी भी दशा में संस्था के विद्यमान मूल्य का चित्र नहीं प्रस्तुत करता है।

हालांकि लाभ–हानि खाते के प्रति बढ़ता हुआ महत्व और आर्थिक चिट्ठे को उद्देश्यहीन प्रपत्र के रूप में मानना वास्तविकता से परे बल्कि बनावटी है। जहां तक इस आलोचना का प्रश्न है कि आर्थिक चिट्ठा अवास्तविक है और संस्था की सही वित्तीय स्थिति का कभी भी दिग्दर्शन नहीं कराता है, यह कहा जा सकता है कि आर्थिक चिट्ठा संस्था की वित्तीय स्थिति का चित्रण केवल 'चालू संस्था' (Going concern) के रूप में ही करता है। हां, यह जरूर है कि 'चालू संस्था' की यह अवधारणा चिट्ठे को अवास्तविक बना देती है क्योंकि चिट्ठे में दर्शाये गये मूल्य वे मूल्य नहीं होते हैं जो संस्था को विघटित करने पर प्राप्त हो सकते हैं। वस्तुतः ये विभिन्न सम्पत्तियों से सम्बन्धित वे मूल्य हैं जो संस्था के चालू रहने पर सभी सम्पत्तियों से सम्बन्धित होते हैं और इस प्रकार कुछ सीमा तक ये मूल्य राय (Opinion) और परम्पराओं (conventions) से प्रभावित होते हैं। परन्तु यह भी सत्य है कि यह अवधारणा (चालू संस्था) लाभ–हानि खाते को भी ठीक उसी प्रकार से प्रभावित करती है जैसे कि आर्थिक चिट्ठे को। लाभ–हानि खाते में बहुत–से ऐसे मद होते हैं, जैसे, प्रारम्भिक व अन्तिम स्कन्ध, स्थायी सम्पत्तियों पर ह्रास, सन्देहात्मक ऋणों के लिए संचय, आदि जिनके मूल्यों को अवास्तविक माना जा सकता है क्योंकि ये भी पूर्णतः व्यक्तिगत निर्णय व राय से प्रभावित होते हैं। इन दोनों प्रकार की अवास्तविकताओं में केवल एक अन्तर यही है कि चिट्ठे की दशा में यह संचयी होती है जबकि लाभ–हानि खाते की दशा में अकेले मात्र होती है। इस प्रकार अवास्तविकता सम्बन्धी आलोचना के आधार पर दोनों में से किसी भी प्रपत्र को प्राथमिकता नहीं दी जानी चाहिए। हकीकत

तो यह है कि लाभ–हानि खाता शुद्ध लाभ या हानि के लिए सभी व्याख्याओं व कारणों सहित चिट्ठे के सहायक प्रपत्र के रूप में माना जाना चाहिए। लेकिन लाभ–हानि खाता की यह सहायक स्थिति इस प्रपत्र के महत्व को कम नहीं करती है, वास्तव में इसे चिट्ठे का परिपूरक माना जाना चाहिए।

उक्त अवलोकित निष्कर्ष की पुष्टि उन सूचनाओं से भी होती है, जो इन प्रपत्रों में निहित होती हैं। आर्थिक चिट्ठा केवल सम्पत्तियों एवं दायित्वों के बारे में ही सूचनाएं प्रदान नहीं करता है बल्कि लाभ व व्यवसाय में उसकी विद्यमानता के रूप में विषय में भी सूचनाएं देता है। सम्पत्तियों एवं दायित्वों में कुल मूल्यों (रकमों) में हुआ शुद्ध परिवर्तन कमाये गये लाभ या उठायी गयी हानि को दर्शाया है। इसके अलावा, लाभ किस रूप में सम्पत्तियों में वृद्धि और/या दायित्वों में कमी लाया है या हानि किस रूप में सम्पत्तियों में कमी और/या दायित्वों में वृद्धि लायी है – इनके विषय में पूर्व विवरण चिट्ठे से प्राप्त हो सकता है। यह सत्य है कि ये विवरण चिट्ठे में सारांश रूप में होते हैं, व्यापक रूप में नहीं। इतनी महत्वपूर्ण सूचना के बावजूद भी यदि चिट्ठे को विद्यमान मूल्य का चित्र नहीं कहा जा सकता है, केवल 'चालू संस्था' की अवधारणा के कारण तो लाभ–हानि खाता को भी व्यवसाय के लाभप्रद संचालन का सही चित्रण नहीं माना जा सकता। लाभ–हानि खाता सही रूप में एक ऐसा प्रपत्र तो हो सकता है जो व्यवसाय के संचालन को व्यापक और रूचिकर ढंग से चित्रित करता है, परन्तु केवल इसी तथ्य के आधार पर यह दूसरे प्रपत्र (अर्थात् चिट्ठा) को लांघ नहीं सकता जिसमें लाभ या हानि के सारांश के साथ–साथ कुछ अन्य सूचनाएं भी दी गयी होती हैं।

इन दोनों प्रपत्रों के सापेक्षित महत्व का विश्लेषण उन पक्षों के दृष्टिकोण से भी किया जा सकता है, जो एक व्यावसायिक संस्था की वित्तीय स्थिति व संचालन परिणाम में रूचि रखते हैं। प्रबन्ध के लिये लाभ–हानि खाते के बढ़ते हुए महत्व के बावजूद भी आर्थिक चिट्ठा अंशधारियों, ऋणपत्रधारियों, बैंकर, लेनदारों आपूर्तिकर्ताओं और यहां तक कि उच्च प्रबन्ध के लिये अब भी महत्वपूर्ण प्रपत्र है। इन पक्षों में से अधिकांश बिना लाभ–हानि खाते के ही संस्था की वित्तीय स्थिति व लाभदायकता के विषय में मूल्यांकन कर सकेंगे; आर्थिक चिट्ठा एक संस्था का वित्तीय स्वास्थ्य, लाभदायक तरलता के सामयिक मूल्यांकन में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। लेकिन इसका तात्पर्य लाभ–हानि खाते की भूमिका को कम करना नहीं है, जो यह व्ययों के नियन्त्रण व संस्था के विभागों की क्षमता के मूल्यांकन में अदा करता है। संक्षेप में, आर्थिक चिट्ठा व लाभ–हानि खाता दोनों बहुत ही महत्वपूर्ण वित्तीय विवरण हैं और सर्वाधिक तौर पर एक–दूसरे के पूरक हैं।

## वित्तीय विवरणों के विश्लेषण और निर्वचन का आशय
## (Meaning of Analysis and Interpretation of Financial Statements)

वित्तीय विवरण अपने में लक्ष्य नहीं होते, वे तो साधन मात्र है। यदि निरपेक्ष रूप से देखा जाये तो ये विवरण अंकों के समूह मात्र होते हैं। ये अपने आप कोई महत्वपूर्ण निष्कर्ष नहीं प्रकट करते। लेकिन इनके विश्लेषण की क्रिया में अनुभवी व्यक्ति इनसे बहुत महत्वपूर्ण निष्कर्ष निकाल सकते हैं। वस्तुतः इन विवरणों की महत्ता इनकी रचना में नहीं वरन इनके विश्लेषण और निर्वचन में होती है।

वित्तीय विवरणों के विश्लेषण का आशय इन विवरणों में दिये गये तथ्यों को किसी वैज्ञानिक रीति से सुविधाजनक भागों में वर्गीकृत और विन्यास (Classify and arranger) करना है जिससे इनसे अर्थपूर्ण निष्कर्ष निकाले जा सकें। फिने और मिलर के शब्दों में, "वित्तीय विश्लेषण में कुछ निश्चित योजनाओं के आधार पर तथ्यों का विभाजन करना, निश्चित परिस्थितियों के अनुसार उनकी वर्ग में रचना करना और सुविधाजनक एवं आसान पाठ्य तथा समझने योग्य रूप में उन्हें प्रस्तुत करना शामिल है।"

निर्वचन विश्लेषण की अगली सीढ़ी होती है। इसका आशय एक नियत अवधि के अन्तर्गत के विश्लेषित वित्तीय व्यवहारों के आलोचनात्मक परीक्षण और निष्कर्ष निकालने से होता है। इस प्रकार विश्लेषण और निर्वचन दो पृथक् क्रियायें हैं। विश्लेषण तथ्य ज्ञात करने और जटिल अंकों को सरल भागों में विभाजित करने की प्रक्रिया है जबकि निर्वचन इन सरलीकृत भागों की वास्तविक महत्ता के विवेचन की एक कला है। दोनों की क्रियायें एक–दूसरे से घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध (closely connected) है क्योंकि विश्लेषण के बिना निर्वचन असम्भव है तथा निर्वचन के बिना विश्लेषण व्यर्थ है।

व्यवहार में सामान्यतया इन दोनों को एक ही अर्थ में प्रयोग किया जाता है। अतः वित्तीय विवरणों के विश्लेषण और निवर्चन के अन्तर्गत तथ्यों का विश्लेषण, अनुविन्यसन, सम्बन्ध स्थापना व उनके आधार पर निष्कर्ष निकालना आदि शामिल किया जाता है। जॉन मायर के शब्दों में, "वित्तीय विवरण विश्लेषण वृहत् रूप से किसी व्यवसाय में विवरणों के एक अकेले समूह द्वारा प्रकट किये, विभिन्न वित्तीय कारकों के बीच सम्बन्धों और विववरणों की एक श्रृंखला में दिखलायी गयी इन कारकों की प्रवृत्तियों का अध्ययन है।" कैनेडी और मूलर के षब्दों में, "वित्तीय विवरणों का विश्लेषण एवं निर्वचन एक ऐसा प्रयत्न है जिसके द्वारा वित्तीय विवरणों के समंकों की महत्ता और आशय निर्धारित किया जाता है ताकि भावी अर्जनों, देय तिथियों पर ऋण (वर्तमान और दीर्घकालीन दोनों) और ब्याज के भुगतान की क्षमता और एक सुदृढ़ लाभांश नीति की लाभप्रदता की सम्भावनाओं का पूर्वानुमान लगाया जा सके।"

## विश्लेषण और निर्वचन की प्रक्रिया
## (Process of Analysis and Interpretation)

वित्तीय विवरणों का निर्वचन सचमुच एक कला है। इसके अन्तर्गत तथ्यों का विश्लेषण, अनुविन्यसन, तुलना, प्रवृत्ति अध्ययन व उनके आधार पर निष्कर्ष निकालना आदि क्रियायें शामिल है। इसकी प्रक्रिया को मोटे रूप में निम्न चार भागों में बाँटा जा सकता है –

(1) **विश्लेषण** (Analysis) – इसका आशय वित्तीय विवरणों में दिये गये तथ्यों को किसी वैज्ञानिक रीति से सुविधाजनक भागों में वर्गीकृत और विन्यासित करना है जिससे अर्थपूर्ण निष्कर्ष निकाले जा सकें। इस क्रिया के निम्न दो महत्वपूर्ण भाग होते हैं –

(अ) **समंकों को उपयोगी रूप में रखना** – मानव मस्तिष्क छोटे व संक्षिप्त अंकों को शीघ्र समझ लेता है। इसके अतिरिक्त संक्षिप्त अंकों के आधार पर गणितीय क्रियायें भी सरल हो जाती हैं। अतः विश्लेषण के लिये अधिक उपयोगी बनाने के लिये वित्तीय विवरणों के मौलिक अंकों को उपसदन (Approximation) की रीति से पूर्णांक बना लिया जाता है।

(ब) **तथ्यों का पुनर्वर्गीकरण करके अनुविन्यसित करना** – विश्लेषण के लिये वित्तीय विवरणों के मदों को उचित व स्पष्ट वर्गों में विभाजित किया जाता है और उन्हें अनुविन्यासित (Rearrange) करके पुनः इच्छित विवरण रूप में रखा जाता है। यह क्रिया तब अधिक महत्वपूर्ण होती है जबकि वित्तीय विवरणों को खाता रूप में बनाया गया हो। विभिन्न मदों को पुनर्वर्गीकरण व अनुविन्यसन का प्रारूप विश्लेषण के उद्देश्य पर निर्भर करता है। अतः इसका कोई प्रमापित रूप नहीं बतलाया जा सकता।

(2) **तुलना** (Comparision) – वित्तीय विवरणों की मदों के अनुविन्यसन के पश्चात उसकी सापेक्षिक मात्रा का माप किया जाता है। इसके लिये विभिन्न निर्वचन विधियों का प्रयोग करके विभिन्न मदों के बीच तुलनात्मक सम्बन्ध स्थापित किया जाता है। शुद्ध निर्वचन के लिये तुलना आवश्यक होती है। वित्तीय विवरणों की निरपेक्ष मदों के आधार पर निर्वचन त्रुटिपूर्ण व भ्रमात्मक निष्कर्ष दे सकता है।

(3) **प्रवृत्ति का अध्ययन** (Study of Trend) – वित्तीय विवरणों की मदों का तुलनात्मक अध्ययन करके एक विश्लेषक महत्वपूर्ण सूचनाओं की भावी प्रवृत्तियों को मापता है। निर्वचन के लिये प्रवृत्ति अध्ययन एक अति महत्वपूर्ण भाग होता ह।

(4) **निष्कर्ष निकालना** (To Draw Conclusion) – यह निर्वचन का अन्तिम चरण होता है। इसका उद्देश्य तथ्यों की व्याख्या करके संस्था की स्थिति के सम्बन्ध में निष्कर्ष निकालना व राय प्रकट करना होता है। लेखापाल के ये निष्कर्ष ही प्रबन्ध के समक्ष प्रस्तुत किये जाते हैं। ये निष्कर्ष आर्थिक तथ्यों पर आधारित होते हैं।

## विश्लेषण व निर्वचन के उद्देश्य
## (Objects of Analysis and Interpretation)

यूँ तो वित्तीय विवरणों के निर्वचन में विभिन्न पक्षधरों के विभिन्न उद्देश्य हो सकते हैं, फिर भी इसके कुछ सामान्य उद्देश्य निम्नलिखित होते हैं –

(1) व्यावसायिक संस्था की उपार्जन क्षमता (Earning Capacity) का अनुमान लगाना,
(2) संस्था की वित्तीय क्षमता और कमजोरियों के विषय में ज्ञान प्राप्त करना,
(3) संस्था की अल्पकालीन सरलता और दीर्घकालीन शोधन क्षमता का निर्धारण करना,
(4) संस्था की ऋण क्षमता का निर्धारण करना,
(5) संस्था के स्कन्ध और स्थायी सम्पत्तियों में विनियोगों की समीक्षा करना,
(6) संस्था के प्रबन्ध की कुशलता और निष्पत्ति (Performance) की समीक्षा करना,
(7) संस्था की भावी सम्भावनाओं का अनुमान लगाना,
(8) उसी उद्योग की अन्य इकाइयों के साथ संचालन क्षमता सम्बन्धी तुलनात्मक अध्ययन करना।

वास्तव में विश्लेषण के उद्देश्य अनेक और वे विश्लेषक के दृष्टिकोण, कम्पनी में उसके हित का अंश, विश्लेषण में वांछनीय गहनता, उपलब्ध वित्तीय समंकों व सूचनाओं की मात्रा और गुण–स्तर आदि तत्वों पर निर्भर करते हैं। प्रबन्ध के लिये यह 'स्व–मूल्यांकन' का एक साधन है क्योकि यह उसकी प्रबन्धकीय चातुर्य और सामर्थ्य पर एक प्रतिवेदन स्वरूप है। एक व्यापारिक लेनदार फर्म की वित्तीय स्थिति और उसके संसाधनों की तरलता का ज्ञान प्राप्त करता है। इसी तरह एक विनियोजक फर्म की वित्तीय सामर्थ्य तथा भावी लाभप्रदता का ज्ञान प्राप्त करके अपने विनियोजन की योजना बनाता है। इस प्रकार विश्लेषण का उद्देश्य ही विश्लेषण की सीमा, गहनता और प्रकृति निर्धारित करता है। जब पूर्ण विश्लेषण करना हो तथा उसके लिये पर्याप्त समंक उपलब्ध न हों अथवा आदि फर्म द्वारा अपनी वास्तविक स्थिति को छुपाये या भ्रमित करने का संदेह हो तो विश्लेषक को सच्चाई जानने के लिये एक जासूस की नजर अपनानी होगी।

## विश्लेषण व निर्वचन की कार्य–विधि या प्रक्रिया
## (Procedure of Analysis and Interpretation)

(1) **विश्लेषण की सीमा निर्धारण करना** (Deciding the extent of analysis) – सर्वप्रथम विश्लेषक को विश्लेषण की सीमा निर्धारण करनी होगी। यह उसके उद्देश्य पर निर्भर करेगा। उदाहरण के लिये उसे कम्पनी की आर्थिक स्थिति का अध्ययन करना है तो केवल आर्थिक चिट्ठे का ही अध्ययन पर्याप्त होगा, लेकिन यदि वह कम्पनी की भावी सम्भावनाओं के बारे में जानना चाहता है तो उसे दोनों विवरणों का अध्ययन करना होगा। विश्लेषण की विधियों का चुनाव, विश्लेषण के उद्देश्य व सीमा पर ही आधारित होता है।

(2) **वित्तीय विवरणों का सामान्य अध्ययन करना** (Going through the Financial Statements) – वित्तीय विवरणों में प्रदत्त सूचनाओं तथा उसके महत्व के आकलन के लिये पहले उनका एक बार सम्पूर्ण अध्ययन आवश्यक है।

(3) **अन्य आवश्यक सूचनायें एकत्रित करना** (Collecting the other necessary information) – अपने विश्लेषण के लिये उपयोगी ऐसी अन्य सूचनायें, जो उन विवरणों से प्रकट नहीं हो रही है, प्रबन्धकों से पहले ही प्राप्त कर ली जायें।

(4) **वित्तीय समंकों का पुनर्विन्यास करना** (Rearranging the Financial Statement Data) – विश्लेषण के लिये वित्तीय विवरणों में प्रदर्शित मदों को उचित व स्पष्ट वर्गों में विभाजित करके लिखना होता है ताकि प्रत्येक मद को उचित भूमिका में रखा जा सके और विश्लेषण हेतु अधिक से अधिक सूचनायें प्राप्त की जा सकें। समंकों के पुनर्विन्यास में उपसदन (Approximation) की रीति का पालन किया जाता है अर्थात् वित्तीय विवरण के मौलिक अंकों को सन्निकटता के आधार पर पूर्णांक बना लिया जाता है। इसका उद्देश्य समंकों की जटिलता को दूर कर उन्हें सरल बनाना होता है।

(5) **तुलना** (Comparison) – वित्तीय विवरणों के निरपेक्ष समंक अपने आप में महत्वहीन होते हैं। उनसे निष्कर्ष निकालने के लिये उनकी सापेक्षिक मात्रा का माप आवश्यक होता है। यह एक दी हुई तिथि के विवरण की सम्बन्धित मदों के बीच तुलनाओं द्वारा (जैसे चालू दायित्वों की चालू सम्पत्तियों से तुलना करना) अथवा पिछले कई वर्षों से विवरणों से तुलना द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त एक कम्पनी के अंकों की तुलना उसी प्रकार की अन्य कम्पनियों अथवा सम्पूर्ण उद्योग के लिये तैयार किये गये अंकों से भी जा सकती है।

(6) **प्रवृत्ति का अध्ययन** (Study of Trend) – इसका आशय गत कई वर्षों में व्यवसाय में हुए महत्वपूर्ण परिवर्तनों के अध्ययन से है। इससे पूर्वानुमान में सहायता मिलती है।

(7) **व्याख्या** (Interpretation) – उपर्युक्त प्रक्रिया से उपलब्ध तथ्यों से निष्कर्ष निकालना ही व्याख्या या निर्वचन कहलाता है।

(8) **प्रस्तुतिकरण या सूचित करना** (Presentation of Reporting) – वित्तीय विवरणों के निर्वचन से ज्ञात निष्कर्षों को प्रतिवेदन रूप में प्रबन्ध के समक्ष प्रस्तुत करना ही प्रस्तुतीकरण कहलाता है। इसे प्रबन्ध को सूचित करना भी कहते है।

## वित्तीय विवरण विश्लेषण व निर्वचन की परिसीमायें
## (Limitations of Financial Statement Analysis and Interpretation)

वित्तीय विवरणों के विश्लेषण की कुछ परिसीमायें भी है। एक विश्लेषक को इन परिसीमाओं का ध्यान रखना आवश्यक है। ये परिसीमायें निम्नलिखित हैं –

(1) एक वर्ष के वित्तीय विवरणों से ही ज्ञात किये गये अंकों का बहुत ही सीमित महत्व रह जाता है। इन अंकों के विश्लेषण से कोई विश्वसनीय निष्कर्ष नहीं निकालें जा सकते हैं। किसी एक अन्य अवधि के अंकों के विश्लेषण की तुलना अंकों की प्रवृत्ति का विश्लेषण अधिक विश्वसनीय परिणाम देता है।

(2) भूत सदैव ही भविष्य का सूचक नहीं होता। व्यावसायिक क्रियाओं के परिणाम देश की सामान्य आर्थिक दशाओं, उद्योग के अन्तर्गत उपयोगी दशाओं आदि कारकों का प्रबन्ध के निर्णयों व नीतियों से प्रभावित होते हैं। अतः इन परिस्थितियों की पृष्ठभूमि में ही व्यवसाय के परिणामों की व्याख्या करनी चाहिये।

(3) वित्तीय विवरण विश्लेषण के सभी परिणाम अच्छे या बुरे प्रबन्ध के प्रत्यक्ष सूचक के रूप में नहीं प्रयोग किये जा सकते। ये तो केवल सम्भाव्यताओं को बतलाते हैं जिनकी और जांच

आवश्यक है। उदाहरण के लिये स्कन्ध आवर्त में कमी (Decrease in inventory turnover) सामान्यतः अवांछनीय प्रवृत्ति मानी जाती है। किन्तु यह किसी दुर्लभ कच्चे माल के बड़ी मात्रा में संग्रह के कारण हुई है तो यह कमी बुरी नहीं मानी जायेगी। अतः विश्लेषण के परिणामों से निष्कर्ष निकालते समय अन्य सम्बन्धित तथ्यों की जांच करना आवश्यक है।

(4) एक संस्था के कुछ परिवर्तनों से वित्तीय विवरणों के समंकों की तुल्यता समाप्त हो जाती है। एक विश्लेषक को ऐसे परिवर्तनों से सजग रहना चाहिये। उदाहरण के लिये स्थायी सम्पत्तियों के मूल्यों में वृद्धि या कमी से इनकी पिछले वर्षों के अंकों से कोई अर्थपूर्ण तुलना नहीं की जा सकती है।

(5) एक संस्था के वित्तीय विवरण के समंक दूसरी संस्था के समंकों से कदाचित् ही पूर्णतया तुल्य होते हैं। व्यावसायिक संस्थाओं की कार्यपद्धति, वस्तु या सेवा की प्रकृति, संयंत्रों की लागत, अर्थप्रबन्धन पद्धति आदि में पर्याप्त अन्तर पाया जाता है। अतः उसकी आपसी तुलना से सही निष्कर्ष नहीं निकाले जा सकते। इसी तरह दो कम्पनियों की लेखांकन शब्दावली में अन्तर की दशा में भी उनकी तुल्यता समाप्त हो जाती है। जैसे चालू सम्पतियों व दायित्वों की परिभाषा के सम्बन्ध में कम्पनियों में विभिन्नता पायी जा सकती है।

(6) मुद्रा मूल्य में तेजी से परिवर्तन की स्थिति में वित्तीय विवरणों के विश्लेषण की वैधता कम हो जाती है और उनसे कोई विश्वसनीय निष्कर्ष नहीं निकाले जा सकते क्योंकि स्थिति में वर्तमान अवधि के वित्तीय विवरण समंकों की भूतकालीन समंकों से तुलना महत्वहीन हो जाती है।

(7) वित्तीय विवरणों के विश्लेषण में विश्लेषक को वित्तीय विवरणों में ऊपरी दिखावट से सजग रहना चाहिये। आर्थिक चिट्ठे में ऊपरी दिखावट होने पर भ्रामक निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं। जैसे वित्तीय वर्ष की समाप्ति के अन्तिम दिनों में देनदारों की वसूली में तत्परता लाकर, क्रय को कुछ दिनों के लिये स्थगित कर आदि तरीके अपनाकर कोई कम्पनी चिट्ठे में अपनी अच्छी रोकड़ स्थिति दिखा सकती है।

## वित्तीय विश्लेषण के प्रकार
## (Types of Financial Analysis)

वित्तीय विश्लेषण के दो प्रमुख तरीके हैं –

(1) **क्षैतिज विश्लेषण** (Horizontal Analysis) – जब कई वर्षों के वित्तीय विवरणों का विश्लेषण किया जाता है तो यह क्षैतिज विश्लेषण कहलाता है। इसमें प्रत्येक मद के वर्ष–प्रति–वर्ष के परिवर्तनों को दिखलाया जाता है। चूंकि यह विश्लेषण किसी एक वर्ष अथवा किसी एक लेखा–अवधि के समंकों पर आधारित न होकर कई वर्षों या अवधियों के समंकों पर आधारित होता है, इसलिये इसे प्रावैकिग विश्लेषण (Dynamic Analysis) भी कहते हैं। वित्तीय विवरण विश्लेषण की अनुपात विधि, कोष–प्रवाह विश्लेषण विधि, प्रवृत्ति विश्लेषण, तुलनात्मक विवरण आदि तकनीकें क्षैतिज विश्लेषण के ही उदाहरण हैं।

(2) **लम्बवत् विश्लेषण** (Vertical Analysis) – यह किसी एक तिथि के अथवा किसी एक लेखा–अवधि के विभिन्न मदों के आपसी संख्यात्मक सम्बन्ध का अध्ययन है। वित्तीय विवरणों के विश्लेषण की औसत विश्लेषण तकनीक ऐसे ही विश्लेषण का उदाहरण है। इसमें एक तिथि अथवा एक अवधि के विवरण के योग को 100 माना जाता है तथा उस विवरण की प्रत्येक पद का उसके योग से प्रतिशत सम्बन्ध स्थापित किया जाता है। यह सम्बन्ध अनुपात विश्लेषण विधि से भी स्थापित किया जा सकता है। लम्बवत् विश्लेषण को स्थैतिक विश्लेषण (Static Analysis) भी कहते हैं।

यद्यपि विश्लेषण के लिये उपरोक्त दोनों विधियों का प्रयोग किया जा सकता है, प्रत्येक विधि एक विशिष्ट प्रकार की सूचना प्रदान करती है किन्तु इनमें से पहली विधि अधिक अच्छी है, क्योंकि लम्बवत् विश्लेषण के 'आधार' व 'प्रयोग किये गये मद' किसी में भी परिवर्तन आ जाने पर पूर्व निकाले गये प्रतिशत में परिवर्तन आ सकता है। इसके अतिरिक्त इसमें भूतकाल के सन्दर्भ में स्थिति का विवेचन नहीं किया जा सकता है। कई वर्षों के लगातार अध्ययन के पश्चात् ही आगणित समंक तुल्य हो सकते हैं। क्षैतिज विश्लेषण इन दोनों दोषों से मुक्त है। अतः यह विश्लेषण के लिये अधिक उपयुक्त है।

## विश्लेषण व निर्वचन की विधियां
## (TECHNIQUES OF ANALYASIS AND INTERPRETATION)

वित्तीय विवरण के विश्लेषण व निर्वचन का इतिहास वर्तमान शताब्दी से प्रारम्भ हुआ है। पाश्चात्य देशों में इस पद्धति का प्रयोग साख विश्लेषण के लिए प्रारम्भ हुआ था। सन् 1914 तक साख प्रदान करने वाले केवल वित्तीय विवरणों की वस्तु–स्थिति पर विश्वास करके साख प्रदान करते थे। परन्तु धीरे–धीरे इन विवरणों के प्रदत्त समंकों का विश्लेषण महत्वपूर्ण माना जाने लगा और इनके लिए अनेक विधियों का विकास हुआ। वर्तमान में निर्वचन व विश्लेषण की मुख्य विधियां निम्न हैं :

(अ) अनुपात विश्लेषण (Ratio Analysis),
(ब) तुलनात्मक विवरणों को तैयार करना (Prepartion of Comparative Statements),
(स) कोष–बहाव विवरण (Fund Flow Statement),
(द) रोकड़–बहाव विवरण (Cash Flow Statement),
(य) प्रवृत्ति विश्लेषण (Trend Analysis),

इनमें से प्रत्येक का विस्तृत अध्ययन अलगे अध्यायों में किया गया है, लेकिन इनकी संक्षिप्त व्याख्या इस प्रकार है :

(अ) **अनुपात विश्लेषण** – वित्तीय विवरणों में प्रदत्त व्यावसायिक तथ्यों का व्यक्तिगत रूप से कोई महत्व नहीं होता है। वे आपस में एक–दूसरे से सम्बन्धित होते हैं। अतः उनके आधार पर कोई भी उचित निष्कर्ष उस समय तक नहीं निकाला जा सकता है, जब तक कि विभिन्न मदों के बीच कोई सम्बन्ध स्थापित न किया जाये। दो या दो से अधिक मदों के बीच एक तर्कसंगत व नियमबद्ध पद्धति के आधार पर सम्बन्ध–स्थापना का परिणाम ही 'अनुपात' कहलाता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि अनुपात एक ऐसा संख्यात्मक सम्बन्ध प्रदर्शित करता है, जो वित्तीय विवरणों की दो या दो से अधिक मदों बीच पाया जाता है। इस सम्बन्ध को अनुपात के रूप में, दर के रूप में या प्रतिशत के रूप में व्यक्त किया जा सकता है।

अनुपात विश्लेषण से अनेक उद्देश्यों की पूर्ति हो सकती है। प्रमुख रूप से प्रबन्ध के आधारभूत कार्य योजना, समन्वय, नियन्त्रण, सवंहन एवं पूर्वानुमान के कार्य में सहायता पहुंचाना ही अनुपात विश्लेषण का उद्देश्य होता है। अनुपात विश्लेषण की तकनीक में (1) लेखांकन अनुपातों का निर्धारण, (2) अनुपातों की गणना, (3) निकाले गए अनुपातों की प्रमापित अनुपातों से तुलना, (4) अनुपातों का निर्वचन, तथा (5) अनुपातों के आधार पर प्रक्षेपित वित्तीय विरण तैयार करना शामिल होता है।

(ब) **तुलनात्मक विवरणों को तैयार करना** – तुलनात्मक वित्तीय विवरण किसी व्यवसाय की वित्तीय स्थिति के इस प्रकार बनाये गये विवरण होते हैं जो विभिन्न तत्वों पर विचार करने के लिये समय परिपेक्ष्य को दृष्टिगत रखते हुए किये जाते हैं। विश्लेषण हेतु तुलनात्मक विवरणों को तैयार करते समय इस बात को ध्यान में रखना चाहिये कि किसी संस्था के जितने समय के वित्तीय

इतिहास का अध्ययन किया जाता हो, उस समय के दौरान समंकों एवं सूचनाओं के एकत्रीकरण की विधियों में भिन्नता न हो।

विश्लेषण एवं निर्वचन के लिए तैयार किये जाने वाले तुलनात्मक विवरणों में तुलनात्मक चिट्ठा, उत्पादन लागत का तुलनात्मक विवरण, तुलनात्मक लाभ–हानि खाता, कार्यशील पूंजी का तुलनात्मक विवरण आदि महत्वपूर्ण हैं। इन तुलनात्मक विवरणों में वित्तीय आंकड़ों एवं सूचनाओं को निम्न प्रकार से दिखलाया जा सकता है :

(1) निरपेक्ष अंकों (मुद्रा मूल्य) के रूप में,
(2) निरपेक्ष अंकों में वृद्धि या कमी के रूप में,
(3) निरपेक्ष अंकों में हुई वृद्धि या कमी के प्रतिशत के रूप में तथा
(4) समान आकार वाले विवरणों के रूप में।

वित्तीय विवरणों को तुलनात्मक रूप में प्रस्तुत करके दो वित्तीय अवधियों में हुए परिवर्तनों की जानकारी तथा वित्तीय स्थिति एवं संचालन के परिणामों की दिशा ज्ञात की जा सकती है।

(स) **कोष–बहाव विवरण** – कोष–बहाव विवरण सारांश रूप में तैयार किया गया एक ऐसा विवरण है, जो दो तिथियों पर तैयार किये गये आर्थिक चिट्ठे के वित्तीय मदों में हुए परिवर्तन को दर्शाता है। इसके लिए कोष से तात्पर्य कार्यशील पूंजी से लगाया जाता है और बहाव से तात्पर्य फण्ड के निर्माण एवं उत्पत्ति से होता है। इस प्रकार कोष–बहाव विवरण एक निश्चित अवधि में कार्यशील पूंजी में हुए परिर्वतनों व अन्य वित्तीय मदों के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने हेतु तैयार किया जाता है। इससे न केवल संस्था की वित्तीय दशा की सुदृढ़ता के विषय में ज्ञान प्राप्त होता है, बल्कि प्रबन्ध की वित्तीय नीतियों के सफल क्रियान्वयन के विषय में भी जानकारी मिलती है। यह प्रबन्ध की उस उच्च दक्षता को भी दर्शाता है जिसके सहारे प्रबन्धकीय निर्णय लिये गये होते हैं। यह उन जटिल प्रश्नों का भी सहज उत्तर प्रदान करता है, जिसे वित्तीय विवरणों से प्राप्त नहीं किया जा सकता। यह संस्था की प्रगति के मूल्यांकन में, इसकी वित्तीय आवश्यकताओं व उनके अनुकूलतम वित्तीय प्रबन्धन के निर्धारण में भी सहायता देता है। इस विवरण की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए ए. आई.सी.पी.ए. ने मत प्रकट किया है, "वार्षिक रिपोर्ट में भली–भांति से चित्रित तुलनात्मक कोष–बहाव विवरण सम्मिलित करना एक सामान्य प्रथा बन जानी चाहिए।" हालांकि कोष–बहाव विवरण के अनेक उपयोग हैं और यह वित्तीय विश्लेषण का महत्वपूर्ण यन्त्र है, फिर भी इसकी अनेक सीमाएं व मर्यादाएं हैं, जिन्हें इसका प्रयोग करते समय अवश्य ध्यान में रखना चाहिए।

(द) **रोकड़–बहाव विवरण** – यह रोकड़–बहाव का एक विवरण है और रोकड़–बहाव व्यावसायिक संस्था के अन्दर व बाहर रोकड़ की गति को दर्शाता है। रोकड़ आगमन रोकड़ के साधन के रूप में और रोकड़ बहिर्गमन रोकड़ के प्रयोग के रूप में माना जाता है। यह विवरण उन कारकों पर भी प्रकाश डालता है, जिनके कारण रोकड़ का आगमन व बहिर्गमन होता है। इस प्रकार रोकड़–बहाव विवरण एक ऐसा विवरण है, जिसे दो चिट्ठों की तिथियों के मध्य रोकड़ स्थिति में हुए परिवर्तन व उनके कारकों पर प्रकाश डालने के लिए तैयार किया जाता है। रोकड़–बहाव विवरण संस्था के अल्पकालीन वित्तीय परिवर्तनों की जांच की एक तकनीक है। यह संस्था की वित्तीय नीतियों और वर्तमान रोकड़ स्थिति के मूल्यांकन में सहायक होता है। भावी अवधि के लिए तैयार किय जाने पर यह प्रबन्ध को संस्था के वित्तीय कार्यकलापों के नियोजन एवं समन्वय में भी सहायक होता है। इस विवरण की सहायता से संस्था का रोकड़ बजट भी तैयार किया जा सकता है।

(य) **प्रवृत्ति विश्लेषण** – वित्तीय विवरणों के निर्वचन में प्रवृत्ति विश्लेषण का भी महत्वपूर्ण स्थान है। प्रवृत्ति सामान्य रूप में एक साधारण रूझान को कहते हैं। व्यवसायिक तथ्यों की प्रवृत्ति का विश्लेषण प्रवृत्ति अनुपात या प्रतिशत एवं बिन्दुरेखीय पत्र या चार्ट पर अंकित करके किया जा सकता

है। इसके अन्तर्गत लाभ–हानि खाते या चिट्ठे के किसी भी मद के सम्बन्ध में उसकी प्रवृत्ति ज्ञात की जा सकती है, अर्थात् तीन–चार वर्षों के अन्तर्गत उस मद में क्या परिवर्तन हुए हैं, अर्थात् उसमें प्रति वर्ष कमी हुई है अथवा वृद्धि हुई, इसको प्रवृत्ति विश्लेषण के द्वारा ज्ञात किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, पिछले चार वर्षों के विक्रय की राशि को एक जगह रखकर यह देख सकते हैं कि प्रतिवर्ष उसमें कितनी वृद्धि या कमी हो रही है और उसके आधार पर अगले वर्ष के लिए विक्रय का पूर्वानुमान लगाया जा सकता है।

## कार्यशील पूंजी का प्रबन्ध

(Management of Working Capital)

**प्रत्येक व्यावसायिक संस्था को दो प्रकार की पूंजी की आवश्यकता होती है– स्थिर पूंजी व कार्यशील पूंजी। व्यवसाय के संचालन में स्थायी रूप में प्रयोग हेतु कुछ सम्पत्तियों की आवश्यकता पड़ती है, जिन्हें स्थायी सम्पत्ति कहते हैं और इनमें लगायी गयी पूंजी स्थायी या स्थिर पूंजी कहलाती है। इसके विपरीत, व्यवसाय के संचालन सम्बन्धी दिन–प्रतिदिन की आवश्यकताओं को पूरा करने हेतु भी सम्पत्तियों की जरूरत पड़ती है, जिन्हें चल सम्पत्ति कहते हैं और इनमें लगायी गयी पूंजी को चालू पूंजी या कार्यशील पूंजी कहते हैं।**

**परन्तु तकनीकी दृष्टिकोण से कार्यशील पूंजी की परिभाषा के सम्बन्ध में एकमत नहीं है। वर्तमान में दो प्रकार की विचारधाराएं विशेषज्ञ हैं और इन्हें क्रमशः विस्तृत दृष्टिकोण (या सकल कार्यशील पूंजी दृष्टिकोण) व संकीर्ण दृष्टिकोण (या शुद्ध कार्यशील पूंजी दृष्टिकोण) कह सकते हैं। व्यापक दृष्टिकोण कार्यशील पूंजी के परिमाण पहलू पर बल देता है, जबकि सीमित दृष्टिकोण उसके गुणात्मक पहले को उजागर करता है।**

**व्यापक दृष्टिकोण के आधार पर कार्यशील पूंजी अल्पकालीन व दीर्घकालीन दोनों प्रकारों के दायित्वों द्वारा अधिग्रहित चल सम्पत्तियों के योग के बराबर होती है। इस प्रकार यह परिभाषा कार्यशील पूंजी की मात्रा या परिमाण पर अधिक जोर देती है। इस परिभाषा के पीछे दो तर्क निहित है। प्रथम, जब हम स्थायी सम्पत्तियों के अधिग्रहण में लगायी पूंजी को स्थायी पूंजी मानते हैं तो चल सम्पत्तियों के अधिग्रहण में लगायी गयी पूंजी को कार्यशील पूंजी मानना चाहिए। द्वितीय, चल सम्पत्तियाँ, चाहे वे किसी साधन से क्यों न प्राप्त की गयी हों, दिन–प्रतिदिन संचालन सम्बन्धी क्रियाओं में प्रयुक्त होती है और उनका रूप परिवर्तित होता रहता है, अतः उन सबको कार्यशील पूंजी ही मानना चाहिए। इस दृष्टिकोण से प्रभावित होकर बानविले व डंबे (** Bonnevilley and Dewey **) ने कहा है कि किसी भी फण्ड की प्राप्ति को, जो चालू सम्पति को बढ़ाता है, कार्यशील पूंजी की संज्ञा दी जा सकती है।**

संकीर्ण दृष्टिकोण के आधार पर चल सम्पत्तियों में से चल दायित्वों को घटाने के बाद जो शेष बचता है उसे ही कार्यशील पूंजी माना जा सकता है। इस प्रकार यह परिभाषा कार्यशील पूंजी की मात्रा पर जोर न देकर उसके गुणात्मक पहलू पर जोर देती है। इस परिभाषा के अन्तर्गत कार्यशील पूंजी को शुद्ध कार्यशील पूंजी के रूप में भी समझा जा सकता है।

किसी भी संस्था की 'कार्यशील पूंजी' सामान्यतः कच्चे माल के स्कन्ध में, अंशतः तैयार माल के स्कन्ध में प्राप्त खातों में विक्रय योग्य प्रतिभूतियों में और रोकड़ में विनियोजित होती है। इस सभी रूपों में लगायी गयी पूंजी सतत रूप में नकद रोकड़ में परिवर्तित होती रहती है और यह रोकड़ पुनः कार्यशील पूंजी के अन्य प्रारूपों के बदल में बाहर चली जाती है। इस प्रकार यह सतत रूप में चक्र काटता रहता है। परन्तु यह ध्यान में रखना चाहिए कि रोकड़ या रोकड़ तुल्य सभी सम्पत्तियों के कुछ मूल्य को कार्यशील पूंजी का माप नहीं माना जा सकता है।

किसी भी संस्थान की 'कार्यशील पूंजी' सामान्यतः कच्चे माल के स्कन्ध में, अंशतः तैयार माल के स्कन्ध में, प्राप्त खातों में, विक्रय योग्य प्रतिभूतियों में और रोकड़ में विनियोजित होती है। इस सभी रूपों में लगायी गयी पूंजी सतत रूप में नकद रोकड़ में परिवर्तित होती रहती है और यह रोकड़ पुनः कार्यशील पूंजी के अन्य प्रारूपों के बदले में बाहर चली जाती है। इस प्रकार यह सतत रूप में चक्र काटता रहता है। परन्तु यह ध्यान में रखना चाहिए कि रोकड़ या रोकड़ तुल्य सभी सम्पत्तियों के कुल मूल्य को कार्यशील पूंजी का माप नहीं माना जा सकता है। चिट्ठे के दूसरी तरफ दायित्वों का एक समूह होता है जिसमें मुख्य रूप से अधिविकर्ष, लेनदार, देय बिल व अन्य अल्पकालीन दायित्व होते हैं, जो इन सम्पत्तियों के मूल्यां में से अवश्य घटाये जाने चाहिए ताकि शुद्ध कार्यशील पूंजी निर्धारित की जा सके। यदि ऐसा नहीं किया जाय तो संस्था अपने आप को कार्यशील पूंजी से पूर्ण सुरक्षित समझ सकती है, जबकि वास्तविकता यह हो सकती है कि संस्था के पास कार्यशील पूंजी थोड़ी है या बिल्कुल नहीं है। इसलिए कार्यशील पूंजी को चालू सम्पत्ति का चालू दायित्व पर आधिक्य के रूप में परिभाषित करना यशोचित होगा।

इस विचारधारा के अनुसार यदि किसी संस्था की चल सम्पत्ति चल दायित्व से अधिक है, तो कार्यशील पूंजी के दृष्टिकोण से संस्था की स्थिति संतोषजनक व सुदृढ़ मानी जा सकती है। यदि संस्था की चल सम्पत्ति व चल दायित्व बराबर है, तो यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि संस्था ने कार्यशील पूंजी के लिए पूर्ण रूप से अल्कालीन ऋणों का ही सहारा लिया है और दीर्घकालीन फण्ड के स्रोतों का प्रयोग स्थायी सम्पतियों के क्रय में ही किया है। स्पष्ट है कि

वितीय स्थिति संस्था की वितीय सुदृढ़ता की परिचायक नहीं मानी जा सकती। यदि संस्था की चल सम्पत्ति चल दायित्व से कम है, तो यह वित्तीय संकट का प्रतीक माना जायेगा।

उपर्युक्त विवेचन से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि व्यावसायिक दृष्टि से चल सम्पतियों को कार्यशील पूंजी के रू॰ में माना जा सकता है, क्योंकि सम्पूर्ण चल सम्पत्तियां व्यवसाय के संचालन मेँ प्रयोग होती है। परन्तु तकनीकी व लेखांकन दृष्टिकोण से कार्यशील पूंजी को चालू सम्पति व चालू दायित्व के अन्तर के बराबर ही मानना उचित होगा, क्योंकि यह अन्तर की मात्रा ही संस्था की वितीय सुदृढ़ता व सन्तोषप्रदता पर प्रकाश डाल सकती है।

कार्यशील पूंजी का प्रबन्ध

व्यवसाय के अन्तर्गत कार्यशील पूंजी की एक पर्याप्त मात्रा अपरिहार्य होती है। व्यवसाय की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए कार्यशील पूंजी की मात्रा न तो उसेस अधिक होनी चाहिए और न ही उससे कम। दोनेंा स्थितियां व्यवसाय के लिए हानिकारक सिद्ध होती है। परन्तु कार्यशील पूंजी की मात्रा निर्धारित करने के साथ–ही–साथ हमें यह भी ध्यान में रखना होगा कि विभिन्न चल सम्पत्तियां में विनियोग हेतु अल्पकालीन व दीर्घकालीन दायित्वों में विनियोग का अनुकलतम स्तर क्या हो और उन विनयोग हेतु अल्पकालीन व दीर्घकालीन दायित्वों के बीच अनुकूलतम मिश्रण क्या हो। अन्य शब्दों में, हमें यह निर्धारित करना पड़ता है कि चल सम्पतियों एवं चल दायित्वों का मात्रा स्तर क्या होना चाहिए (क्योंकि इसी से कार्यशील पूंजी की मात्रा का स्तर निर्धारित होता है) इस प्रकार के निर्धारण में संस्था की तरलता और ऋणों की अदायगी के सम्बन्ध में मूलभूत निर्णय शामिल होते हैं। अन्य शब्दों में हमें यह देखना पड़ता है कि संस्था की तरलता की आवश्यकता क्या है और विभिन्न चल दायित्वों का भुगतान कब और किस अन्तराल पर करना है। संस्था के पास जितनी चल सम्पत्तियां हैं उन्हें किस दर से या किस सीमा तक नकद में परिवर्तित कर सकते हैं; संस्था की साख नीति एवं विधि क्या है, स्कन्ध का प्रबन्ध व नियत्रंण किस प्रकार हो रहा है और स्थायी सम्पतियों का प्रबन्ध कैसा है।

यदि संस्था द्वारा स्थायी सम्पतियों का प्रबन्ध प्रभावशाली है; स्कन्ध पर नियमित नियंत्रण हो रहा है और साख नीति व विधि वैज्ञानिक है, तो यह कहा जा सकता है कि तरल सम्पतियों का कुल सम्पतियों में जितना ही अनुपात कम होगा, संस्था के कुल विनियोग पर प्रत्याय की मात्रा उतनी ही अधिक होगी।

दूसरी तरफ चल दायित्वों के द्वारा अर्थ प्रबन्धन करने पर लागत की मात्रा दीर्घकालीन फण्ड की लागत से कम होती है, अतः लाभदायकता के दृष्टिकोण से संस्था के कुल ऋणों में चल दायित्वों का अंश या मात्रा अधिक होनी चाहिए। यही नहीं अल्कालीन फण्ड के प्रयोग से संस्था को अधिक लाभ मिल सकता है क्योंकि ऋण का उस समय भुगतान किया जा सकता है जब व्यवसाय में उसकी आवश्यकता न हो। लाभदायकता की मान्यता के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि कुल सम्पतियां में चल सम्पतियों का हिस्सा कम होना चाहिए और कुल दायित्वों में चल दायित्वों का हिस्सा अधिक होना चाहिए? परन्तु इस सिद्धान्त के पाल करने पर कार्यशील पूंजी की मात्रा न केवल होगी बल्कि नकारात्मक भी हो सकती है अन्य शब्दों में इस सिद्धांत के पालन में संस्था के सामने जोखिम उपस्थित हो सकती है। इस संदर्भ में जोखिम का अर्थ तकनीकी अशोधन क्षमता से है। कानूनी अर्थ में, अशोधन क्षमता उस समय उदित होती है जब सम्पत्तियां दायित्व से कम हों। तकनीकी अर्थ में, अशोधन क्षमता का अर्थ उस स्थिति से है, जब संस्था अपने चल दायित्वों को पूरा करने में असमर्थ हो। जोखिक का मूल्यांकन तभी संभव हो सकताहै, जब हम संस्था की तरलता का विश्लेषण करें। तरलता से आशय सम्पतियों को तुरन्त नकद रूप में परिवर्तित करने की योग्यता से है। इस प्रकार यदि हम चल सम्पतियों का हिस्सा कम रखना चाहें तो यह आवश्यक हो जाता है कि सम्पतियों में तरलता की मात्रा अधिक हो, तभी जोखिम की हानि से बचा जा सकता है। वस्तुतः कार्यशील पूंजी की मात्रा निर्धारित करते समय इन सभी पहुलओं पर एकग्रचित दृष्टिकोण अपनाने की आवश्यकता पड़ती है।

कार्यशील पूंजी के प्रबन्धन की महत्ता

कार्यशील पूंजी के प्रबन्ध की व्याख्या से स्पष्ट हो रहा है कि कार्यशील पूंजी का कुप्रबन्ध अथवा कार्यशील पूंजी की अपर्याप्तता व्यवसाय की असफलता का प्रमुख कारण बन सकता है। यह कभी नहीं भूलना चाहिए कि कार्यशील पूंजी का प्रबन्ध वित्तीय प्रबन्ध का एक अभिन्न अंग होता है और अन्नतः समूचे निगम प्रबन्ध का भी। यह कार्यशील पूंजी का प्रबन्धन एक बहुत बड़ी चुनौती खड़ा करता है और एक वित्तीय प्रबन्धक के लिए ( जो संगठन में एक अहम भूमिका अदा करने के लिए तैयार हो) यह चुनौती स्वागतयोग्र सुअवसर प्रदान करती है जिसका सही दिशा में उपयोग करके वित्तीय कुशीलता व क्षमता को बढ़ाया जा सकता है। कार्यशील पूंजी के प्रबन्ध के प्रति किसी भी प्रकार की उदासीनता या उसको नजर अंदाज करना तकनीकी दिवालियेपन की स्थिति को पैदा कर सकता है और कभी–कभी व्यावसायिक इकाई का विघटन भी हो सकता है। कार्यशील पूंजी के प्रबन्ध की

अक्षमता व अकुशलता के फलस्वरूप या तो कार्यशील पूंजी की अपर्याप्तता हो सकती है या कार्यशील पूंजी की अधिकता और दोनों ही स्थिति खतरनाक होती है।

कार्यशील पूंजी की अपर्याप्तता के विपरीत परिणाम

(1) विकास अवरूद्ध हो सकता है ; फण्ड की उपलब्धता न होने से लाभदायक परियोजनाओं को हाथ में लेना कठिन कार्य हो जाता है।

(2) संचालनात्मक योजनाओं का क्रियान्वयन जटिल हो जाता है और फलस्वरूप फर्म का लक्ष्य(लाभ) प्राप्त नहीं किया जा सकता।

(3) दिन–प्रतिदिन के वायदों को पूरा करने में कठिनाइयों के कारण संचालनात्मक अक्षमता व अकुशलता पैदा हो सकती है।

(4) कार्यशील पूंजी की कमी के कारण स्थायी सम्पतियों का क्षमतापूर्वक प्रयोग नहीं हो सकता है और इस प्रकार विनियोगों पर प्रत्याय की दर नीचे की ओर आ सकती है।

(5) कार्यशील पूंजी में कमी के कारण आकर्षक साख अवसरों को प्रायः खोना पड़ता है।

(6) जब फर्म अल्पकालीन दायित्वों को पूरा करने में असमर्थ हो, तो वह अपनी ख्याति/प्रसिद्धि को भी खो देती है। फलस्वरूप संस्था को कड़ी उधार शर्तों का सामना करना पड़ता है।

कार्यशील पूंजी की अधिकता से खतरा/हानि

(1) कार्यशील पूंजी की अधिकता अनावश्यक रूप से स्टॉक का संचय, स्टॉक का दोषपूर्ण व गलत ढंग से उठाना रखना, क्षय, चोरी आदि को प्रोत्साहित करता है।

(2) कार्यशील पूंजी की अधिकता से दोषपूर्ण साख नीति और देनदारों से वसूली में ढिलाई को भी प्रोतसाहित करता है जिसके कारण अशोध्य ऋण का भार बढ़ने लगता है और इसका बुरा प्रभाव लाभ पर पड़ता है।

(3) कार्यशील पूंजी की अधिकता प्रबन्ध को ऐसा संतोष प्रदान कर सकती है कि अब उसे कुछ करना हीं नहीं है, फलस्वरूप प्रबन्धकीय अक्षमता पैदा होने लगती है।

(4) कार्यशील पूंजी की अधिकता सट्टे के लाभ को कमाने के लिए स्टॉक संचय की प्रवृत्ति को प्रोत्साहित कर सकती है, जिससे उदार लाभांश नीति अपनाना पड़ती है और जब सट्टे का लाभ नहीं होता है ; तो इस उदार लाभांश नीति को बनाये रखने में कठिनाइयां आने लगती है।

उक्त विवेचना के आधार पर यह कहा जा सकता है कि एक प्रबुद्ध वित्तीय प्रबन्धक को हमेशा कार्यशील पूंजी की एक सही रकम/प्रमाप रकम सतत रूप मे बनाये रखनी चाहिए समय के विभिन्न बिन्दुओ पर कार्यशील पूंजी सही मात्रा को अनुमानित करने की अनेक विधियां है जिनका वर्णन आगे के पृष्ठों में किया गया है।

कार्यशील पूंजी के अवयव

कार्यशील पूंजी के दो अवयय चल सम्पति व चल दायित्व हैं। चल सम्पति में विभिन्न मदों को शामिल करते हैं। कुछ प्रमुख मदें है।

(i) जब और जैसे ही खर्चे होते हैं, उन्हें पूरा करने के लिए नकद व बैंक, शेष;
(ii) प्राप्य खाते या विविध व्यापारिक देनदार ;
(iii) कच्चा माल, स्टोर्स, आपूर्ति व स्पेयर्स का स्कन्ध, चालू कार्य का स्कन्ध तथा तैयार माल का स्कन्ध ;
(iv) क्रय या खर्चो के लिए अग्रिम भुगतान तथा अन्य अल्पकालीन अग्रिम जो वसूली योग्य हो; तथा
(v) आधिक्य कोष का अस्थायी विनियोग जिन्हें आवश्यकता पड़ने पर नकद में परिवर्तित किया जा सकता हो।

चल सम्पत्तियों के अर्थ प्रबन्धन के लिए आवश्यक कोष के एक भाग को उधार पर माल की आपूर्ति द्वारा तथा खर्चो के भुगतान को रीति रिवाज व प्रयोग के आधार पर टालकर पूरा किया जा सकता है। कार्यशील पूंजी के शेष भाग को वित्त प्रदान करने वाली संस्थाओं जैसे बैंक से अल्पकालीन उधार से भी पूरा किया जा सकता है। इन सभी को सामूहिक रूप से चल दायित्व कहते हैं। चल दायित्व की मुख्य्र मदें हैं:

(i) उधार पर खरीदा गया माल का आपूर्तिदाता;

(ii) व्यावसायिक संगठन के व्यवसाय के दौरान किये गये खर्चे (जैसे मजदूरी, वेतन, किराया, विद्युत, बिल, ब्याज आदि ) जिनका अभी तक भुगतान नहीं हुआ ;

(iii) बैंक, वित्तीय संस्था या अन्य पक्षों से अस्थायी या अल्पकालीन उधार ;

(iv) बेचे जाने वाले माल के विरूद्ध प्राप्त अग्रिम व अल्पकालीन जमा;

(v) अन्य चल दायित्व जैसे, देय कर व देय लाभांश

कार्यशील पूंजी के प्रकार

साधारणः कार्य शील पूंजी को दो वर्गो में वगीकृत किया जाता है

(अ) स्थायी या नियमित या स्थिर कार्यशील पूंजी, और

(ब) परिवर्तनशील, मौसमी या अस्थायी या विशिष्ट कार्यशील पूंजी।

(अ) स्थिर कार्यशील पूंजी – चल सम्पत्तियों की आवश्यकता संचालन चक्र से सम्बन्धित है, जो अपने आप में एक सतत प्रक्रिया है। इस प्रकार चल सम्पत्तियों की आवश्यकता नियमित रू‌प से महसूस की जाती है। परन्तु चल सम्पत्तियों में विनियोग की मात्रा हमेशा एक समान नहीं होती है। उत्पादन के स्तर के अनुसार एक समयावधि में चल सम्पत्तियों में विनियोग की मात्रा बढ़ती या घटती रहती है। फिर भी चल सम्पत्तियों का एक न्यूनतम स्तर ऐसा होता है जो व्यवसाय के संचालन के लिए अपरिहार्य होता है, चाहे उत्पादन स्तर कुछ भी क्यों न रहे। यह न घटने योग्य न्यूनतम विनियोग स्थायी रूप से व्यवसाय में बना रहता है और इस लिए इसे स्थायी या स्थिर या नियमित कार्यशील पूंजी कहते है। यह उसी प्रकार स्थायी होती है, जैसे स्थायी सम्पत्तियों में विनियोग होता है। कहने की आवश्यकता नहीं है कि इस प्रकार की कार्यशील पूंजी का अर्थ प्रबन्धन स्थायी वित्त स्रोत से किया जाना चाहिए।

(ब) परिवर्तनशील कार्यशील पूंजी – स्थायी कार्यशील पूंजी के अलावा शेष कार्यशील पूंजी की मात्रा उत्पादन व विक्रय में परिवर्तन के अनुसार बदलती रहती है। कार्यशील पूंजी की आवश्यकता मौसमी परिवर्तनों या असाधारण दशाओं के कारण भी बदलती रहती है। बदलती व्यावसायी क्रियाओं को सहायता हेतु अतिरिक्त कार्यशील पूंजी की आवश्यकता ही परिवर्तनशील कार्यशील पूंजी मानी जाती है। उदाहरण के लिए, कीमत स्तर में वृद्धि से कच्चे माल के स्टॉक में विनियोग की मात्रा में वृद्धि होगी ; गलकटा, प्रतियोगिता तालाबंदी हड़ताल आदि से उत्पन्न समस्याओं का सामना करने हेतु अतिरिक्त कार्यशील पूंजी की जरूरती होगी ; विक्रय–संवर्द्धन हेतु विशिष्ट विज्ञापन व अन्य प्रोत्साहनों हेतु अतिरिक्त कार्यशील पूंजी की जरूरत पड़ सकती है।

## कार्यशील पूंजी का विश्लेषण

## या

## कार्यशील पूंजी के प्रबन्ध में क्षमता के मापदण्ड

यह तो पहले ही बतलाया जा चुका है कि संस्था के अन्तर्गत कार्यशील पूंजी न तो आवश्यकता से कम होनी चाहिए और न ही आवश्यकता से अधिक होनी चाहिए। यह भी स्पष्ट किया गया है कि यदि संस्था में प्रत्येक समय आवश्यकतानुसार पर्याप्त मात्रा में कार्यशील पूंजी बनी रहेगी, तो संस्था का संचालन भी सफलतापूर्वक सम्पादित किया जा सकेगा और विनियोग पर प्रत्याय को अधिकतम बनाया जा सकेगा। अतः वितीय प्रबन्ध का सदैव यही प्रयास होता है कि संस्था की आवश्यकता व कार्यशील पूंजी की मात्रा में संतुलन बना रहे। वित्त प्रबन्ध इस सम्बन्ध में तभी आश्वस्त हो पायेगा, जब न केवल कुल कार्यशील पूंजी में होने वाले परिवर्तनों को ही ध्यान में रखा जाय, बल्कि कार्यशील पूंजी की व्यक्तिगत मदों में होने वाले परिवर्तनों को भी सावधानी के साथ जांचा जाय। अन्य शब्दों में, चालू सम्पतियों एवं चालू दायित्वों के व्यक्तिगत मदों के सम्बन्ध में सतर्कता से खोज की जाय, ताकि कार्यशील पूंजी पर उचित नियंत्रण रखा जा सके और इसकी मात्रा किसी भी समय आवश्यकता से कम या अधिक न होने पाये। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि समय–समय पर कार्यशील पूंजी की पर्याप्तता एवं कुशलता की जांच करना आवश्यक होगा। जब हम कार्यशील पूंजी के विभिन्न अवयवों की सूक्ष्मता एवं गहन से जांच इस उदेश्य से करते है कि उसकी मात्रा व्यावसायिक आवश्यकताओं से कम है या अधिक तो उसे कार्यशील पूंजी का विश्लेषण कहते है।

विश्लेषण की तकनीकियां :

कार्यशील पूंजी के विश्लेषण में सामान्यतः निम्न तकनीको का प्रयोग किया जाता है

(1) कार्यशील पूंजी में परिवर्तन की अनुसूची

(2) अनुपात विश्लेषण

(3) फण्ड विवरण

(1) कार्यशील पूंजी में परिवर्तन की अनुसूची :– इसे कभी–कभी कार्यशील पूंजी स्थिति विवरण भी कहते हैं। इसके आधार पर हमें यह ज्ञात होता है कि कार्यशील पूंजी की प्रवृत्ति क्या रही है साथ–ही साथ इस प्रकृति के लिए कार्यशील पूंजी के विभिन्न मदों में होने वाले कौन–कौन से परिवर्तन उतरदायी रहे हैं। उदाहरण

(2) अनुपात विश्लेषण :– वैसे तो अनुपात विश्लेषण के द्वारा संस्था की लाभदायकता, निष्पादन–क्षमता व वित्तीय स्थिति के विषय में ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है, परन्तु कार्यशील पूंजी की पर्याप्तता की जांच हेतु भी हम कुछ अनुपातों का प्रयोग कर सकते हैं। इन अनुपातों की गणना एक निश्चित अन्तराल पर (जैसे मासिक, तिमाही, छमाही) की जानी चाहिए। प्रत्येक नये अनुपात की तुलना पिछल अवधी के अनुपात से करके विचलनों को ज्ञात करना चाहिए और उनके कारणों की खोज करके उचित उपचार अपनाना चाहिए। यह और भी वैज्ञानिक होगा कि संस्था के संदर्भ में आकलित अनुपातों की तुलना उसी व्यवसाय में संलग्न अन्य संस्थाओं के अनुपात से की जाय। कुछ विनियोजक एवं वित विशेषज्ञ इन अनुपातों के तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर अनेक महत्वपूर्ण निष्कर्ष निकाल सकते है।

1. रोकड़ अनुपात
2. तरलता अनुपात
3. चालू अनुपात
4. स्कन्ध आवर्त
5. स्कन्ध कार्यशील पूंजी का अनुपात
6. कार्यशील पूंजी आवर्त
7. देनदार आवर्त
8. लेनदार आवर्त
9. कार्यशील पूंजी का शुद्ध मूल्य से अनुपात

(3) फण्ड विवरण :– फण्ड विवरण का अर्थ, उदेश्य व निर्माण विधि पर फण्ड के साधनों एवं फण्ड के प्रर्योगों से सम्बन्धित मदों की व्याख्या की जाती है। फण्ड के प्रत्येक साधन से फण्ड (कार्यशील पूंजी) में वृद्धि होती है और फण्ड के प्रत्येक प्रयोग से फण्ड (कार्यशील पूंजी) में कमी आती है। अतः किसी अवधि के प्रारम्भ विद्यमान कार्यशील पूंजी की रकम में फण्ड के साधनों से प्राप्त रकम को जोड़ दे और फण्ड के प्रयोग से सम्बन्धित रकम को घटा दे ंतो उस अवधि के अन्त में कार्यशील पूंजी की रकम ज्ञात हो जायेगी और इस प्रकार हम यह पता लगा सकते है कि कार्यशील पूंजी में क्या परितर्वन हुआ है इस दृष्टि से फण्ड विवरण का प्रारूप निम्नलिखित हो सकता है।

Name of the company

Fund Statement of Showing changes in working capital position

| | | |
|---|---|---|
| Working capital at the start | | *** |

| | | |
|---|---|---|
| Add: Sources of Funds | *** | *** |
| (i) Profit from Operations | *** | |
| (ii) Further issue of shares | *** | |
| (iii) Issue of Debentures | *** | |
| (iv) Resort of Long term Borrowings | *** | |
| (v) Sales of Fixed Assets | *** | *** |
| Less : Uses of Funds | | *** |
| (i) Purchases of Fixed Assets | | |
| (ii) Repayments of Borrowings | *** | |
| (iii) Redemption of Debentures | *** | |
| (iv) Dividends paid | | |
| Working capital at the End | | |

## कार्यशील पूंजी का अनुमान

किसी व्यावसायिक संस्था के सफल संचालन हेतु आवश्यक कार्यशील पूंजी का निर्धारण अपने आप में एक महत्वपूर्ण प्रश्न है। वास्तविक कार्यशील पूंजी की स्थिति का विश्लेषण भी अर्थहीन हो जाता है, यदि हम संस्था की आवश्यक कार्यशील पूंजी का अनुमान न लगाते हों। आवश्यक कार्यशील पूंजी की निर्धारण सम्बन्धी समस्या का समाधन तभी हो सकता है। जब हम यह पता लगा लें कि कार्यशील पूंजी की मात्रा किन–किन कारणों से प्रभावित होती है। यह तो हम देख चुके हैं कि कभी–कभी कार्यशील पूंजी की आवधारणा को चालू सम्पतियों से सम्बन्धित किया जाता है और इस प्रकार की राय रखने वाले विशेषज्ञों की यह मान्यता है कि संसथा की चालू सम्पतियों की आवश्यकता ही कार्यशील पूंजी की आवश्यकता मानी जानी चाहिए। अन्य शब्दों में कार्यशील पूंजी की मात्रा इच्छित चालू सम्पतियों की मात्रा के बराबर होगी, परन्तु संस्था के अन्तर्गत प्रयुक्त स्थायी सम्पतियों की प्रकृति व सम्भाम पर्याप्त सीमा तक चालू सम्पतियों की मात्रा को प्रभावित करता है अतः कार्यशील पूंजी की मात्रा स्थायी सम्पतियों से भी प्रभावित होती है किसी भी व्यावसायिक संस्था के लिए आवश्यक कार्यशील पूंजी की मात्रा निम्न कारकों से प्रभावित होती है और यह महत्वपूर्ण हो जाता है कि कार्यशील पूंजी का अनुमान लगाते समय इन कारकों को ध्यान में रखा जाय :

**(1) व्यवसाय की प्रकृति** : कार्यशील पूंजी की मात्रा को प्रभावित करने वाला यह एक महत्वपूर्ण कारक है। व्यवसाय की प्रकृति के अनुसार कार्यशील पूंजी की आवश्यकता भिन्न–भिन्न मात्रा में होती है। कुछ व्यवसाय ऐसे होते हैं, जहां पर कार्यशील पूंजी

की आवश्यकता उतनी अधिक नहीं होती है, जितनी की स्थायी पूंजी की। इंजीनियरिंग व तेल उद्योग इसके उदाहरण है कुछ व्यवसाय इस प्रकार के होते हैं जहां पर स्थायी पूंजी की तुलना में कार्यशील पूंजी की आवश्यकता अधिक होती है, जैसे बैकिंग उद्योग व व्यापार करने वाली संस्थाएँ में।

(2) निर्माण अवधि की लम्बाई व उत्पादन बिक्री का अन्तराल : संस्था की कार्यशील पूंजी की आवश्यकता मात्रा को प्रभावित करने वाले तत्वों में दूसरा महत्वपूर्ण तत्व यह है कि निर्माण अवधि कितनी है और निर्माण होने और बिक्री होने के बीच का अवधि अन्तराल कितना है ? यदि संस्था की निर्माण अवधि काफी अधिक है तो कच्चा माल खरीदने के लिए श्रम व अन्य खर्चो के भुगतान के लिए संस्था बाध्य हो जायेगी और उसे अधिक समय तक प्रतीक्षा करनी पड़ेगी जब तक कि माल तैयार होकर बिक्री के लिए उपलब्ध न हो जाय। ऐसी स्थिति में पूंजी का एक यथेष्ट भाग निर्माण कार्य में बंधित हो जायेगा। इस अवधि में बिक्री न होने से सभी प्रकार के भुगतानों के लिए अलग से कार्यशील पूंजी की आवश्यकता पड़ती है। यही नहीं लम्बी अवधि की दशा में कीमत परिवर्तन की भी संभावना होती है और यह भय बना रहता है कि अनुमानित लाभ कम या नगण्य न हो जाय। ऐसी स्थिति में कार्यशील पूंजी की मात्रा अधिक रूप में आवश्यक होती है ताकि कठिनाईयों को झेला जा सके।

यही नहीं निर्माण व विक्रय के बीच की अवधि का अन्तराल जितना ही अधिक होगा उतनी ही अधिक कार्यशील पूंजी की आवश्यकता होगी। निर्माण व बिक्री का अन्तराल अधिक होने के कारण संस्था में फण्ड का बहाव सहज, तुरन्त, नियमित व समय से नहीं हो पाता है और इसलिए निर्माण व स्कन्ध संग्रहण सम्बन्धी खर्चो को पूरा करने के लिए अधिक कार्यशील पूंजी की आवश्यकता पड़ती है।

(3) विक्रय की कुल मात्रा व कार्यशील पूंजी का आवर्त :– संस्था की बिक्री की कुल मात्रा जितनी अधिक होगी, क्योंकि अधिक मात्रा की रकम से संस्था अपने दिन प्रतिदिन के भुगतानों का आयोजन कर सकती है परन्तु विक्रय की गति का भी कार्यशील पूंजी पर प्रभाव पड़ता है। यदि बिक्री सहज व नियमित है तो कार्यशील पूंजी की आवश्यकता अपेक्षाकृत कम होगी। अनियमित बिक्री की दशा में कार्यशील पूंजी की मात्रा अधिक होगी। बिक्री मात्रा बढ़ाने की नीति, विशेष बिक्री अभियान पर होने वाला खर्च कीमत में परिवर्तन व साख–नीति, आदि का भी कार्यशील पूंजी पर प्रभाव पड़ता है। कार्यशील पूंजी की आवर्त की गति का कितनी बार व्यापार में प्रवेश किया गया है। यह आवर्त बतलाता है कि चालू सम्पतियों में विनियोजित पूंजी का

कितनी बार व्यापार में प्रयोग किया गया है आवर्त जितना ही अधिक होता है, पूंजी की उसी मात्रा में व्यवसाय की अधिक मात्रा का व्यापार किया जा सकता है।

(4) क्रय व विक्रय की शर्तें (साख–नीति) यदि संस्था माल का नकद क्रय करती है परन्तु माल को उधार बेचती है तो उसे कम–से–कम इंतनी पूंजी की आवश्यकता पड़ेगी कि जो कुछ बेचा गया है और जिसका भुगतान नहीं मिला है उसे नकद रूप में खरीदा जा सके। दूसरी तरफ, यदि संस्था माल का क्रय उधार करती है और नकद रूप में बेचती है तो विक्रय हेतु स्कन्ध बिना पूंजी के ही प्राप्त या जमा कर सकेगी और समय–समय पर नकद बिक्री से प्राप्त धन में से उधार क्रय का भुगतान कर सकेगी परन्तु व्यवहार में ये दोनों स्थितियां काल्पनिक होती है और पायी नहीं जाती हैं। वस्तुतः माल का क्रय–विक्रय अंशतः नकद और अंशतः उधार दोनों रूपों में होता है इसके विपरित, उधार क्रय की अवधि जितनी अधिक होगी, कार्यशील पूंजी की आवश्यकता भी उतनी ही कम होगी।

(5) चालू सम्पतियों की तरलता :– संस्था के पास जितनी ही अधिक तरल सम्पतियां होगी उसे उतनी ही कम पूंजी की आवश्यकता होगी। तरल सम्पतियों में केवल उन्हीं सम्पतियों को शामिल करते है जिन्हें तुरन्त नकद धन में परिवर्तित किया जा सकता है। इसलिए यह कहा जाता है कि चालू सम्पतियों का मूल्य चालू दायित्वों से अधिक होना चाहिए। तरल सम्पतियों की आवश्यकता अनुमान लगाते समय विभिन्न प्रकार की सम्पतियों के मिश्रण का विधिवत विश्लेषण करना आवश्यक होती है। इसके विपरीत उधार क्रय की अवधि जितनी अधिक होगी, कार्यशील पूंजी की आवश्यकता भी उतनी ही कम होगी।

(5) चालू सम्पतियों की तरलता :– संसथा के पास जितनी ही अधिक तरल सम्पतियां होगी उसे उतनी ही कम पूंजी की आवश्यकता होगी। तरल सम्पतियों में केवल उनहीँ सम्पतियों को शामिल करते हैं जिन्हें तुरन्त नकद धन में परिवर्तित किया जा सकता है। इसलिए यह कहा जाता है कि चालू सम्पतियों का मूल्य चालू दायित्वों से अधिक होना चाहिए। तरल सम्पतियों की आवश्यकता अनुमान लगाते समय विभिन्न प्रकार की सम्पतियों के मिश्रण का विधिवत विश्लेषण करना आवश्यक होता है। तरलता का अनुमान लगाने के लिए मुख्य्य रूप से निम्न सम्पतियों का विश्लेषण महत्वपूर्ण होता है।

(अ) रोकड़ स्थिति :– यह तो सर्वविदित है कि व्यावसायिक संस्था द्वारा संभावित प्रत्येक क्रिया से रोकड़ स्थिति प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित होती है। इसलिए व्यवसाय के प्रबन्ध के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि वह संस्था के लिए इच्छित

रोकड़ बजट का प्रबन्ध किया जाना चाहिए। ध्यान में रखना होगा कि रोकड़ अपने आप में एक अप्रभावशाली एवं अनुत्पादक सम्पति है और आवश्यकता से अधिक रोकड़ की विद्यमानता संस्था की लाभदायकता को कमजोर कर सकती है। यदि संस्था में रोकड़ का बहाव नियमित और सहज है तो कम मात्रा में रोकड़ की जरूरत पड़ती है। रोकड़ स्थिति का विश्लेषण करते समय आन्तरिक कारक जैसे कर भुगतान, लाभांश नीति, छूट नीति, लागत कमी प्रोग्राम, कीमत परिवर्तन, आदि का भी सतकर्ततापूर्वक अवलोकन व व्यवस्था की जानी चाहिए।

(ब) देनदारों की स्थिति :– तरल सम्पतियों की श्रेणी में देनदारों एवं प्राप्य बिलों का दूसरा स्थान है। अतः इनका भी विधिवत् विश्लेषण करके पता लगाना चाहिए कि कुल उधार बिक्री का कितनी भाग बकाया रह जाता है, देनदारों से औसतन कितनी अवधि के बाद रूपया वसूल हो पाता है कितनी मात्रा में देनदार अशोध्य ऋण के रूप में परिवर्तित हो जाते है इत्यादि इन सभी का प्रभाव देनदारों की स्थिति पर पड़ता है जो अन्तिम अवस्था में कार्यशील पूंजी को भी प्रभावित करता है।

(स) स्कन्ध स्थिति :– प्रत्येक व्यावसायिक संस्था को व्यापार संचालन हेतु कच्चे माल का या तैयार काल का स्कन्ध रखना पड़ता है। स्कन्ध में तरलता का अभाव रहता है। अतः इससमें लगायी पूंजी कुछ समय के लिए बंधित हो जाती है। स्कन्ध की स्थिति कई कारकों से प्रभावित होती है। स्कन्ध स्तर की अधिकतम एवं न्यूनतम सीमाएं बिक्री का आवर्त निर्माण अवधि व बिक्री एवं निर्माण अवधि का अन्तराल, आदि कारक सम्बन्ध स्थिति को प्रभावित करते हैं।

(6) व्यवसाय में मौसमी परिवर्तन :– कुछ संस्थाए ऐसी होती हैं जिनका व्यापार संचालन मौसमी प्रकृति का होता है अर्थात एक मौसम से दूसरे मौसम में व्यवसाय की प्रकृति या मात्रा में परिवर्तनों से ये संस्थाएं प्रभावित होती रहती है ऐसी संस्थाओं के यहां मौसम में व्यापार संचालन हेतु कच्चा माल अधिक मात्रा में क्रय करना पड़ता है और साथ ही सभी मौसम की मांग को पूरा करने के लिए तैयार माल का स्कन्ध पर्याप्त मात्रा में रखना पड़ता है। दोनों दशाओं में स्पष्टतः अधिक पूंजी चालू सम्पतियों में लगानी पड़ती है और इस प्रकार इन संस्थाओं में कार्यशील पूंजी की अधिक आवश्यकता पड़ती है।

उपरोक्त कारक जो कार्यशील पूंजी को प्रभावित करते है और इसलिए कार्यशील पूंजी का अनुमान लगाते समय इन्हें ध्यान में रखना आवश्यक होता है। परन्तु इन कारकों से भी अधिक महत्वपूर्ण कारक प्रबन्ध की योग्यता व क्षमता है जो कार्यशील पूंजी को पर्याप्त सीमा तक प्रभावित करती है। उपर्युक्त कारकों के प्रति

प्रबन्ध का दृष्टिकोण कारकों की प्रकृति की तुलना में अधिक महत्वपूर्ण होता है जोखिम उठाने की क्षमता, पूंजी संरचना का लचीलापन, लाभांश नीति, पूंजी का उचित स्रोत व क्रय विक्रय सम्बन्धी साख नीति, आदि ऐसे क्षेत्र है जिनमें दक्ष प्रबन्ध अपनी कुशलता का परिचय देकर कार्यशील पूंजी की आवश्यकता को अनुकूलतम एवं लाभदायी बनाये रख सकता है।

## कार्यशील पूंजी के पूर्वानुमान की तकनीकियां

किसी भी आगामी अवधि के लिए कार्यशील पूंजी की मात्रा का पूर्वानुमान लगाने के लिए निम्न में से कोई भी तकनीक प्रयोग में लायी जा सकती है।

(1) संचालन चक्र रीति

(2) चालू सम्पतियों एवं चालू दायित्वों का पूर्वानुमान रीति

(3) रोकड़ पूर्वानुमान रीति

(4) प्रक्षेपी आर्थिक चिट्ठा रीति

(5) लाभ–हानि समायोजन रीति

(1) संचालन चक्र रीति :– रोकड़– कच्चा माल–निर्मित माल–देनदार व प्राप्त बिल–नकद' यही संचालन चक्र होता है। एक संचालन चक्र की अवधि संचालन की विभिन्न अवस्थाओं की अवधि में आपूर्तिदाता द्वारा स्वीकृत अवधि का समायोजन करके ज्ञात की जाती है। संचालन चक्र रीति से किसी संस्था की भावी कार्यशील पूंजी का पूर्वानुमान लगाने के लिए एक अवधि के संचालन व्ययों में उसी अवधि के संचालन चक्रों की संख्या से भाग दिया जाता है इस रीति के प्रयोग हेतु निम्न की गणना आवश्यक होती है।

(क) संचालन व्यय– किसी अवधि के कुल संचालन व्यय में उस अवधि में (गैर नकद खर्चो को छोड़कर) किये गये सामग्री क्रय, निर्माणी व्यय, प्रशासनिक व्यय, विक्रय व वितरण व्यय, आदि को शामिल करते है। यह जरूरी है कि इन व्ययों की रकम का अनुमान लगाते समय उत्पाद मिश्रण में परिवर्तन, नवीन उत्पाद का प्रारम्भ

पुराने उत्पाद का परित्याग, मूल्य स्तर में परिवर्तन आदि से उत्पन्न परिवर्तनों का समायोजन कर लिया जाय।

(ख) संचालन चक्र की अवधि– संचालन चक्र की अवधि से तात्पर्य संचालन की विभिन्न अवस्थाओं की अवधि के योग में से आपूर्तिदाताओं द्वारा प्रदत अवधि के घटाने के बाद बची हुई अवधि से होता है। संचालन की विभिन्न अवस्थाओं की अवधि की गणना विधि इस प्रकार है :–

(1) सामग्री संग्रहण अवधि (दिनों में) उत्पादन हेतु निर्गमन से पूर्व जितने दिन सामग्री को स्टोर में रखना पड़ता है उसे ही सामग्री स्रंहण अवधि कहते हैं इसकी गणना के लिए निम्न सूत्र का प्रयोग किया जाता है

चालू सम्पत्तियों एवं चालू दायित्वों का पूर्वानुमान रीति– इस रीति के अन्तर्गत हम आगामी अवधि में होने वाले लेन–देनों के आधार पर चालू सम्पतियों का रोकड़ लागत पर अनुमान लगाते हैं और इसी प्रकार चालू दायित्वों का भी अनुमान लगा लेते हैं। चालू सम्पतियों में से चालू दायित्वों को घटा देने पर कार्यशील पूंजी की मात्रा ज्ञात हो जाती है। यदि कार्यशील पूंजी का अर्थ चालू सम्पतियों से लगाया गया हो तो चालू सम्पतियों के अनुमानित मूल्य को ही कार्यशील पूंजी मान लिया जाता है। गत अनुभव, सरल, नीति, आदि के आधार पर विभिन्न चालू सम्पतियों एवं दायित्वों का अनुमान लगाया जाता है।

रोकड़ पूर्वानुमान रीति– इस रीति के अन्तर्गत आगामी अवधि में होने वाली प्राप्तियों एवं भुगतानों का अनुमान लगाया जाता है और अन्तर की रकम रोकड़ आधिक्य या कमी को दर्शाती है कमी की रकम का कहीं–न कहीं से अर्थ प्रबन्धन करना पड़ता है। वस्तुतः यह रीति रोकड़ बजट का ही रूप होती है।

प्रक्षेपी आर्थिक चिट्ठा रीति – इस रीति के अन्तर्गत अवधि में होने वाले लेन–देनों को ध्यान में रखते हुए विभिन्न प्रकार की सम्पतियों एवं दायित्वों का अनुमान लगा लिया जाता है। यह अनुमान दी गयी सूचनाओं के आधार पर किया जाता है। सम्पतियों एवं दायित्वों के अन्तर को कार्यशील पूंजी के रूप में लिया जाता है। पूर्वानुमानित सम्पतियों एवं दायित्वों के आधार पर एक आर्थिक चिट्ठा बना लिया जाता है जिसे प्रक्षेपी चिट्ठा कहते हैं।

**लाभ हानि समायोजन रीति– इस रीति के अन्तर्गत आगामी अवधि में होने वाले लेन–देनों के आधार पर अनुमानित लाभ की गणना कर ली जाती है इस अनुमानित लाभ में से रोकड़ आगमन व रोकड़ बहिर्गमन का समायोजन करके कार्यशील पूंजी की मात्रा ज्ञात कर ली जाती है वस्तुतः यह विधि लाभ को रोकड़ आधार पर परिवर्तित करती है।**

व्यावसायिक बजट तथा बजटिंग

## (Business Budget and Budgeting)

किसी भी व्यावसायिक संस्था की लाभदायकता व षोध्यक्षमता बनाये रखने के लिए उसके प्रबन्ध को भावी वित्तीय आवष्यकताओं के सम्बन्ध में योजना बनानी होती है। भावी वितीय आवष्यकताओं से सम्बन्धित में योजना बनाने की विधि को ही बजटिंग कहते हैं और योजना को आपैचारिक ढंग से लिखित रूप में प्रस्तुत करने पर 'बजट' कहते हैं। वस्तुतः (व्यावसायिक परिस्थितियों के सम्बन्ध में प्रयोग करने पर) बजटिंग का अर्थ बजट योजना व तैयारी, बजटरी कण्ट्रोल व अन्य सम्बन्धित विधियों से होता है। बजटिंग वास्तव मं एक प्रबन्धकीय विधि है और एक व्यापारिक बजट ऐसी लिखित योजना है, जिसमें भविश्य की एक निष्चित अवधि के सम्बन्ध में व्यवसाय संचालन के सभी पहलुओं को षामिल किया जाता है। यह किसी संस्था के उच्चस्तरीय प्रबन्ध द्वारा भविश्य में अपनायी गयी नीति, योजना, उदेष्य और गन्तव्य का औपचारिक कथन मात्र है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि बजट एक औजार है, जो प्रबन्ध द्वारा भावी क्रियाओं के सम्बन्ध में योजना बनाने के लिए प्रयोग किया जाता है। यह एक साधन है जिसके आधार पर प्रबन्ध एक निष्चित अवधि के लिए (मासिक,त्रैमासिक, अर्धवार्षिक, वार्षिक, पंचवर्षीय) अपने क्रियाकलाप का नियोजन करता है। इसके अन्तर्गत विक्रय, उत्पादन और किये जाने वाले खर्चों का पूर्वानुमान षामिल होता है। साथ ही उस अवधि की आवष्यकताओं –कार्यषील पूंजी, भवन, मषीन, सामग्री तथा श्रम, आदि को भी ध्यान में रखा जाता है। हेरी एल, विल के षब्दों में ,''बजट निर्मित उत्पाद हैं– वे भावी संचालन क्रियाओं व अनुमानित परिणामों के औपचारिक प्रोग्राम होते हैं। बजट वास्तव में भावी दूरदर्षिता व योजना के परिणाम होते हैं।'' बारटीजल ने बजट को इस प्रकार परिभाषित किया है,'' किसी व्यावसायिक संस्था की उच्चतम दक्षता स्तर पर निर्धारित संचालन क्रियाओं के अधिकृत योजना से सम्बन्धित विस्तृत पूर्वानुमान को बजट कहते हैं। इस परिभाषा में प्रयुक्त उच्चतम दक्षता स्तर क्या होना चाहिए, यह एक प्रबन्ध नीति का विषय है परन्तु एक पूर्वानुमान कभी भी बजट के रूप में नहीं माना जा सकता है, जब विह इस बात से सम्बन्धित नहीं है कि बदलती हुई अवस्थाओं के साथ उसे भी सुधारा या परिवर्तित किया जा सकता है।

बजट की परिभाषा

व्यावसायिक परिणामों में स्थिरता लाने के उदेष्य से व्यवसाय की किसी निष्चित अवधि की भावी दषाओं का वित्तीय/षब्दों में बुद्धिमतापूर्ण 'बजट' कहलाता है। सामान्यता यह एक वर्ष के लिए तैयार किया जाता है। सी.आई.एम.ए.लन्दन के अनुसार,''बजट एक वित्तीय और अथवा संख्यात्मक विवरण होता है जो किसी नियत अवधि के पूर्व तैयार किया जाता है तथा जिसमें एक दिये गये उदेष्य की प्राप्ति के लिए उस अवधि के अन्तर्गत अनुकरण की जाने वाली नीति का उल्लेख होता है।''

मैसर्ज ब्राउन और हावर्ड के ष्शब्दों में,'' बजट एक दी हुई अवधि की प्रबन्ध नीति का एक पूर्व निर्धारित विवरण होता है जो वास्तविक परिणामों से तुलना करने के लिए एक प्रमाप प्रदान करता है।

हेरी एल बिली के षब्दों में,'' बजट निर्मित उत्पाद होते है– वे भावी संचालन क्रियाओं व अनुमानित परिणामों के औपचारिक कार्यक्रम होते है। बजट भावी दूरदर्षिता व नियोजन के परिणाम होते हैं।

बारटीजल के शब्दों में, '' व्यावसायिक संस्था की संचालन कुषलता की उच्चत युक्तिसंगत प्रत्याकाँक्षा पर आधारित अधिकृत तौर पर स्वीकृत संचालन क्रियाओं के कार्यक्रम के परिणामों का एक विस्तृत पूर्वानुमान बजट कहलाता है।

उपर्युक्त परिभाशाओं से स्पष्ट है कि बजट भावी व्यावसायिक क्रियाओं का एक संख्यात्मक पूर्वानुमान होता है यह व्यवसाय के वर्तमान क्रियाओं का एक संख्यात्मक पूर्वानुमान होता है। विस्तृत कार्य योजना होता है। यह सर्वोच्च प्रबन्ध की नीतियों योजनाओं तथा उदेष्यों की औपचारिक अभिव्यक्ति है। इससे प्रबन्ध की नीतियों का पता लगता है। साथ ही यह एक ऐसा प्रमाप प्रदान करता है जिससे व्यवसाय के कर्मचारियों विभागों आदि की वास्तविक सफलताओं को मापा जाता है। इसके अतिरिक्त यह प्रबन्ध संवहन का श्रेष्ठ साधन भी है।

बजटन की परिभाषा

बजटन षब्द बजट बनाने की क्रिया की ओर संकेत करता है। अतः व्यवसाय की भावी वितीय क्रियाओं के सम्बन्ध में योजना बनाने की विधि बजटन कहलाती है। जी.आर.क्राउनंषील्ड के षब्दों में,'' भावी क्रिया के लिए योजनाओं का बनाना बजटन है। यह अटकलपूर्ण निश्पादनों को सावधानी पूर्वक तैयार किये गये उदेष्यों से प्रतिस्थापित करता है और नियोजित प्राप्तियों से विचलनों के माप के लिए प्रामाणिक माप प्रदान करता है।

अतः स्पश्ट है कि बजटन का आषय बजट बनाने की विधि से है। इसमें बजट योजना व तैयारी, बजटरी नियंत्रण व अन्य सम्बन्धित क्रियायें सम्मिलित है। इसमें संख्यात्मक और वितीय विवरणों की पहले से ही तैयारी की जाती है। इससे व्यवसाय के विभिन्न पहलुओं के सम्बन्ध में प्रबन्ध के इरादों का पता लगता है साथ ही यह प्रबन्ध को कर्मचारियों की क्रियाओं पर नियंत्रण का एक अस्त्र प्रदान करता है।

बजट की प्रकृति

उपयुक्त विवेचना से विदित होता है कि बजट का जन्म सम्पूर्ण व्यवसाय के लिए निर्धारित उदेष्य के अनुसार योजना चलाने के लिए पूर्व निष्चित प्रमापों से होता है। वास्तव में बजट की प्रकृति अग्र प्रकार की होती है।

(1) बजट भावी क्रिया योजना पर आधारित होता है और अग्रिम रूप में तैयार किया जाता है।

(2) एक निष्चित भावी अवधि में प्राप्त उदेष्यों के आधार पर बजट तैयार किया जाता है।

(3) बजट विवेकीकरण की एक विधि है जिसके आधार पर सम्पूर्ण व्यावसासियक जीवन के सम्बन्ध में अनुपात व नियंत्रण की क्रिया सम्पादित की जाती है।

(4) बजट सहकारिता, समन्वय व नियन्त्रण के विकास व संवर्द्धन का औजार मात्र है।

(5) बजट एक प्रकार का विवरण विषिष्ट प्रारूप होता है जिसमें बिक्री अनुमान व प्रबन्ध की योजना को संख्यात्मक रूप में व्यक्त किया जाता है ताकि उन्हें प्रबन्धकीय प्रयोग में सरलतापूर्वक लाया जा सके।

## बजटन के सिद्धान्त

**राबर्ट एन्थोनी** के अनुसार बजटन के प्रमुख सिद्धान्त निम्नलिखित है।

(1) **प्रबन्ध द्वारा प्रवर्तित होना** : बजट एक प्रबन्ध–यंत्र है। अतः यह प्रबंध द्वारा प्रवर्तित होना चाहिये। संस्था के सभी कर्मचारियों को यह आभास रहे कि सर्वोच्च प्रबन्ध बजटन को महत्वपूर्ण समझता है तथा बजट की तैयारी में रुचि लेता है।

(2) **उत्तरदायित्व केन्द्रों तथा नियन्त्रणीय लागतों का निष्चयन** : बजट का प्रत्येक भाग किसी न किसी उत्तरदायित्व केन्द्र से सम्बन्धित होना चाहिये। विभिन्न उत्तरदायित्व केन्द्रों पर दायित्वों का निष्चयन स्पष्ट होना चाहिये तथा प्रत्येक उत्तरदायित्व केन्द्र पर नियन्त्रणीय लागतों को स्पष्ट कर देना चाहिए। बजटन की दृष्टि से अधिकार एवं उत्तरदायित्व के क्षेत्रों का निष्चित होना बहुत आवश्यक है। प्रत्येक अध्किारी को यह पता होना चाहिये कि उसके क्या अधिकार है तथा वह किन कार्यों के लिए उत्तरदायी ठहराया जायेगा। अधिकार क्षेत्रों को स्पष्ट कर देने से एक अधिकारी द्वारा दूसरे अधिकारी के कार्यों में दखल देने की सम्भावनायें कम हो जाती है। इसी तरह उत्तरदायित्वों के निष्चित कर देने से प्रबन्ध का व्यावसायिक क्रियाओं पर नियन्त्रण प्रभावपूर्ण हो जाता है तथा प्रत्येक कार्य के लिए किसी न किसी व्यक्ति को उत्तरदायी ठहराया जा सकता है।

(3) उत्तरदायी पर्यवेक्षकों द्वारा सहभागिता : बजट के तैयार करने, उत्तरदायित्व के निश्चयन तथा वास्तविक परिणामों पर विचार–विमर्श करते समय उत्तरदायी पर्यवेक्षकों को भी आमन्त्रित किया जाये तथा उन्हें बजट प्रक्रिया से भली–भांति अवगत कराया जाये।

ऐसा न करने पर वे बजट–आंकड़ों का विरोध करने लगते हैं तथा उन्हें पूरा करने में रुचि नहीं लेते।

(4) बजट प्रणाली की शिक्षा : उत्तरदायी पर्यवेक्षकों को बजट प्रणाली का यथेष्ट ज्ञान होना आवश्यक है। बजट शिक्षा में अधिकारियों को बजट प्रणाली के उपयोग व इसकी सीमाओं से अवगत करा देना चाहिए। इसके लिए बजट पुस्तिकाओं और अन्य लिखित सामग्री का प्रयोग किया जा सकता है। इसके लिये सभाओं या गोष्ठियों का आयोजन भी पर्याप्त प्रभावशाली होता है। इन सभाओं में कर्मचारियों को बजट–प्रक्रिया के सम्बन्ध में आवश्यक जानकारी दी जा सकती है। उत्तरदायी पर्यवेक्षकों द्वारा सहभागिता बजट–प्रणाली की शिक्षा प्रदान करने का सर्वाधिक प्रभावशाली तरीका है।

(5) बजट अवधि : बजट अवधि व्यवसाय की प्रकृति के अनुसार होनी चाहिये। सामान्यतः बजट एक वर्ष के लिए तैयार किये जाते हैं परन्तु कुछ व्यवसायों में छमाही तथा तिमाही बजट तैयार करना आवश्यक हो सकता है। इसी तरह कुछ व्यवसायों के परिणाम दीर्घकाल में स्पष्ट होते हैं। अतः इनके लिए दीर्घकालीन बजट (1 वर्ष से अधिक अवधि के बजट) बनाये जाते हैं। नियन्त्रण के उद्देश्य से बजट अविध को लघु अवधियों में विभाजित कर दिया जाता है। इन अवधियों को नियन्त्रण–अवधि कहते हैं। व्यवसाय की प्रकृति तथा प्रत्येक उत्तरदायित्व केन्द्र की विशिष्टताओं को ध्यान में रखते हुए नियन्त्रण–अवधि कलेण्डर माह या 4 सप्ताहों का माह या अन्य कोई और हो सकती है।

(6) बजट व लेखांकन शब्दावली में एकरूपता : बजट तथा वित्तीय लेखा–विधि (जिससे वास्तविक निष्पादन के अंक मालूम किये जाते हैं) में प्रयोग किये जाने वाले शब्द समानार्थक होने चाहियें। उदाहरण के लिए, बजट में प्रयुक्त प्रत्यक्ष श्रम–व्ययों में यदि छुट्टियों का वेतन, सामाजिक सुरक्षा पर व्यय, सेवा–निवृत्ति भत्ता तथा अन्य सहलाभ सम्मिलित किये गये हों तो वित्तीय लेखांकन के अन्तर्गत अभिलिखित प्रत्येक्ष श्रम–व्ययों में इन्हीं तत्वों का समावेश किया जाये। इससे वास्तविक निष्पादन की बजट के अकों से सही तुलना सम्भव होती है। इसके लिए लेखों का विधिवत् वर्गीकरण आवश्यक है। इसके साथ–साथ वास्तविक निष्पादन और बजट के अंकों के लिए समान मापदण्ड ही अपनाया जाये।

(7) समुचित प्राप्य लक्ष्य : बजट के लक्ष्य ऐसे होने चाहियें जिन्हें उचित प्रयासों से प्राप्त किया जा सके। यदि लक्ष्य अधिक ऊंचे या अप्राप्य है तो इससे कर्मचारी हतोत्साहित होते हैं। इसी तरह यदि अधिक नीचे या सरलता से प्राप्य लक्ष्य रखे जाते हैं तो कर्मचारियों के प्रयासों में शिथिलता आ सकती है। उनकी उत्पादन क्षमता घट जाती है

(8) महत्वपूर्ण अपवाद : बजटरी नियन्त्रण में 'अपवाद के सिद्धान्त' का पालन किया जाता है। वास्तविक तथा बजटीय निष्पादनों की तुलना करने पर प्राप्त विचलनों में से केवल महत्वपूर्ण विचलनों पर ही ध्यान केन्द्रित किया जाता है।

(9) बजट लागत : बजट प्रणाली पर किया गया व्यय इससे प्राप्त उपयोगिता से अधिक नहीं होना चाहिये। अतः बजट प्रणाली में व्यवसाय के आकार के अनुसार ही विस्तार करना चाहिये।

(10) सहायक और मूल कार्यों में स्पष्ट भेद : बजट तैयार करने में सहायक और मूल अधिकारियों के कार्यों में स्पष्ट भेद किया जाना चाहिये।

(11) बजट अनुमानों पर पुनर्विचार : बजट के अनुमानों पर क्रमागत उच्चतर प्रबन्ध द्वारा पर्याप्त पुनर्विचार किया जाना चाहिये। पुनर्विचार में लापरवाही करने से कर्मचारियों में बजटन का प्रभाव घट जाता है।

(12) अनुमोदन : बजटन पर अन्तिम अनुमोदन विशिष्ट रूप से होना चाहिये तथा अनुमोदित बजट की सूचना यथाशीघ्र सभी अधिकारियों को दे देनी चाहिये। मौन के आधार पर अनुमोदन प्राप्त करने से भविष्य में गलत–फहमी होने का भय रहता है।

उपर्युक्त के अतिरिकत बजटन में लोच रहनी चाहिए जिससे कि भविष्य की बदलती हुई परिस्थितियों में बजट के कार्यक्रम में आवश्यक परिवर्तन किये जा सकें।

बजट का निर्माण

भिन्न–भिन्न व्यवसायों के लिए बजट तैयार करने की विधियाँ अलग–अलग होती है। फिर भी बजट–निर्माण की एक सामान्य रूपरेखा निर्धारित की जा सकती है। बजट–निर्माण में निम्न कदम उठाये जा सकते हैं:

(1) नीति–निर्माणः बजट–निर्माण की आधारशिला व्यावसायिक नीतियां होती है। अतः बजट बनाते समय सबसे पहले व्यवसाय को विभिन्न क्रियाओं के सम्बन्ध में नीतियां निर्धारित करनी पड़ती हैं। ये नीतियां अधिकाशतः दीर्घकालीन योजनाएं होती हैं, जो विक्रय, उत्पादन, सकन्ध लागकत, पूंजी खर्चे व रोकड़, आदि से सम्बन्धित होती हैं। इस प्रकार की नीतियां अलग–अलग व्यवसायों में अलग–अलग होती हैं और बहुत सीमा तक प्रबन्ध की कुशलता पर निर्भर करती है। वास्तव में यह कार्य प्रबन्ध का है न कि बजट समिति का।

(2) पूर्वानुमान की तैयारी : नीति निर्धारित करने के बाद, व्यवसाय की विभिन्न क्रियाओं के सम्बन्ध में पूर्वानुमान लगाये जाते हैं। इन व्यावसायिक पूर्वानुमानों में निम्न क्रियाओं से सम्बन्धित पूर्वानुमानों को शामिल करते हैं:

(अ) विक्रय पूर्वानुमान — (य) नकद धन

(ब) उत्पादन — (र) साख (देनदार व लेनदार)

(स) स्कन्ध — (ल) क्रय

(द) लागत — (व) पूंजीगत खर्च

(i) उत्पादन

(ii) विक्रय–वितरण

(iii) प्रशासन

(iv) अनुसन्धान व विकास

ये पूर्वानुमान केवल सम्भावना–मात्र होते हैं। इनकी तैयारी में अनेक विधियों का प्रयोग किया जा सकता है

(3) पूर्वानुमानों के वैकल्पिक संयोग की तुलना : पूर्वानुमान लगाने के बाद उनके वैकल्पिक संयोग की तुलना की जाती है। यह देखा जाता है कि किस पूर्वानुमान की सहायत से अधिकतम लाभ प्राप्त किया जा सकता है। और साथ ही दीर्घकालीन वित्तीय स्थिरता भी बनाये रखी जा सकती है। अगर कोई मुख्य बजट कारक या ऐसा कारक है जो पूर्वानुमान को प्रापत करने में बाधक हो सकता है, तो उसे दूर करने के उपाय के बारे में विचार किया जाता है। ऐसा करने के बाद जो सबसे अधिक लाभप्रद पूर्वानुमान होते हैं, उन्हें प्रयोग में लिया जाता है।

(4) बजट का निर्माण : उपर्युक्त विधियों द्वारा जो पूर्वानुमान तैयार किये जाते हैं, उनको लिखित रूप में प्रस्तुत करने पर बजट तैयार हो जाता है। इन बजटों का प्रारूप क्या होता है, जिसे आगे समझाया गया है।

बजट समन्वय

वर्तमान काल में प्रत्येक व्यावसायिक संस्था का कार्य बड़े पैमाने पर किया जाता है और व्यावसायिक क्रियाओं को कई उपक्रियाओं में बांटकर अलग–अलग निश्चित विभाग बना दिये जाते हैं; जैसे– क्रय विभाग, निर्माण विभाग, विक्रय विभाग, श्रम विभाग इत्यादि। व्यवसाय के सफल संचालन इन सभी विभागों में घनिष्ठतम सहयोग व सम्पर्क होना नितान्त आवश्यक है। उदाहरण के लिए, यदि विक्रय विभाग यह चाहता है कि विक्रय की मात्रा अधिकतम हो तो बिना निर्माण विभाग के सहयोग के उसकी इच्छा पूरी नहीं हो सकती। जब तक निर्माणी विभाग उत्पादन नहीं बढ़ायेगा, विक्रय में वृद्धि नहीं हो सकती है। परन्तु निर्माणी विभाग उत्पादन तथा बढ़ा सकता है, जब उसे वित्त विभाग, क्रय विभाग व श्रम विभाग से सहयोग मिले। इस प्रकार हम देखते हैं कि व्यवसाय का कोई भी विभाग स्वतंत्र नहीं हैं। सभी एक रथ के पहिये हैं और जब तक उनमें सहयोग की भावना नहीं होगी, तब तक व्यवसाय का संचालन ठीक नहीं होगा।

बजट के निर्माण में ठीक यही बात लागू होती है। प्रत्येक विभागाधिकारी अपने विभाग से सम्बन्धित बजट तैयार करता है। परन्तु उसका बजट उस समय तक शुद्ध व उचित नहीं हो सकता जब तक सभी विभागाधिकारी आपस में मिल–जुलकर कार्य न करें और आवश्यक सूचनाओं एवं आंकड़ों का आदान–प्रदान न करें। वास्तव में, बजट का एक प्रधान उद्देश्य ही

यह होता है कि व्यवसाय के सभी विभागों के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित किया जाये। बजट का निर्माण नियोजन का एक सघन है और इसके निर्माण में सभी विभागों के सहयोग की आवश्यकता पड़ती है। चूंकि बजट सहकारी प्रयासों का प्रतिफल होता है, अतः इसके विभिन्न अंगों में सन्तुलन होना आवश्यक होता है। यदि उनमें संतुलन नहीं है तो वे लाभदायक नहीं होंगे। उदाहरण के लिए, यदि किसी संस्था के विक्रय विभाग के पास बड़ी संख्या में आदेश आते हैं और विक्रय विभाग उनके आधार पर बजट तैयार करता है तो वह विक्रय बजट तब तक सफल नहीं हो सकता जब तक कि इन आदेशों के लिए पर्याप्त माल उसके पास न हो अर्थात् बजट का प्रभाव विक्रय बजट पर भी पड़ता है। अगर इन दोनों में समन्वय नहीं है, तो बजट असफल होगा। इसी प्रकार श्रम–पूर्ति व सामग्री–पूर्ति में भी सन्तुलन होना आवश्यक है।

उपर्युक्त विवेचना से यह निष्कर्ष निकलता है कि एक विभागीय बजट बनाना तब तक सम्भव नहीं है जब तक कि व्यवसाय के शेष विभागो के लिए बजट न बनाया जाये अर्थात् बजट–निर्माण में उचित समन्वय की आवश्यकता पड़ती है। यह समन्वय एक बजट अधिकारी के माध्यम से सम्पन्न हो पाता है। यह अधिकारी विभिन्न विभागाधिकारियों का एक संयुक्त सम्मेलन आयोजित करता है, जिसमें प्रत्येक विभागाधिकारी अपने विभागों को विवेकपूर्ण तर्कों को प्रस्तुत करता है। ब्रूएर व लजारस के शब्दों में, ''बजट–निर्माण एक व्यवसाय के विभिन्न विभागों की योजनाओं को समन्वित करता है तथा यह समन्वय विभिन्न विभागाधिकारियों के मध्य परामर्श द्वारा सम्भव होता है। ये परामर्श अनुमान पर नहीं, वरन् ठोस तथ्यों के विश्लेषण पर आधारित होते हैं।''

बजटिंग के उद्देश्य

बजटिंग का मुख्य उद्देश्य प्रबन्ध को उसकी मुख्य क्रियाओं, जैसे – नियोजन, नियन्त्रण व समन्वय में सहायता पहुंचाना है। इस तथ्य पर प्रकाश डालते हुए जॉन जी. ग्लोवर और कॉलमैन आई. माजै ने लिखा है कि ''बजट का मुख्य उद्देश्य नियोजन एवं संस्था की क्रियाओं को समय–समय पर नियन्त्रित करने में सहायता देना होता है। यह मुख्यतः संवहन का श्रेष्ठ साधन होता हैं और प्रबन्ध के लिए आवश्यक उपकरण माना जाता है।'' एक बजट विधि प्रकार यह सहायता पहुंचाती है,

(1) बजटिंग और नियोजन : नियोजन में उद्देश्यों का निर्धारण व उनकी प्राप्ति के लिए उचित संगठन का निर्माण शामिल होता है। उद्देश्यों में पूरे व्यवसाय व प्रत्येक उपविभाग के लिए दीर्घकालीन व अल्पकालीन योजनाएं शामिल होती है। नियोजन के बाद यह आवश्यक होता है कि उत्पादन के साधनों का ऐसा संगठन किया जाये ताकि नियोजित प्रतिफल प्राप्त हो सके। बजटिंग के सम्बन्ध में नियोजन का अर्थ ऐसी मदों (जैसे– विक्रय, विज्ञापन, उत्पादन, स्कन्ध, सामग्री की लागत व आवश्यकता, श्रम की लागत व आवश्यकता, खर्चे, अनुसन्धान, पूंजीगत खर्चे, वित्तीय योजना इत्यादि) के सम्बन्ध में बजट बनाने से होता है।

यह कहना आवश्यक नहीं है कि एक सफल व्यावसायिक संस्था के लिए पूर्व–निश्चित उद्देश्य व योजना अपरिहार्य है। संस्था को एक दीर्घकालीन उद्देश्य निश्चित करना पड़ता है अर्थात् यह निश्चित करना पड़ता है कि संस्था उसी उद्योग में हो तो पांच वर्षों के बाद स्थिति

क्या होगी। इस दीर्घकालीन योजना को अल्पकालीन योजना अर्थात् बजट के रूप में लाया जा सकता है। पुनश्चः इस वार्षिक उद्देश्य को और अल्पावधि जैसे – माह, तिमाही या छमाही रूप में बांटा जा सकता है।

परन्तु प्रश्न यह उठता है कि क्य संस्था बिना बजट के योजना नहीं बना सकती है? यह सत्य है कि बहुत–सी संस्थाएं प्रभावशाली योजनाएं बिना औपचारिक बजट के तैयार करती है परन्तु यह प्रमाणित सत्य है कि संक्षिप्त नियोजन में प्रदत्त क्रियाओं से वंचित रहना मानव कमजोरी है। बजट एक ऐसी महत्वपूर्ण विधि है, जो प्रबन्ध के सभी स्तरीय प्रबन्धकों को योजना कार्य के प्रति गम्भीर और सामयिक ध्यान देने के लिए बाध्य करती हैं। यह तथ्य कि योजनाओं और उद्देश्यों को लिखित रूप में सभी लोगों को देखने हेतु प्रस्तुत किया गया है, लोगों का ध्यान सावधानीपूर्वक आकर्षित करता है। बजट के द्वारा नियोजन करने में संस्था के सभी अंग सहकारिता के रूप में आ जाते हैं जो वे नियोजन के प्रति गम्भीरता से सोचने के लिए बाध्य हो जाते हैं। बजट के द्वारा संस्था के अधिकारियों का दृष्टिकोण संकुचित न होकर व्यापक हो जाता है। वे न केवल किसी विभाग के बारे में ही सोचते हैं, बल्कि प्रत्येक कार्य को समस्त व्यवसाय के हित को ध्यान में रखते हुए करते हैं।

(2) बजटिंग तथा समन्वय : समन्वय एक ऐसी विधि है जिसके द्वारा अन्य उपरिव्ययों की उपेक्षा किये बिना, प्रत्येक विभाग सामान्य उद्देश्य की पूर्ति के लिए कार्य करता है और इनके प्रयत्नों में एकता की भावना होती है, संस्था के विभिन्न विभागों में समन्वय की आवश्यकता पड़ती है। इस समन्वय को सफलतापूर्वक रखने के लए बजट का काफी महत्वपूर्ण स्थान होता है। चूंकि बजट का निर्माण करते समय सभी विभागों के उद्देश्य, समस्या व सम्भावना को ध्यान में रखा जाता है और प्रत्येक विभागधिकारी को बजट–निर्माण में सक्रिय भाग लेना पड़ता है, अतः समन्वय के लिए आधारभूत तत्वों का स्थापन हो जाता है। साथ ही समन्वय अधिकांश सीमा तक पर्याप्त संवहन विधि पर निर्भर करता है। यह महत्वपूर्ण होता है कि प्रबन्ध के प्रत्येक सदसया को (ऊपर से लेकर नीचे तक) पूर्ण ज्ञान हो कि योजना क्या है और कैसे, कब और किसके द्वारा यह पूरी की जायेगी। यह कार्य भी बजट द्वारा ही पूरा किया जा सकता है। योजना को बजट के रूप में तैयार करके सभी सदस्यों में बांटा जा सकता है। कहने का तात्पर्य यह है कि बजट संवहन का एक साधन है जो समन्वय के लिए बहुत ही आवश्यक है। समन्वय के आधारभूत तत्वों को स्थापित करने के अलावा, बजट इसे सतत रूप प्रदान करता है, अर्थात् बजट के द्वारा यह भी देखा जा सकता है कि प्रबन्ध के सदस्य सहकारिता के साथ कार्य कर रहे हैं या नहीं।

(3) बजटिंग और नियंत्रण : नियन्त्रण द्वारा यह आश्वासन मिल जाता है कि योजनाओं और उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए ठीक ढंग से क्रियाएं की जा रही है या नहीं। जब नियन्त्रण की क्रिया का बजट से सम्बन्ध स्थापित करते हैं, तो इसे बजटरी कण्ट्रोल कहते हैं। इस रूप में नियन्त्रण का अर्थ ऐसे नियमबद्ध प्रयत्न से होता है, जिसके द्वारा प्रबन्ध को पता चलेगा कैसे कि पूर्व–निर्धारित लक्ष्य, योजना व नीति के अनुसार कार्य हो रहा है या नहीं। नियन्त्रण में मापन की क्रिया निहित होती है और इसके लिए किसी–न–किसी मापदण्ड की आवश्यकता पड़ती है और यह मापदण्ड बजटिंग द्वारा प्रदान किया जाता है। एक बजट कई

प्रकार से नियन्त्रण को सम्भव बनाता है। वास्तविक परिणाम की बजटेड रकम से तुलना करके दोनों के अन्तर का विश्लेष्ण किया जाता है और अन्तर के कारणों की खोज की जाती है। बजट के आधार पर प्रबन्ध न केवल वर्ष के अन्त में बल्कि पूरे वर्ष के दौरान वार्षिक क्रियाओं के फल की जांच कर सकता है और उन पर नियन्त्रण कर सकता है। प्रत्येक समय प्रबन्ध यह ज्ञात कर सकता है कि कहां पर सन्तोषजनक उन्नति हो रही है और कहां पर नहीं। तदनुसार सुधारात्मक कदम भी उठाये जा सकते हैं।

**बजटिंग के लाभ**

प्रबन्ध की नियोजन, समन्वय व नियन्त्रण सम्बन्धी क्रियाओं में सहयोग देना ही बजटिंग का मुख्य उद्देश्य होता है। इन तीनों क्रियाओं के प्रभावशील सम्पादन में सहायता देने के अलावा बजटिंग के कुछ मुय लाभ निम्नलिखित हैः

(1) यह आधारभूत नीतियों को प्रारम्भिक विचार के लिए बाध्य करती है।

(2) यह व्यवसाय की प्रत्येक क्रिया के सम्बन्ध में कर्मचारियों के दायित्व का निर्धारण करती है।

(3) प्रबन्ध के सभी सदस्यों को लक्ष्य निर्धारण में भाग लेने के लिए बाध्य करती है।

(4) व्यवसाय के सभी विभागों में सहकारिता की भावना पैदा करती है।

(5) सन्तोषजनक फल प्राप्त करने के लिए प्रबन्ध को आवश्यक कदम उठाने के लिए बाध्य करती है।

(6) प्रबन्ध को बाध्य करती है कि व्यवसाय में पर्याप्त व शुद्ध भूतकालीन आंकड़े रखे जायें।

(7) श्रम, सामग्री, पूंजी व अन्य साधनों का अधिकतम व मितव्ययिता के साथ प्रयोग करने में सहायक होती है।

(8) किसी निर्णय पर पहुंचने से पूर्व सम्पूर्ण घटकों पर सामयिक व सावधानी के साथ विचार करने की आदत प्रबन्ध के सदस्यों में पैदा करती है।

(9) व्यवसाय के निम्न वर्ग के कर्मचारियों के दिमाग से यह चीज निकल जाती है कि व्यवसाय की नीतियों व योजनाओं के सम्बन्ध में वे उन्हें कोई जानकारी नहीं है इसका फल यह होता है कि उनकी कार्यक्षमता में वृद्धि होती है।

(10) यह व्यवसाय की क्षमता या उसकी कमी पर प्रकाश डालती है और प्रबन्ध के सुधारात्मक कदम उठाने में सहायता पहुंचाती है।

बजटिंग की सीमाएं

बजटिंग के उद्देश्य व लाभों का अध्ययन करने से पता चलता है कि बजटिंग प्रबन्ध के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण औजार है। परन्तु प्रत्येक शास्त्र व ज्ञान की कुछ निजी मर्यादाएं एवं सीमाएं होती हैं और उन सीमाओं के अन्दर ही उनका प्रयोग लाभदायक होता है। बजटिंग भी

सीमा–रहित औजार नहीं है। इसकी कुछ सीमाएं हैं और बजटिंग के प्रयोगकर्ता के लिए आवश्यक है कि वह इन सीमाओं से परिचित हो। बजटिंग की मुख्य सीमाएं अग्र प्रकार हैः

(1) बजट योजना अनुमान पर आधारित होते हैं : बजट की सफलता या असफलता पर्याप्त सीमा तक आधारभूत अनुमानों की शुद्धता पर निर्भर करती है। अतः अनुमानों की संगणना सभी प्राप्त तथ्यों के आधार पर करनी चाहिए। साथ ही यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि चूंकि बजट केवल अनुमान–मात्र होते हैं, अतः उनके आधार पर कोई भी निर्णय उचित विवेचन के बाद ही लेना चाहिए।

(2) बजट योजना ऐसी होनी चाहिए जो बदलती परिस्थितियों में सतत रूप से प्रयोग की जा सकती हो : एक पूर्ण बजट योजना अल्पकाल में ही नहीं बनायी जा सकती। इसके लिए आवश्यक है कि बजट की विधियों को सतत रूप में व्यवसाय में प्रयोग किया जाये और संस्था के अन्तर्गत बदली हुई परिस्थितियों के अनुसार उनमं समायोजन किया जाये। इस क्रिया में विभिन्न विधियों का परीक्षण, उनमें सुधार या अन्य विधियों के द्वारा स्थानापन्न की आवश्यकता होती है। अतः जब तक सफल योजना न अपना ली जाये, व्यवसाय के अन्तर्गत हमेशा बजट शिक्षा की आवश्यकता पड़ सकती है।

(3) बजट योजना का कार्यान्वयन स्वचालित नहीं होता है : बजट योजना के पूर्ण होने पर यह आवश्यक होता है कि प्रत्येक अधिकारी उसके प्रति उत्तरदायित्व अनुभव करे और उसको पूरा करने के लिए अथक प्रयत्न करे। विभागाध्यक्ष को सोचना चाहिए कि उसके विभाग से सम्बन्धित बजट में जो लक्ष्य प्रतिपादित किये गये हैं उन्हें पूरा करना और अच्छा बनाना उसका निजी उत्तरदायित्व है। व्यवसाय के सभी वर्गों में बजट के प्रति सहानुभूति होनी चाहिए।

(4) बजट प्रबन्ध का स्थान नहीं ले सकता है : यह हमेशा ध्यान में रखना चाहिए कि बजट प्रशासन का स्थापापन्न नहीं है बल्कि यह प्रन्बध के लिए औजार है। यह तो केवल एक उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए साधन मात्र है और उसका प्रयोग साधन के रूप में ही होना चाहिए। बजट को मालिक के रूप में नहीं बल्कि नौकर के रूप में मानना चाहिए तभी उसका अधिकतम लाभ व्यवसाय को प्राप्त हो सकता है।

प्रभावशाली बजट के आवश्यक तत्व

किसी व्यवसायिक संस्था में प्रभावशाली बजट तैयार करते समय निम्न बातों का विशेष ध्यान रखना चाहिएः

(1) सुदृढ़ पूर्वानुमान : व्यावसायिक पूर्वानुमान किसी भी बजट की आधारशिला होते हैं और उनके आधार पर ही विभिन्न प्रकार के बजट तैयार किये जाते हैं। प्रत्येक व्यावसायिक संस्था को कच्चा माल, आदि का क्रय कार्यशील पूंजी की व्यवस्था करने से पूर्व अपनी वस्तुओं एवं सेवाओं के भावी बाजार का पूर्वानुमान करना पड़ता है। भावी बाजार सम्बन्धी विश्लेषण को दृष्टि में रखकर ही वह अपने संयन्त्र का विस्तार, विज्ञापन–प्रचार एवं प्रसार, आदि की व्यवस्था करता है। पूर्वानुमान केवल सहज अन्दाज पर ही नहीं होना चाहिए बल्कि वैज्ञानिक

सांख्यिकीय विधियों का उपयोग करके पूर्वानुमान करना चाहिए। एक व्यावसायिक बजट तैयार करते समय उत्पादन, खर्चे, विक्रय व भावी विकास, आदि के सम्बन्ध में पूर्वानुमान की आवश्यकता पड़ती है।

(2) पद्धति एवं नियोजित लेखा–विधि पद्धति का होनाः बजट तैयार करते समय व्यावसायिक संस्था की विभिन्न क्रियाओं के सम्बन्ध में समुचित आंकड़ों की आवश्यकता पड़ती है। इसके लिए यह अपरिहार्य होता है कि संस्था ने एक पूर्ण और यथाविधि नियोजित लेखा–विधि पद्धति को अपनाया हो। दूषित और अवैज्ञानिक लेखा–विधि पद्धति की दशा में न तो श्रेष्ठ बजट बनाना ही सम्भव हो सकता है और न उसका सफल संचालन ही सम्भव हो सकता है।

(3) सम्पूर्ण एवं नियोजित लागत लेखा–विधिः बजट–निर्माण में पूर्वानुमान का अत्यधिक महत्व होता है। लागत के सम्बन्ध में पूर्वानुमान के लिए आवश्यक होता है कि व्यवसाय में एक पूर्ण व कुशल लेखा–विधि का प्रयोग किया जाये। ऐसा होने पर ही लागत के सम्बन्ध में पूर्वानुमान सही और शुद्ध हो सकता है। यदि लागतों का पूर्वानुमान ही गलत है, तो उसके आधार पर तैयार किया गया बजट भी सही नहीं हो सकता है। अतः लागत लेखों का सही और शुद्ध होना आदर्श बजटिंग का आधारभूत लक्षण है।

(4) कुशल संगठन जिसके अन्तर्गत दायित्व की रेखा निश्चित हो : एक कुशल, पर्याप्त व श्रेष्ठतम व्यवस्था व संगठन बजट–निर्माण एवं संचालन के लिए नितान्त आवश्यक होते हैं। बजट बनाना किसी एक व्यक्ति का कार्य नहीं होता है वरन् सभी विभागों के अध्यक्ष इस कार्य में सहयोग देते हैं। इसलिए यह जरूरी है कि कारखाने के सभी विभागाध्यक्षों के कर्तव्य एवं दायित्व निश्चित हों। ऐसा संगठन, जो उत्तरदायित्व के स्पष्ट निश्चयीकरण व विकेन्द्रीकरण पर जोर देता है, सफल बजट–निर्माण में सहायक होता है क्योंकि इस दशा में प्रत्येक विभाग का अध्यक्ष रूचि के साथ सहयोग दे सकता है। इस प्रकार का संगठन न केवल बजट–निर्माण में सहायक होता है बल्कि बजट समन्वय व संचालन में भी सहायक हो सकता है।

(5) बजट समिति की स्थापना : बजट बनाना एक सहकारिता कार्य है। छोटी संस्थाओं के यहां लेखापालक ही प्रबन्ध संचालन व अन्य उच्चस्तरीय अधिकारियों के परामर्श के आधार पर बजट तैयार कर लेते हैं। किन्तु अगर संस्था बड़ी है तो यह कार्य केवल लेखापाल पर नहीं छोड़ा जा सकता। बड़ी संस्थाओं की दशा में सर्वप्रथम प्रत्येक विभाग का अध्यक्ष अपने–अपने विभाग की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए विभागीय बजट तैयार करता है परन्तु लेखा विभाग इस कार्य में उपर्युक्त सूचनाएं प्रदान करके विभिन्न बजटों के समन्वय में सहायता पहुंचाता है। अधिकांश दशा में, प्रायः एक बजट समिति का निर्माण कर लिया जाता है जिसमें सभी विभागों के अध्यक्ष तो होते ही है, साथ ही एक कुशल व अनुभवी व्यक्ति को संचालक बना दिया जाता है जिसे बजट अधिकारी कहते हैं। इस समिति का सबसे महत्वपूर्ण कार्य पूर्वानुमानों, विभागीय बजटों एवं सामयिक रिपोर्टों को प्राप्त करना व उनके आधार पर बदलती हुई परिस्थितियों में उठाये जाने वाले कदमों के सम्बन्ध में राय देना होता हैं। बजट

अधिकारी सभी विभागों के बजट प्राप्त करके एक मास्टर बजट तैयार करता है जिसे बजट समिति के सामने पेश किया जाता है।

(6) स्पष्टतः परिभाषित व्यावसायिक नीतियां : प्रत्येक बजट में व्यावसायिक नीतियों की झलक होती है अर्थात् उन्हीं के आधार पर बजट तैयार किये जाते हैं। अतः यह परमावश्यक है कि व्यावसायिक नीतियां पूर्णतः स्पष्ट व पूर्व–निश्चित हों। प्रत्येक विभाग के अध्यक्ष को इस बात का स्पष्ट ज्ञान होना चाहिए कि इन नीतियों का उनके विभाग पर क्या प्रभाव पड़ेगा, तभी वह कोई रचनात्मक सुझाव दे सकता है।

(7) सांख्यिकीय सूचना की उपलब्धि : यह भी आवश्यक है कि बजट बनाने के लिए प्रत्येक विभाग से सम्बन्धित आवश्यक सूचनाएं समंको के रूप में प्राप्त हो। उदाहरण के लिए, विक्रय बजट बनाने के लिए बिक्री का पूर्वानुमान, उत्पादन लक्ष्य, विज्ञापन व अन्य विक्रय मूल्य और अन्य सम्बन्धित तथ्यों के सम्बन्ध में आंकड़ों अवश्य प्राप्त होने चाहिए।

(8) उच्चस्तरीय प्रबन्ध की सहानुभूति : अगर किसी बजट प्रोग्राम को सफल बनाना है, तो इसमें प्रबन्ध के प्रत्येक सदस्य की सहानुभूति उच्चस्तरीय सदस्य अर्थात् अध्यक्ष महोदय से प्रारम्भ होनी चाहिए। बजट के संचालन हेतु निर्देशन व उत्सुकता शीर्ष से होनी चाहिए। प्रबन्ध के सभी स्तर पर नियुक्त व्यक्तियों में प्राकृतिक भावना होती है कि ये परिवर्तन के विरूद्ध होते हैं। बजट योजना के कार्यान्वन में अनेक योजनाएं निहित होती हैं जनके कारण परोक्ष या अपरोक्ष रूप से इसका विरोध हो सकता है। इसके लिए आवश्यक है कि बजट प्रोग्राम का उच्चस्तरीय प्रबन्ध द्वारा ही समर्थन किया गया हो।

(9) बजट की अवधि : साधारणताया बजट की अवधि व्यवसाय की प्रकृति पर निर्भर करती है, फिर भी बजट की अवधि कम–से–कम इतनी अधिक होनी चाहिए कि सभी प्रकार की वित्तीय व उत्पादन क्रियाओं एवं मौसमी परिवर्तनों को शामिल किया जा सके। अच्छा यही होता हे कि एक वर्ष या पांच साल के बजट के साथ निष्पादन के दृष्टिकोण से छमाही या माहवार बजट भी बनाये जायें।

(10) बजट का उपयोग व उसकी सीमाओं का ज्ञान : व्यावसायिक संस्था के प्रत्येक अधिकारी को चाहिए कि वह बजट के प्रयोग व उसकी सीमाओं से परिचित हो जाये। बजट के प्रयोग के अन्तर्गत यह देखना चाहिए कि बजट किस प्रकार योजना, समन्वय व नियन्त्रण की क्रियाओं में सहायता देते हैं। दूसरी तरफ प्रबन्ध को यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि बजट प्रबन्ध नहीं करता है वरन् वह प्रबन्ध के लिए औजार मात्र है।

बजट का वर्गीकरण

बजट को अनेक दृष्टिकोण से वर्गीकृत किया जा सकता है, बजट वर्गीकरण का निम्न आधार पर ही प्रयोग में लाया जाता है:

(अ) समय के आधार पर

(ब) क्रियाओं के आधार पर

(स) लचीलापन कारक के आधार पर

(द) व्यावसायिक क्रिया प्रकृति के आधार पर

(अ) समय के आधार पर : समय के दृष्टिकोण से बजट मुख्यतः तीन प्रकार के होते हैंः

(i) दीर्घकालीन बजट : संस्था एक निश्चित दीर्घकाल में क्या करना और संचालन को किस ढंग से चलाना चाहती है– इसके सम्बन्ध में निर्मित दीर्घकालीन योजनाओं को निरूपित करने वाले बजट को ही दीर्घकालीन बजट कहते हैं। अधिकांशतः पांच से लेकर दस वर्षों तक की योजनाओं का वर्णन इस प्रकार के बजट में किया जाता है। इस प्रकार के बजट अधिकांशतः भौतिक मात्राओं की इकाई में ही तैयार किये जाते हैं, रुपये की इकाई में नहीं।

(ii) अल्पकालीन बजट : जब संस्था एक या दो वर्षों के लिए अपनी संचालन क्रियाओं के सम्बन्ध में योजना बनाती है, तो इन योजनाओं के आधार पर तैयार किये गये बजट अल्पकालीन बजट कहलाते हैं। ये बजट हमेशा मौद्रिक इकाई में तैयार किये जाते हैं।

(iii) चालू बजट : ये एक प्रकार के अल्पकालीन बजट ही होते हैं। परन्तु इनकी अवधि एक माह या इससे अधिक होती है। इनका निर्माण अल्पकालीन बजट के अनुसार आवश्यक समायोजन करके किया जाता है। कुछ संस्थाएं अपने यहां मासिक बजट भी तैयार करती है इन्हें भी चालू बजट के रूप में माना जा सकता है।

(ब) क्रियाओं के आधार पर : इस आधार पर बजट निम्न प्रकार के हो सकते हैं :

(i) मास्टर बजट या सारांश बजट : मास्टर बजट को सामान्यतः अन्य विभागीय विस्तृत बजटों के सारांश के रूप में माना जा सकता है। परन्तु इसके सम्बन्ध में लेखापालकों की राय में भिन्नता है और इसके सम्बन्ध में दो दृष्टिकोण पाये जाते हैंः प्रथम, कुछ लेखापालकों का विचार है कि बजटेड लाभ–हानि और आर्थिक चिट्ठा को ही मास्टर बजट मानना चाहिए। लाभ–हानि द्वारा बजट अवधि के लिए अनुमोदित लाभ प्रकट होता है। जबकि आर्थिक चिट्ठा पूंजी, दायित्व व सम्पत्ति का सारांश दर्शाता है। मास्टर बजट का दूसरा अर्थ, जो बहुत ही व्यापक है, यह है कि सभी विभाग पहले अलग–अलग विस्तृत बजट तैयार करते हैं और फिर उनका संक्षिप्त विवरण एक पृथक् बजट में हस्तान्तरित कर दिया जाता है। इस दशा में मास्टर बजट बजट–अवधि की पूरी योजना को चित्रित करता है। इस बजट में साधारणतः विक्रय उत्पउदन, लागत, लाभ, लेखा अनुपात, लाभ नियोजन, आदि सूचनाएं शामिल की जाती हैं। मास्टर बजट व्यवसाय के विभाग क्षेत्रों में अपेक्षित क्रियाओं का चित्रण करता है तथा सामान्यतः उच्च अधिकारियों द्वारा प्रयोग में लाया जाता है। इस प्रकार मास्टर बजट एक समन्वय करने वाला बजट होता है।

(ii) क्रियात्मक बजट या सहायक बजट : प्रत्येक विभाग या क्रिया के लिए अनुमोदित पूर्वानुमानों के आधार पर तैयार किये गये बजट क्रियात्मक या विभागीय या सहायक बजट कहलाते हैं। व्यवसाय–दर–व्यवसाय ऐसे बजटों की संख्या बदलती रहती है। सामान्यतः सहायक बजटों में विक्रय बजट, उत्पादन बजट, विक्रय व वितरण अप्रत्यक्ष व्यय बजट,

उत्पादन–लागत बजट, सामग्री बजट, श्रम बजट, प्लांट बजट, अनुसंधान व विकास बजट, वित्तीय बजट, आदि को शामिल करते हैं।

(स) लचीलापन कारक के आधार परःइसके आधार पर बजट दो प्रकार के हो सकते हैंः

(i) स्थायी या स्थैतिक बजट : यह वह बजट होता है जिसमें निर्धारित लक्ष्य ठोस रूप में स्थिर या स्थायी होते हैं। इस प्रकार के बजट, जिस वर्ष से सम्बन्धित होते हैं, उसके एक से तीन माह की अग्रिम रूप में तैयार कर लिये जाते हैं। परिणामस्वरूप बजट व वास्तविक परिणाम की तुलना में करीब 12 माह का अन्तर पड़ जाता है। इस दौरान अनेक घटनाएं घटित हो सकती हैं और जो पूर्व–निर्धारित लक्ष्यों को तुलना के अयोग्य बना सकती है। इस प्रकार का बजट वहां पर ही तैयार करना चाहिए, जहां पर विक्रय के सम्बन्ध में पूर्ण शुद्धता के साथ अनुमान लगाया जा सकता हो और लागत व व्यय को शुद्धता के साथ निर्धारित किया जा सकता हो।

(ii) लचीला बजट : इस प्रकार के बजट में प्रयुक्त लागत व व्यय के समंकों में किसी भी माह में तत्कालीन परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तन किया जा सकता है। न्यूनतम से लेकर अधिकतम संचालन स्तर तक के विभिन्न स्तरों पर प्रमाप लागत के आधार पर लागत व व्ययों का अनुमान लगा लिया जाता है। इस रूप में एक लचीले बजट का प्रयोग पूर्ण वित्तीय वर्ष के लिए प्रयोग में लाया जा सकता है। आधारभूत में लचीला बजट का यह सिद्धान्त है कि उत्पादन के विभिन्न स्तर पर बजटेड व वास्तविक खर्चों की तुलना की जा सके। इस प्रकार लचीला बजट का विकास इसलिए किया गया है कि वास्तविक उत्पादन स्तर बजट समंकों को आनुपातिक रूप से परिवर्तित किया जा सके। उदाहरण के लिए, एक लचीले बजट का निर्माण 60 प्रतिशत से 100 प्रतिशत तक उत्पादन क्षमता के लिए किया गया है। यदि वास्तविक उत्पादन 90 प्रतिशत है, तो 90 प्रतिशत पर निर्धारित बजट समंकों की तुलना वास्तविक समंकों से की जा सकती है। स्थायी बजट में ऐसी तुलना सम्भव नहीं होती है।

(द) व्यावसायिक क्रिया की प्रकृति के आधार पर : व्यवसाय में सम्पन्न विभिन्न क्रियाओं का निरूपण एक अन्य दृष्टि से भी किया जा सकता है। कुछ क्रियाएं सुविधाओं (साधनों) का सृजन करती हैं और कुछ क्रियाएं संचालन को सम्भव बनाती है। इस तथ्य को ध्यान में रखकर बजट को निम्न वर्गों में रखा जा सकता हैः

(i) पूंजी खर्च बजट : जो बजट निर्माणी सुविधाओं के सृजन सम्बन्धी योजनाओं से सम्बन्धित होते हैं, उन्हें पूंजी खर्च बजट कहते हैं।

(ii) संचालन बजट या आयगत बजट : जो बजट दैनिक कार्यों की योजनाओं से सम्बन्धित होते हैं, उन्हें संचालन बजट कहते हैं। दैनिक कार्यों में बिक्री, उत्पादन, लागत व लाभ, आदि को शामिल करते हैं।

अभी तक बजट वर्गीकरण के विभिन्न आधारों व उनके तत्स्वरूप प्रकारों का वर्णन किया गया है। व्यवहार में एक ही बजट विभिन्न आधारों पर कई स्वरूप ग्रहण कर सकता है।

उदाहरण के लिए, तीन वर्ष के लिए तैयार एक विक्रय बजट (उत्पादन के विभिन्न स्तरों पर) अल्पकालीन, लचीला व संचालन बजट कहलायेगा।

कुछ विशेष प्रकार के बजट की बनाने की प्रक्रिया उपयुक्त उदाहरणों द्वारा निम्न प्रकार से समझायी गयी है:

(ii) लचीला बजट का निर्माण : यद्यपि लचीला बजट की अवधारण व सिद्धान्त किसी भी क्रियात्मक बजट पर लागू किया जा सकता है, सामान्यतः इसे उत्पादन लागत बजट पर लागू करते हैं। उत्पादन लागत बजट को लचीला बजट के रूप में तैयार करने हेतु यह आवश्यक होता हे कि अप्रत्यक्ष व्ययों को स्थिर, अर्द्ध–स्थिर एवं परिवर्तनशील वर्गों में बांट दिया जाये। ऐसा करना इसलिए महत्वपूर्ण होता है कि उत्पादन के विभिन्न स्तरों का प्रत्येक वर्ग के अप्रत्यक्ष व्यय पर अलग–अलग प्रभाव पड़ता है। यह मान्यता होती है कि उत्पादन या विक्रय के स्तर पर परिवर्तन का स्थिर व्यय पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है; अर्द्ध–स्थिर व्यय उत्पादन–स्तर में परिवर्तन होने पर परिवर्तित तो होते है, परन्तु समान अनुपात में नही। परिवर्तनशील व्यय उत्पादन या विक्रय के स्तर में होने वाले परितर्वन के अनुपात में ही परिवर्तित होते हैं। इस प्रकार लचीला बजट बनाते समय अर्द्ध–स्थिर व्यय व परिवर्तनशील व्यय की गणना उत्पादन के विभिन्न स्तरों के लिए करनी पड़ती है। परिवर्तनशील व्यय की गणना उत्पादन स्तर में परिवर्तन के अनुपात में की जाती है, अर्द्ध–स्थिर व्यय का विश्लेषण करके पता लागया जाता है कि उनमें परितर्वन की प्रवृत्ति क्या है? इस प्रकार के व्यय का कुछ भाग स्थिर रहता है और कुछ परिवर्तनशील। परिवर्तनशील अंश की रकम उत्पादन स्तर के परिवर्तन के अनुपात में निकालकर स्थिर अंश की रकम में जोड़ दी जाती है। कभी–कभी ऐसा भी होता हे कि ये व्यय कुछ उत्पादन स्तर तक अपरिवर्तित रहते हैं और उसके बाद भिन्न–भिन्न स्तर–अन्तर पर भिन्न–भिन्न दर से परिवर्तित होते हैं।

लचीला बजट का महत्व : स्थायी बजट की तुलना में लचीला बजट निम्नलिखित कारणों से अधिक महत्वपूर्ण होता है:

(i) यह बजट व्यवसाय के विभिन्न संचालन स्तर के लिए, उत्पादन, लागत, बिक्री व लाभ का विवरण प्रस्तुत करता है, जो सीमान्त विश्लेषण को व्यावहारिक बना सकता है।

(ii) इस बजट से वास्तविक और बजट परिणामों का तुलनात्मक अध्ययन अत्यधिक सरल और सम्भव हो जाता है क्योंकि इस बजट में विभिन्न संचालन स्तरों के लिए दिये गये आंकड़ों के आधार पर वास्तविक संचालन स्तर के लिए बजटेड आंकड़ें सरलतापूर्वक ज्ञात किये जा सकते है

(iii) स्थायी बजट में निश्चित संचालन स्तर का पूर्ण पालन व्यवहार में सम्भव नहीं हो पाता है और इस प्रकार वास्तविक और बजटेड आंकड़ों का तुलनात्मक अध्ययन सम्भव नहीं हो पाता। फलस्वरूप संस्था लागत नियन्त्रण के उद्देश्य को प्राप्त करने में असफल रहती है। इसलिए लचीला बजट एक अत्याज्य व अपरिहार्य विकल्प हो जाता है।

(iv) वर्तमान में प्रत्येक व्यवसाय में कितनी अनिश्चितताएं आ गयी है कि एवं आन्तरिक बाह्य कारणों का संस्था के जीवन पर इतना अधिक प्रभाव पड़ने लगा है कि बिक्री या उत्पादन के सम्बन्ध में ठीक–ठीक पूर्वानुमान लगाना असम्भव–सा हो गया है। ऐसी स्थिति में यही लाभकर होता है कि संचालन के विभिन्न स्तरों के लिए (न कि केवल एक निश्चित स्तर के लिए) यथोचित पूर्वानुमान लगा लिया जाये।

निष्पादन बजटन

निष्पादन बजटन का विचार विशेषकर सरकार कार्यों में अधिक प्रबन्धकीय कुशलता से सम्बन्धित है। सरकारी कार्यों का परम्परागत तरीका यह रहा है कि यहां आगत बजट तैयार किये जाते हैं जिसमें विभिन्न मदों पर व्यय के लक्ष्य निर्धारित किये जाते हैं तथा लक्ष्य के अनुसार व्यय को कुशलता का प्रतीक माना जाता है किन्तु निष्पादन बजटन को कार्यों, कार्यक्रमों, क्रियाकलापों और परियोजनाओं पर आधारित एक बजट के रूप में देखा जाता है तथा यह व्ययों के वस्तुगत वर्गीकरण पर आधारित बजटरी प्रणाली से जुड़ा हुआ है। निष्पादन बजटन का उद्देश्य किये जाने वाले कार्य या प्रदान की जाने वाली सेवा की ओर ध्यान देना है न कि कितना व्यय किया जाना है। निष्पादन बजटन में आगतों के नियंत्रण की बजाय प्राकर्यों और उद्देश्यों के कुशल और मितव्ययी प्रबन्धन पर बल दिया जाता है। आजकल इस प्रकार का बजटन सरकार में बहुत सामान्य होता जा रहा है जहां सरकार यह दिखलाने का प्रयत्न करती है कि उसका किस लागतों पर क्या करने का इरादा है। इससे यह जानकारी मिलती है कि सरकार क्या कर रही है और व्यय किये गये धन से उसे क्या मिलता है। इस प्रकार निष्पादन बजटन सरकार के लक्ष्यों को प्रकाश में लाता है, न कि व्यय किये धन की मात्रा को। यह एक समयावधि में विशिष्ट उद्देश्यों की प्राप्ति पर बल देता है। इसके लिए इसमें आवधिक निष्पादन प्रतिवेदनों के तैयार करने की आवश्यकता होती है। इन प्रतिवेदनों में बजट और वास्तविक आंकड़ों की तुलना और विचलन दर्शाये जाते है।

'निष्पादन' शब्द का आशय परिणाम या उत्पादन से होता है। अतः निष्पादन बजटन का आशय उत्पादनोमुखी बजटन से है। अतः आगत बजटन से उत्पादनोमुखी बजटन बदलाव निष्पादन बजटन की कुंजी है। एक औद्योगिक संस्था में उत्पादन उत्पादित मूर्तमान वस्तुओं या प्रदान की गई सेवा से जाना जाता है तथा गैर–औद्योगिक संस्थाओं में भी कार्य पूरा करने के वैकल्पिक प्रमापों की खोज करना सम्भव है। भारत में वाणिज्यिक बैंक अपने निर्णय लेने और मूल्यांकन में निष्पादन बजटन का प्रयोग करते है।

राष्ट्रीय बैंक प्रबन्धन संस्थान, मुम्बई ने इस तकनीक को इस प्रकार परिभाषित किया है, ''यह संगठन के उद्देश्यों के ढांचे के अंतर्गत एक निश्चित अवधि में प्राप्त किये जाने वाले किसी कार्य के विशिष्ट निष्पादन उद्देश्यों के विश्लेषण, पहचान, सरलीकरण और निश्चयीकरण की प्रक्रिया है। यह तकनीक संगठन के व्यावसायिक उद्देश्यों की ओर विशिष्ट निर्देशन इस तकनीक की विशेषतता है।'' इस प्रकार निष्पादन एक निश्चित अवधि के अन्तर्गत विशिष्ट उद्देश्यों की प्राप्ति पर बल देता है।

निष्पादन बजटन के उद्देश्य

निष्पादन बजटन के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित है।

1. प्रत्येक कार्यक्रम, परियोजना अथवा क्रियाकलाप के भौतिक एवं वित्तीय पहलुओं को समन्वित करना।
2. प्रबन्धन के सभी स्तरों पर बजट निर्माण, पुनर्विचार और निर्णयन में सुधार लाना।
3. नियन्त्रक प्राधिकारियों द्वारा बेहतर प्रशंसा एवं पुनर्विचार सुगम बनाना।
4. अधिक प्रभावी निष्पादन अंकेषण सुगम बनाना।
5. विकास योजना में विचार किये गये दीर्घकालीन उद्देश्यों की प्रगति मापना।
6. पर्यवेक्षक के निर्णय लेने का मध्य और उच्च प्रबन्धकों पर प्रभाव का आंकलन करना।
7. वार्षिक योजनाओं एवं बजटों को अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन योजना उद्देश्यों के अनुरूप लाना।
8. एक विस्तृत संचालनात्मक प्रलेख प्रस्तुत करना जिसमें कार्यक्रमों और संभावनाओं की एक पूर्ण योजना और वित्तीय और भौतिक पहलुओं से परस्पर मिश्रित उनके उद्देश्य दर्शाये गये हों

निष्पादन बजटन के पग

1. उद्देश्य, लक्ष्य और नीतियां स्थापित करना।
2. निर्धारित उद्देशों और लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए कार्यक्रम बनाना।
3. बजट अवधि और लागत के अन्तर्गत उत्तरदायित्वों और लक्ष्य प्राप्ति की भाषा में बजट कार्यान्वित करना।
4. बजट के मूल्यांकन, अनुमोदन और अपडेट की क्रमबद्ध प्रक्रिया।

निष्पादन बजटन की उपयुक्तता

निष्पादन बजटन निम्नलिखित मामलों में उपयुक्त हैः

1. ढांचागत विकास अथवा सेवायें प्रदान करने में संलग्न सरकारी विभाग अथवा संगठन, जैसे स्वास्थ्य मंत्रालय, शिक्षा मंत्रालय, आयकर विभाग आदि।
2. किसी भी उपक्रम के वे विभाग जो किसी वस्तु का निर्माण नहीं करते, जैसे स्टोर, अनुरक्षण, लेखा और वित्त विभाग आदि।
3. पूंजीगत व्ययों का पर्यवेक्षण करना

यद्यपि निष्पादन बजटन वाणिज्यिक क्रियाओं के क्षेत्र में कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं ला सकता, फिर भी इस क्षेत्र में भी यह एक इकाई की नियंत्रण प्रणाली को पुष्ट बना सकता है।

## शून्य आधार बजटन

शून्य आधार बजटन भावी क्रियाओं के नियोजन का एक क्रान्तिकारी विचार है तथा यह परम्परागत बजटन से काफी भिन्न है। परम्परागत बजटन के अन्तर्गत एक बजट अवधि में

किसी क्रिया पर किया गया व्यय अगली बजट अवधि के अनुमानों का आधार बनता है। इसमें नई क्रियाओं और चालू कार्यों में प्रत्याशित परिवर्तनों के लिए बजट राशि में संशोधन किये जाते हैं। शून्य आधार बजटन बजटन के क्षेत्र में एक नया विचार है जो सर्वप्रथम 1969 में अमेरिका में टकसास इन्स्ट्रूमेन्ट्स में लागू किया गया। 1977 में अमेरिका के प्रेसीडेन्ट जिमी कार्टर ने इसे संघीय सरकार में लागू किया।

(षून्य आधार बजट) एक व्यय नियंत्रक युक्ति है जहां पिछली बजट उपलब्धियों के संदर्भ के बिना प्रत्येक विभागीय प्रमुख को व्यय की प्रत्येक मद के लिए कोषों की आवश्यकता का औचित्य बतलाना होता है तथा उसके अनुरूप ही बजट तैयार करना होता है। यह एक उपक्रम की क्रियाओं के लिए बजटन की एक ऐसी औपचारिक प्रणाली है जिसमें यह मानकर चला जाता है कि प्रत्येक क्रिया पहली बार सम्पादित की जा रही है अर्थात् शून्य आधार से। प्रत्येक क्रिया चाहे वह नई हो या मौजूदा के व्यय का औचित्य व मूल्यांकन उसके अपने गुणों के आधार पर किया जाता है। अतः क्रिया के प्रस्तावक प्रबन्धक को यह सिद्ध करना होता है कि यह क्रिया आवश्यक है तथा उत्पादन मात्रा या परिणामों या विचारित क्रिया की मात्राको ध्यान में देते हए़ मांगी की राशि उचित है। शून्य आधार बजटन में यह मानकर चला जाता है कि प्रत्येक प्रबन्धक अपने अधिकार क्षेत्र की बजट अवधि में प्रस्तावित प्रत्येक क्रिया के लिये लागत–लाभ विश्लेषण करेगा। किसी क्रिया को केवल इस आधार पर नहीं स्वीकृत किया जायेगा कि भूतकाल में भी इसे स्वीकृति मिली थी। इस प्रणाली के अन्तर्गत प्रत्येक क्रिया के बहुत से विकल्पों की पहचान की जाती है, उनकी लागत निकाली जाती है और उनसे सम्भावित लाभ के संदर्भ में उनका मूल्यांकन किया जाता है। वास्तव में शून्य आधार बजटन निगमित नियोजन और बजटन के क्षेत्र में लागत–लाभ विश्लेषण पद्धति का विस्तार ही है।

शून्य आधार बजटन की तकनीक मौजूदा नियोजन, बजटन एवं पुनर्विचार की प्रक्रिया को जोड़ती एवं पूरा करती है। यह चयनित लाभों की प्रभावपूर्ण प्राप्ति में प्रयुक्त सीमित संसाधनों की कुशल रीतियों एवं विकल्पों की पहचान करती है। इस तकनीक का प्रमुख उपयोग उन क्षेत्रों में है। जहां व्यय निर्माण गतिविधियों से अधिक प्रभावित नहीं होते है अर्थात् यह तकनीक उन क्षेत्रों में उपयोगी हे जहां प्रबन्धक को विभिन्न प्रत्यक्ष लागतों और लाभों वाली विभिन्न क्रियाओं के बीच चयन का अवसर है। ये क्षेत्र हैः विपणन, वित्त, गुण, नियंत्रण, अनुरक्षण, उत्पादन, नियोजन, शोध एवं विकास, सेविवर्गीय, समंक विधायन आदि।

## शून्य आधार बजटन की विधि और पग

इस विधि को लागू करने के लिए निम्नलिखित पग आवश्यक है :

1. निर्णय इकाइयों को परिभाषित करना : एक निर्णय इकाई एक मूर्तमान क्रिया या क्रियाओं का एक समूह है जिसके सफल सम्पादनके लिए एक अकेला प्रबन्धक उत्तरदायी होता है। परम्परागत एक लागत केन्द्र, व्यक्तियों का एक मसूह अथवा एक परियोजना एक निर्णय इकाई हो सकती है। अतः इस विधि का प्रथम पग निर्णय इकाईयों का विकास है जिनके सम्बन्ध में लागत–लाभ विश्लेषण करके उनके चालू रखने या छोड़ देने पर निर्णय करना होगा।

2. प्रत्येक निर्णय इकाई के उद्देश्य परिभाषित करना : प्रत्येक निर्णय इकाई के उद्देश्यों की स्पष्ट और विशिष्ट शब्दों में तथा उपक्रम के उद्देश्यों और लक्ष्यों के अनुरूप परिभाषा की जानी चाहिए।

3. निर्णय पैकेजों के रूप में क्रियाओं को पहचानना : प्रत्येक निर्णय इकाई या क्रिया के लिए एक निर्णय पैकेज बनाना चाहिए। निर्णय पैकेज एक बजट प्रार्थना होती है जिसमें निम्न बातें दी जाती है :

(i) प्रकार्य या क्रिया का वर्णन

(ii) प्रकार्य या क्रिया के उद्देश्य या लक्ष्य,

(iii) क्रिया के वित्तीयन से होने वाले लाभ,

(iv) क्रिया के लिए कोष न उपलब्ध कराने और उसके सम्पादित न किये जाने के परिणाम,

(v) क्रिया के लिए आवश्यक कर्मचारी,

(vi) उसी क्रिया को सम्पादित करने के वैकल्पिक तरीके,

(vii) यदि परियोजना या क्रिया छोड़ दी जाती है तो क्या निर्णय इकाई को एक बाह्य एजेन्सी से प्रतिस्थापित किया जा सकता है या पूर्णतया छोड़ देना होगा। किसी दी गई क्रिया के लिए कई वैकल्पिक निर्णय पैकेज हो सकते हैं। निर्णय पैकेज दो प्रकार के होते हैं : परस्पर अपवर्जी पैकेज और वृद्धिशील पैकेज।

4. वैकल्पिक निर्णय पैकेजों का श्रेणीयन : लागत लाभ तकनीक का प्रयोग करते हुए विभिन्न वैकल्पिक निर्णय पैकेजों को घटते लाभ के क्रम में रखा जाता है।

5. श्रेणीकृत निर्णय पैकेजों का अग्रसारण : श्रेणीकृत निर्णय पैकेज को अगली उच्च संगठनात्मक इकाईयों को पुनर्विचार, अन्य तुल्य निर्णय पैकेजों के साथ विलय और पुनः श्रेणीयन के लिए अग्रसारित किये जाते हैं। निर्णय पैकेजों का समूहीकरण और पुनः श्रेणीयन एक समिति द्वारा किया जाना चाहिये जिसमें विचारित निर्णयक पैकेजों के रखने वाले सभी प्रबन्धक सम्मिलित हों तथा अगले उच्च संगठनात्मक स्तर से चयनित अधिकारीं को इस समिति का चेयरमैन बनाया जाये।

6. बजट को अन्तिम रूप देना तथा चुने गये पैकेजों को संसाधनों का बंटवारा : प्रत्येक निर्णय इकाई के लिए बजट का अन्तिम अनुमोदन सर्वोच्च प्रबन्ध द्वारा किया जाना चाहिये। संसाधनों के आंवटन में सर्वोच्च प्रबन्ध सामान्यतया लाभ–लागत अनुपातों और व्यय वहन करने की क्षमता से निर्देशित होता है।

परम्परागत बजटन और शून्य आधार बजटन में अन्तर

शून्य आधार बजटन निम्नलिखित बातों में परम्परागत बजटन से भिन्न है :

1. परम्परागत बजटन लेखोन्मुखी है। इसमें मुख्य बल व्यय के गत स्तर पर रहता है। शून्य आधार बजटन का दृष्टिकोण निर्णयोन्मुखी होता है।

2. परम्परागत बजटन में गत व्यय के संदर्भ में तथा नवीन कार्यक्रमों के लिए व्यय की राशि के विस्तार की मांग की जाती है। शून्य आधार बजटन नई या पुरानी सभी क्रियाओं के लिए शून्य से प्रारम्भ होता है।

3. परम्परागत बजटों में व्यय की राशियां दर्शाई जाती है। विभिन्न बजटों में श्रेणीयन नहीं किया जाता है। शून्य आधार बजटन में विभिन्न निर्णय पैकेजों का लागत–लाभ विश्लेषण किया जाता है तथा उनका उनकी महत्ता के अनुसार श्रेणीयन किया जाता है जिससे सर्वोच्च प्रबन्ध केवल प्राथमिकता वाले पैकेजों पर ही ध्यान दे सकते हैं।

4. परम्परागत बजटन में तैयार करते समय चालू क्रियाओं पर सामान्यतया पुनर्विचार नहीं किया जाता है जबकि शून्य आधार बजटन में मौजूदा कार्यक्रमों के नियोजन के लिये प्रत्येक बजट के वर्ष में व्यय का औचित्य बतलाना आवश्यक है।

5. परम्परागत बजटन में सर्वोच्च प्रबन्ध ही निर्णय लेता है कि किसी विशेष निर्णय इकाई पर क्यों एक विशेष राशि व्यय की जानी चाहिये जबकि शून्य आधार बजटन में यह उत्तरदायित्व सर्वोच्च प्रबन्ध से शिफ्ट होकर निर्णय इकाई के प्रबन्ध को चला जाता है।

6. परम्परागत बजटन बजट तैयार करने में नैत्यिक दृष्टिकोण रखता है जबकि शून्य आधार बजटन का दृष्टिकोण बड़ा ही स्पष्ट और सीधा है। इसमें प्राथमिकता वाले निर्णय पैकेजों की पहचान स्पष्ट नहीं है।

7. परम्परागत बजटन में वस्तुनिष्ठता का अभाव रहता है तथा व्यय के सम्बन्ध में पूर्व स चली आ रही अकुशलता का क्षेत्र बना रहता है। शून्य आधार बजटन में प्रत्येक बजट प्रस्ताव का वस्तुनिष्ठ और तार्किक विश्लेषण किया जाता है।

**शून्य आधार बजटन के लाभ या उपयोग**

**षून्य आधार बजटन के लाभों को निम्न बिन्दुओं में पिरोया जा सकते हैं ;**

1. शून्य आधार बजटन वृद्धिशील दृष्टिकोण पर आधारित नहीं है, अतः लागतों के सम्बन्ध में भूतकालीन अकुशलताओं के चलते रहने की सम्भावना नहीं रहती। यह व्यर्थ के व्ययों को पहचानने और समाप्त करने में सहायता प्रदान करता हैं यह परिचालनात्मक कुशलता में वृद्धि लाता है क्योंकि इसमें प्रबन्धकों को अपने नये प्रस्तावों के साथ–साथ चालू क्रियाओं पर पुनर्विचार करना होता ळै तथा उनका औचित्य बतलाना होता है। इस प्रकार यह कार्यक्रमों को उनकी सम्पूर्णता में पुनर्विचार का अवसर प्रदान करता है।

2. शून्य आधार बजटन अकुशलता को दूर करता है तथा संस्था में कुशलता और लागतों में बचत की संस्कृति विकसित करता है और इस प्रकार प्रबन्धकों में लागत

जागरूकता लाता है क्योंकि प्रत्येक प्रस्ताव का मूल्यांकन लागत–लाभ विश्लेषण के आधार पर किया जाता है। इस प्रकार इसमें मनमानी कटौती और वृद्धि के आवसर नहीं रहते हैं।

3. शून्य आधार बटन सभी सम्बन्धित कर्मचारियों की सहभागिता आश्वस्त करता है और इस प्रकार सभी प्रबन्धकों के बीच सहयोग और टीम की भावना विकसित करता है। यह नियोजन और नियंत्रण में समन्वय सुगम बनाता है।

4. आगमों में वृहत उच्चावचन वाली अवधियों में शून्य आधार बजटन शीघ्र बजट समायोजन सम्भव बनाता है।

5. शून्य आधार बजटन उद्देश्यों, प्राथमिकताओं और आवश्यकताओं पर ध्यान केन्द्रित करके बजटन प्रक्रिया में सुधार लाता है। इस प्रकार यह बजटों को निगमित उद्देश्यों के साथ जोड़ता है। उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध प्रणाली प्रारम्भ करने में भी इसका प्रयोग किया जा सकता है।

6. शून्य आधार बजटन अनुपयोगी कार्यक्रमों को रोकने और उच्च–प्रभाव वाले कार्यक्रमों के विस्तार का वस्तुनिष्ठ आधार प्रदान करता है।

7. शून्य आधार बजटन के अन्तर्गत उत्तरदायित्व लेखांकन प्रणाली अधिक प्रभावी बन सकती है।

8. शून्य आधार बजटन दुर्लभ संसाधनों के अनुकूलतम बंटवारें में प्रबन्ध की सहायता करता है क्योंकि इस प्रणाली का अनुपम पहलू चालू और प्रस्तावित दोनों प्रकार के व्ययों का मूल्यांकन और इन्हें प्राथमिकता के आधार पर प्रबन्ध के समक्ष प्रस्तुत करना है। इस प्रकार यह तकनीक प्रबन्ध को कार्यक्रमों के प्राथमिकता के आधार पर संसाधनों के बंटवारें में सहायक होती है।

9. तुलनात्मक रूप से यह पद्धति लोचपूर्ण है क्योंकि प्रत्येक वर्ष बजट शून्य आधार पर तैयार किये जाते हैं। यह पद्धति वित्तीय नियोजन और प्रबन्ध सूचना प्रणाली विकसित करना आवश्यक बनाती है।

10. बजट उद्देश्य के लिए व्यवसाय के प्रत्येक पहलू पर पुनर्विचार और मूल्यांकन से परिणामपरक निगरानी प्रक्रियाओं को सहायता मिलती है।

## शून्य आधार बजटन की सीमायें या आलोचनायें

1. निर्णय इकाइयों और निर्णय पैकेजों को परिभाषित करना कठिन है।

2. पुनर्विचार प्रक्रिया में बहुत समय लगता है। इसके अतिरिक्त निर्णय पैकेजों का श्रेणीयन भी एक दूसरी समस्या है, विशेषकर तब जब लाभों का संख्यात्मक माप सम्भव न हो।

3. शून्य आधार बजटन लागू करने के लिए प्रबन्धकों का पर्याप्त प्रशिक्षण तथा संचालनात्मक ढांचा विकसित करना आवश्यक है।

4. शून्य आधार बजटन तकनीक के लागू करने में विभिन्न संचालनात्मक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। इसमें परम्परागत बजटन की तुलना में कागजी कार्य अधिक होता है, विशेषकर किसी संगठन में इस प्रणाली के लागू करने की प्रारम्भिक अवधियों में। अतः इसकी सफलता के लिए सर्वोच्च प्रबन्ध का पूर्ण समर्थन आवश्यक है।

5. यह प्रणाली श्रम साध्य और खर्चीली है। इस प्रणाली को लागू करने और बनाये रखने के लिये आवश्यक समय और प्रयत्न इससे प्राप्त होने वालें लाभों से अधिक हो जाते हैं। अधिक मात्रा में समंक विधायन के कारण इसके लिए कम्प्यूटर सुविधाओं की आवश्यकता होती है।

6. प्रबन्धकों के लिए यह एक धमकी भरी प्रक्रिया है क्योंकि उन्हें प्रत्येक वर्ष अपने बजट प्रस्तावों के अनुमोदन के लिए विस्तृत विवरण देना होता है। समुचित सूचना के अभाव में उनके प्रस्ताव अस्वीकार भी किये जा सकते हैं।

7. इस तकनीक को शोध और विकास क्रियाओं पर नहीं लागू किया जा सकता क्योंकि इसमें उद्देश्य और लक्ष्यों को परिभाषित करना कठिन होता है।

2. **विक्रय बजट :** बहुत–सी व्यावसायिक संस्थाओं के लिए विक्रय का पूर्वानुमान बजटिंग की प्रारम्भिक क्रिया माना जाता है। अगर वस्तु की मांग के सम्बन्ध में पूर्ण आश्वासन मिल जाता है और विक्रय केवल अधिकतम सम्भावित उत्पादन का अंग मात्र होता है, तो उस दशा में उत्पादन का पूर्वानुमान ही महत्वपूर्ण पहलू माना जाता है। विक्रय बजट भावी बजट अवधि के लिए सम्भावित बिक्री (मात्रा और मूल्य दोनों रूपों में) से सम्बन्धित होता है। विक्रय बजट तैयार करने के लिए पूर्वानुमान आवश्यक है। पूर्वानुमान की विधि का चुनाव अनेक कारकों से प्रभावित होता है। वस्तु की प्रकृति, वितरण पद्धति, व्यवसाय का आकार, प्रतिस्पर्द्धा की मात्रा, आदि ऐसे कारक है जिन्हें पूर्वानुमान विधि का चुनाव करते समय ध्यान में रखना पड़ता है।

विक्रेता, शाखा प्रबन्धक, क्षेत्रीय प्रबन्धक और विक्रय प्रबन्धक या संचालक सभी व्यक्ति पूर्वानुमान में सहयोग देते हैं। इसके सम्बन्ध में निम्न कदम उठाने चाहिए :

(अ) गत वर्षों में हुई प्रत्येक वस्तु की बिक्री से सम्बन्धित आंकड़े प्रत्येक विक्रेता को दे दिया जाते हैं। यह सूचना एक खानेदार विवरण–पत्र में दी जाती है और इसमें एक खाना उसे अनुमान के लिए छोड़ दिया जाता है। आवश्यकतानुसार चार खाली खाने–प्रत्येक तिमाही के लिए– और छोड़ दिये जाते हैं। इस प्रकार के विवरण का नमूना अग्र प्रकार का हो सकता है :

(ब) ब्रांच प्रबन्धक व क्षेत्रीय प्रबन्धक से कहा जाये कि वे अपना खुद विक्रय पूर्वानुमान प्रस्तुत करें। ऐसा करते समय प्रबन्धक को चाहिए कि वह विक्रेता के अनुमान को कभी भी ध्यान में न रखे। इन तीनों के अनुमानों का संकलन व एकीकरण करने के बाद उनका मिलान

किया जा सकता है। अगर प्रबन्धक और विक्रेता के अनुमान में अन्तर हो तो उसके सम्बन्ध में कोई–न–कोई समन्वय स्थापित किया जाता है।

(स) इसके बाद विक्रय संचालक को सम्भावित बिक्री का सारांश दिया जाता है। इसको साधारणतया वस्तु क्षेत्र व बिक्री के आधार पर वर्गीकृत करके प्रस्तुत किया जाता है।

(द) इसके बाद प्रमाणित मूल्य निश्चित किये जाते हैं। यह कार्य विक्रय संचालक, बजट अधिकारी व अन्य लेखा–विधि अधिकारी द्वारा मिलकर किया जाता है।

(य) अनुकूलतम संचालन स्तर को ध्यान में रखते हुए यह निश्चित किया जाता है कि किन–किन वस्तुओं के मिश्रित विक्रय पर अधिकतम लाभ होगा।

उपर्युक्त ढंग से संकलित पूर्वानुमान को जब अन्तिम रूप में मान लिया जाता है तो वही विक्रय बजट कहलाता है।

कभी–कभी विक्रय पूर्वानुमान में बाजार अनुसन्धान व सांख्यिकीय विधियों का भी प्रयोग किया जा सकता है। विक्रय पूर्वानुमान के अन्तर्गत भावी मांग का निर्धारण आता है। जब तक संस्था एकाधिकारी नहीं है, उसे यही आशा होनी चाहिए कि निश्चित तिथि पर प्राप्य मांग का कुछ भाग ही भविष्य में भी बना रहेगा। इस प्रकार गत वर्षों के विक्रय सम्बन्धी आंकड़े भविष्य के अनुमान के लिए सहायक होते हैं, परन्तु परिस्थितियां व दशाएं बदलती रहती है। अतः यह बहुत जरूरी है कि बजट अवधि में रहने वली दशाओं के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त किया जा सके।

(3) **विक्रय एवं वितरण लागत बजट** : यह बजट उन तमाम खर्चों के विषय में पूर्वानुमान होता है, जो संस्था की वस्तुओं के विक्रय व वितरण में किये जा सकते हैं। यह बजट विक्रय बजट से अधिक घनिष्ठ सम्बन्ध रखता है, क्योंकि विक्रय पूर्वानुमान पर ही इस प्रकार के खर्चों का पूर्वानुमान निर्भर करता हैं तथापि यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि कुछ खर्चों का प्रभाव भावी विक्रय को प्रभावित कर सकता है।

विक्रय एवं वितरण व्यय बजट के निर्माण का दायित्व विक्रय प्रबन्धक के ऊपर होता है हालांकि वह विक्रय कार्यालय अधीक्षक, वितरण प्रबन्धक या विज्ञापन अधिकारी से भी सहायता ले सकता है। कुछ बड़ी संस्थाएं अलग से विज्ञापन बजट तैयार करती है। इस विक्रय व वितरण बजट के निर्माण हेतु कुल समूह खर्चों को निम्न श्रेणी में बांट लेते हैं:

(अ) प्रत्यक्ष विक्रय व्यय,

(ब) वितरण व्यय,

(स) विक्रय कार्यालय का व्यय,

(द) विज्ञापन पर व्यय

(अ) प्रत्यक्ष विक्रय व्यय के सम्बन्ध में बजट या पूर्वानुमान लगाते समय निम्न बातों को ध्यान में रखना महत्वपूर्ण होता है :

(i) भौगोलिक क्षेत्रों में सम्वर्द्धन या संकुचन का प्रभाव यात्रियों की संख्या व यात्रा व्यय पर पड़ सकता है।

(ii) यात्रियों को पारिश्रमिक भुगतान की विधियां अर्थात् उन्हें स्थायी वेतन दिया जायेगा या लाभ पर कुछ कमीशन भी दिया जायेगा।

(iii) एक निश्चित विशेष वस्तु के विक्रय को बढ़ाने हेतु प्रेरणा के रूप में पारिश्रमिक गणना के आधार में परिवर्तन।

(iv) प्रतिनिधियों की नियुक्ति एवं उनके पारिश्रमिक की रीति।

(v) विक्रय की मात्रा या रकम में अनुमानित परिवर्तन का विक्रय व्यय पर प्रभाव।

(vi) मौसमी परिवर्तनों का विक्रम पर प्रभाव, उदाहरण के लिए, यदि कुल वार्षिक विक्रय का अधिकांश भाग कुछ ही माह में होता है, तो विक्रय व्यय का भार उन्हीं महीनों में अधिक होगा।

(ब) वितरण व्यय : निर्मित माल को संग्रहालय में रखने के सम्बन्ध में इस प्रकार के व्यय किये जाते हैं। इस व्यय के सम्बन्ध में पूर्वानुमान लगाते समय निम्न बातों को ध्यान में रखना आवश्यक होता हैः

(i) आवश्यक भण्डार–गृहों के सम्बन्ध में किये गये किराया, कर, मजदूरी, बीमा, इत्यादि सम्बन्धी खर्चे।

(ii) वस्तुओं को रखने व बेचने के दौरान आवश्यकता पड़ने पर 'हैंडलिंग' का व्यय।

(iii) विक्रय के भौगोलिक नमूने को ध्यान में रखते हुए किया जाने वाला यातायात व्यय।

(iv) यातायात का प्रचार व स्वामित्व।

(स) विक्रय कार्यालय व्यय : इसके अन्तर्गत विक्रय कार्यालय का किराया, कर, प्रकाश, डाक व स्टेशनरी तथा स्टाफ का वेतन, आदि के सम्बन्ध में पूर्वानुमान लगाया जाता है। इस प्रकार के खर्चे विक्रय मात्रा में परिवर्तन होने पर उसी सीमा तक परिवर्तित नहीं होते हैं, जिस सीमा तक प्रत्यक्ष विक्रय व वितरण व्यय परिवर्तित होते हैं।

(द) विज्ञापन व्यय : सामान्यतः प्रबन्ध नीति के रूप में विज्ञापन पर कुल खर्चा निश्चित कर लेता है और उचित दृष्टिकोण से यह खर्चा स्थिर होता है। समय–समय पर

विज्ञापन का प्रकार जैसे, समाचार–पत्र, दुकान की दिखावट, पोस्टर्स प्रदर्शनी तथा उन पर होने वलो खर्चे का अनुमान लगा लिया जाता है।

(4) उत्पादन बजट : जब विक्रय बजट का निर्माण पूरा हो जाता है तो यह आवश्यक हो जाता है कि विक्रय अनुमान व स्कन्ध की मात्रा को पूरा करने के लिए प्रत्येक वस्तु की उत्पादन योग्य इकाई का निर्धारण किया जाय। इसके लिए उत्पादन बजट तैयार किया जाता है। उत्पादन बजट विक्रय बजट की आवश्यकताआं को ध्यान में रखकर ही बनाया जाता है। उत्पादन बजट में केवल उत्पादन–योग्य वस्तुओं की इकाईयों का नहीं, बल्कि उनकी प्रति इकाई लागत और कुल लागत का भी अनुमान लिया जाता है। उत्पादन बजट की तैयारी के लिए यह आवश्यक होता है कि प्रबन्ध निर्मित माल के स्टॉक के सम्बन्ध में सुनिश्चित नीति बनाता हो और साथ–ही–साथ उत्पादन विभाग के पास निश्चित उत्पादन अनुसूचीयन हो। चूंकि उत्पादन अनुसूचीयन में यह निर्धारित करना पड़ता है कि 'कब' और 'कितना' उत्पादन किया जायेगा, अतः यह कार्य मुख्य रूप से फैक्टरी विभाग का होता है। उत्पादन बजट का मुख्य उद्देश्य न्यूनतम लागत पर इतना उत्पादन करना होता है जितना कि व्यापार की मांग के अनुसार आवश्यक हो। यदि विक्रय बजट की आवश्यकतानुसार वस्तु की इकाइयों का उत्पादन सम्भव नहीं है तो विक्रय बजट में ही संशोधन करना पड़ता है।

(5) संयन्त्र : उन व्यवसायों में, जहां प्लाण्ट अधिक मूल्यवान होते हैं, और उत्पादन कार्य मुख्यतः मशीनों की सहायता से किया जाता है, प्लाण्ट बजट बनाना नितान्त आवश्यक होता है। इस प्रकार बजट में सामान्यतः निम्न सूचनाएं शामिल की जाती है :

(अ) विभागानुसार मशीनों की संख्या।

(ब) मशीनों का प्रारम्भिक ह्रास और वर्तमान पुस्तक–मूल्य।

(स) मशीनों का उपयुक्त कार्य व वर्तमान कार्य–भार

(द) मशीनों का कुल जीवन–काल व शेष जीवन–काल।

(य) पुरानी मशीनों की नयी मशीनों द्वारा प्रतिस्थापन की आवश्यकता व उसके लिए आवश्यक धनराशि।

(र) नवीन यन्त्रों से होने वाली अनुमानित आय।

इसी प्रकार अन्य स्थायी सम्पत्तियों के सम्बन्ध में भी बजट तैयार किये जा सकते हैं। परन्तु यह ध्यान में रखना चाहिए कि इन बजटों का समन्वय वित्तीय बजट व उत्पादन में अवश्य होना चाहिए।

(6) प्रत्यक्ष सामग्री बजट : प्रत्यक्ष सामग्री से तात्पर्य उस कच्चे माल से होता है, जिसको निर्मित दशा में परिवर्तित किया जाता है तथा जिसके सहयोग से अन्तिम उत्पादन का निर्माण किया जाता है। इस माल के सम्बन्ध में बजट बनाते समय उत्पदन बजट को ध्यान में रखा जाता है। जिस अवधि के लिए बजट तैयार किया जा रहा हो, उस अवधि में उत्पादन

बजट के आधार पर उत्पादन करने में जितने कच्चे माल की आवश्यकता होगी, उसी के सम्बन्ध में यह बजट बनाया जाता है। स्पष्ट है कि बजट का निर्माण करने से पूर्व कच्चे माल से सम्बन्धित सभी समस्याओं पर विचार कर लिया जाये और उनका निराकरण भी ढूंढ लिया जाये। कुछ माल एक विशेष मौसम में ही प्राप्त होता है और कुछ माल को बाहर से मंगाना पड़ता है तथा कुछ ऐसा माल भी होता है, जिसको पहले ही खरीदकर जमा करने का मतलब व्यर्थ में पूंजी फंसाना होता है। अतः कच्चे माल की बजट की तैयारी में निम्न के बारे में पूर्वानुमान शामिल होता हैः

(अ) उत्पादन बजट के आधार पर निर्धारित अवधि में भण्डार में रखने योग्य सामग्री की मात्रा।

(ब) मंगायी जाने वाली सामग्री की कारखाने में उपलब्धि की तिथियां।

(स) खरीदी जाने वाली सामग्री का मूल्य।

(द) खरीद की शर्त अर्थात् नकद भुगतान करना पड़ेगा या/और उधार भी मिलेगा।

(य) उधार क्रय की शर्तें व भुगतान की अवधि।

उपर्युक्त सूचनाओं में सबसे महत्वपूर्ण सामग्री की मात्रा का पूर्वानुमान है। इसकी संगणना करते समय उत्पादन की मात्रा, प्रति उत्पादन इकाई में सामग्री की बचत, भण्डार तथा उत्पादन कार्य में होने वाला सामान्य–क्षय और असाधारण–क्षय की प्राप्ति, इत्यादि बातों को ध्यान में रखना चाहिए।

(7) प्रत्यक्ष श्रम बजट : उत्पादन बजट में निर्धारित लक्ष्यों की पूर्ति के लिए आवश्यक श्रम–शक्ति का अनुमान ही श्रम बजट कहलाता है। यह निर्विवाद सत्य है बिना पर्याप्त श्रम के उत्पादन के अन्य साधनों का कोई महत्व नहीं होता है और वे निष्क्रिय माने जाते हैं। श्रम के द्वारा ही इन साधनों में जीवन का संचार लाया जाता है। इस प्रकार श्रम बजट की उपयोगिता स्वतः स्पष्ट हो जाती है। श्रम बजट का निर्माण श्रम विभाग द्वारा किया जाता है और बजट में निम्न सूचनाएं सम्मिलित की जाती हैः

(अ) आवश्यक श्रमिकों की संख्या व उनकी श्रेणी।

(ब) विभिन्न श्रेणी के श्रमिकों की मजदूरी की दरें और उन मजदूरी की दरों पर प्राप्त श्रमिकों की संख्या।

(स) प्रत्येक उत्पादन–अवधि में श्रमिकों पर किया जाने वाला कुल खर्च।

(द) श्रमिकों के प्रशिक्षण की सुविधा, उन पर किया जाने वाला खर्च व समय।

(य) श्रमिकों की संख्या में मौसमी परिवर्तन अर्थात् किस मौसम में श्रमिकों की संख्या अधिक होगी।

(र) श्रमिकों की संख्या में प्रदत्त सुविधाएं एवं छुट्टियों का विवरण।

(8) अनुसन्धान तथा विकास बजट : आधुनिक प्रतिस्पर्द्धा के युग में प्रत्येक व्यवसायिक संस्था को लागत व्यय कम करने में श्रेष्ठतम उत्पादन करने के लिए चाहिए कि वह हमेशा सामान्य व तकनीकी विषयों पर अनुसन्धान करती रहे और विकास सम्बन्धी योजना बनाती रहे। इसके सम्बन्ध में किया जाने वाला खर्च एक प्रकार का विनियोग ही होता है, बेकार खर्च नहीं। अतः इसके सम्बन्ध में भी बजट बना लेना आवश्यक होता है। शोधकार्य द्वारा वस्तुओं के गुण व किस्म में ऐसा परिवर्तन लाया जा सकता है कि वह समय की मांग को पूरा कर सके। अनुसन्धान तथा विकास बजट का हमेशा वित्तीय बजट से सम्बन्ध होता हे और प्रत्येक वर्ष के लाभ का कुछ भाग इस कार्य के लिए अलग रख दिया जाता है।

(9) अप्रत्यक्ष व्यय बजट : उत्पादन के सम्बन्ध में किये जाने वाले अप्रत्यक्ष खर्चों के सम्बन्ध में एक अलग से बजट बनाया जा सकता है। चूंकि अप्रत्यक्ष व्यय विभिन्न क्रियाओं से सम्बन्धित होते हैं, अतः इस प्रकार के बजट को कई भागों में विभक्त किया जा सकता है। प्रथम, कारखाना अप्रत्यक्ष व्यय बजट जिसका सम्बन्ध उत्पादन विभाग से होता है। अतः इससे सम्बन्धित आंकड़े उत्पादन विभागाध्यक्ष से प्राप्त हो सकते हैं। द्वितीय, विक्रय अप्रत्यक्ष व्यय बजट जिसका सम्बन्ध विक्रय विभाग से होता है। तीसरे, प्रशासन अप्रत्यक्ष व्यय बजट जिसका सम्बन्ध प्रशासन से होता है। चौथे, वित्तीय अप्रत्यक्ष व्यय बजट जिसमें ऐसे खर्चे शामिल होते हैं जिनका लेखा लागत लेखा–विधि में नहीं आता, जैसे, कर छूट, अप्राप्य ऋण, आदि। इस विषय में जानकारी प्रमुख लेखापालक से प्राप्त की जा सकती है।

(10) वित्तीय बजट : वित्तीय बजट एक प्रकार के अनुमानित आय व व्यय के आंकड़े होते हैं जिनके आधार पर संस्था की कार्यशील पूंजी का सही अनुमान लगाया जाता है। अन्य शब्दों में, वित्तीय बजट के अन्तर्गत पूर्वानुमानित स्थिति–विवरण व लाभालाभ खाते आते हैं जिनके आधार पर यह ज्ञात किया जाता है निश्चित बजट अवधि के अन्त में संस्था के पास कितनी रकम नकद धन के रूप में शेष रहेगी। इस बजट के आधार पर ही व्यवसाय का मालिक या रोकड़िया यह अनुमान लगा पाता है कि एक निश्चित अवधि में व्यापारिक क्रियाओं के सम्पादन में नकद धन की कितनी आवश्यकता पड़ेगी। इस वित्तीय बजट में मुख्य रूप से 'नकद धन बजट' और 'पूंजी खर्च बजट' आते हैं जिनका विस्तारपूर्वक अध्ययन पहले किया जा चुका है।

# बजटरी नियन्त्रण

बजटरी–नियंत्रण बजटों के माध्यम से प्रबन्धकीय नियन्त्रण की एक तकनीक है। यह प्रबन्ध और लेखा–नियन्त्रण की एक ऐसी विधि है जिसके द्वारा कार्य–विधियों, बिक्री तथा उत्पादन की एक निश्चित समय पूर्व ही भविष्यवाणी कर दी जाती है और जब वास्तविक परिणाम मालूम हो जाते हैं तो उनकी तुलना भविष्यवाणी या बजट में निर्धारित लक्ष्यों से की जाती है। वस्तुतः यह बजट प्रमापों के आधार पर व्यावसायिक क्रियाओं के नियन्त्रण अथवा मूल्यांकन की एक तकनीक है।

कुछ महत्वपूर्ण परिभाषायें :

(1) ''किसी नीति की आवश्यकताओं के लिये अधिशासियों के उत्तरदायित्वों से सम्बन्धित विभागीय बजट तैयार करना तथा वास्तविक परिणामों की बजट के परिणामों से सतत् तुलना करना जिससे उस नीति के उद्देश्यों की प्राप्ति अथवा उस नीति के परिवतर्नन के लिए दृढ़ आधार प्रस्तुत किया जा सके।'' –सी.आई.एम.ए., लन्दन

(2) ''बजटरी नियन्त्रण एक ऐसी पद्धति है जिसमें बजटों का वस्तुओं अथवा सेवाओं के उत्पादन और/अथवा विक्रय के समस्त पहलुओं को नियोजित और नियन्त्रित करने के साधन के रूप में प्रयोग किया जाता है।'' –जे. बैटी

(3) ''बजटरी नियन्त्रण परिव्ययों पर नियन्त्रण करने की एक पद्धति है जिसमें बजटों को तैयार करना, विभागों को समन्वित करना और दायित्व निश्चित करना, वास्तविक निष्पादनों का बजट के अंकों से तुलना करना और अधिकतम लाभप्रदता प्राप्त करने के लिए परिणामों पर कार्य करना सम्मिलित है।'' – ब्राउन और हावार्ड

(4) ''बजटरी नियन्त्रण किसी व्यवसाय के विभिन्न कार्यों का पूर्व नियोजन है जिससे सम्पूर्ण व्यवसाय नियन्त्रित किया जा सके। – वैल्डन

(5) ''बजटरी नियन्त्रण शब्द प्रबन्ध एवं लेखा–नियन्त्रण की उस पद्धति के लिए प्रयोग किया जाता है जिसके द्वारा सभी क्रियाकलापों एवं उत्पादन का यथा–सम्भव पहले से ही पूर्वानुमान लगा लिया जाताहै और जब वास्तविक परिणामों का पता लगता है तो उनकी तुलना बजट–अनुमानों से की जाती है। – बिग

(6) ''बजटरी नियन्त्रण में सारे अवधि बजटों व बजटरी प्रतिवेदनों का प्रयोग निहित है, जिसमे द्वारा बजट के निर्दिष्ट लक्ष्यों के अनुसार दैनिक क्रियाकलापों का समन्वय, मूल्यांकन एवं नियन्त्रण किया जाता है।'' – वैल्श

उपर्युक्त परिभाषाओं का विश्लेषण करने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि बजटरी नियन्त्रण का आशय बजट के अन्तर्गत निर्धारित प्रमापों को प्राप्त करने के लिये अपनाई गई कार्य–विधि पर नियन्त्रण करना है।

बजटरी नियन्त्रण की विशेषतायें :

इसके अन्तर्गत निम्न क्रियायें सम्मिलित हैः

(1) नियोजन : इसका आशय प्रत्येक विभाग के लिए योजना बनाने अर्थात् उद्देश्य निर्धारित करने तथा इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए नीति या नीतियां निर्धारित करने से होता है।

(2) समन्वय : इसका आशय विभिन्न विभागीय योजनाओं में समन्वय स्थापित करने तथा सम्पूर्ण व्यवसाय के लिए समन्वित बजट बनाने से है। बजटरी नियन्त्रण के अन्तर्गत प्रत्येक विभागाध्यक्ष अपने विभाग के लिए बजट तैयार करता है। इस विभागीय बजटों से एक मास्टर बजट बनाया जाता है जोकि विभिन्न विभागों के बीच समन्वय स्थापित करता है।

(1) अभिलेखन : इसका आशय व्यवसाय की प्रत्येक क्रिया के वास्तविक निष्पादन का पुस्तकों में अभिलेखन से होता है। ये समंक ही तुलना का आधार होते हैं।

(1) नियन्त्रण : नियन्त्रण के लिए वास्तविक निष्पादन की बजट के अंकों से तुलना की जाती है।

(1) समीक्षा : इसका आशय वास्तविक निष्पादन और बजट–प्रमापों में तुलना करने पर ज्ञात विचलनों के विश्लेषण से है। इसमें विचलन के कारणों और उनके लिए उत्तरदायी अधिकारियों की खोज की जाती है।

(1) अनुवर्तन : इसका आशय परिस्थितियों में सुधार करने के लिए तत्काल उपायों से हैं। प्रतिकूल विचलनों को रोकने तथा अनुकूल विचलनों को प्रोत्साहित करने के लिए प्रबन्ध द्वारा कार्यवाही की जाती है। यदि विचलनों को दूर करना सम्भव नहीं तो योजना के लक्ष्यों में संशोधन किया जाता है।

## बजटरी नियन्त्रण के उद्देश्य

बजटरी नियन्त्रण के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैः

(1) व्यवसाय के सुसंचालन के लिए विधिवत् नियोजित करना और उत्पाद पर मौसमी परितर्वनों के कुप्रभावों को दूर करना।

(2) व्यवसाय की समस्त क्रियाओं में समन्वय स्थापित करना। बजटरी नियन्त्रण से विभिन्न विभागीय क्रियाओं को इस प्रकार समन्वित किया जाता है जिससे कि सभी विभाग संस्था के समान उद्देश्य की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील रहें।

(3) विभागीय क्रियाओं पर सर्वोच्च प्रबन्ध का नियन्त्रण सफल बनाना।

(4) सर्वोच्च प्रबन्ध को प्रशासकीय शक्ति व उत्तरदायित्व के विकेन्द्रीकरण में सहायता करना।

(5) जब अप्रत्याशित दशायें बजट को प्रभावित करें तो प्रबन्ध–निर्णयों में मार्गदर्शन करना।

(6) किसी संयन्त्र के विभागों, उप–विभागों और लागत केन्द्रों का कुशलतम तरीके से संचालन।

(7) आगमों और व्ययों को नियोजित एवं नियन्त्रित करके तथा अपव्ययों को रोक करके व्यवसाय को अधिकतम कार्यकुशल और लाभप्रद बनाना तथा विनियोजित पूंजी पर उचित प्रत्याय आश्वस्त करना।

(8) स्कन्ध नियन्त्रण कुशल बनाना।

(9) व्यवसाय के पूंजी व्ययों को पूर्व–निर्धारित करना व उनकी अधिकतम लाभप्रद दिशायें निर्देशित करना।

(10) विकास एवं अनुसंधान पर नियन्त्रण।

(11) व्यवसाय में पर्याप्त कार्यशील पूंजी की व्यवस्था करना जिससे उत्पादन कार्य निर्विध्न चलता रहे।

(12) पूंजी को अधिक मितव्ययी उपयोग में लगाना।

(13) वास्तविक परिणामों के मूल्यांकन का आधार प्रदान करना। इसके लिए वास्तविक निष्पादनों की बजट के पूर्वनिर्धारित लक्ष्यों से तुलना की जाती है।

(14) विभिन्न विभागाध्यक्षों के दायित्व का निर्धारण करना और इन्हें क्षम्य बनाना।

(15) प्रबन्ध को सुधारात्मक कार्यवाही के लिए उपयुक्त अवसर बतलाना।

(16) सभी विभागीय अधिकारियों में सहयोग की भावना विकसित करना।

बजटरी नियन्त्रण का संगठन अथवा बजटरी नियन्त्रण पद्धति की रूपरेखा

बजटरी नियन्त्रण पद्धति का तात्पर्य सावधानीपूर्वक तैयार की गई उस योजना से है जिसके अन्तर्गत किसी निश्चित अवधि की आय, परिव्यय व अन्य व्ययों का पूर्वानुमान करके विक्रय, उत्पादन व प्रशासनिक क्रियाओं में सामंजस्य स्थापित किया जाता है तथा बजट के अंकों व वास्तविक अंकों की निरन्तर तुलना करके अन्तर के कारणों का पता लगाया जाता है और अवांछनीय कारणों को दूर करके वांछनीय कारणों को प्रोत्साहित करने का प्रयत्न किया जाता है।

बजटरी निन्त्रण प्रबन्ध–नियन्त्रण की एक महत्वपूर्ण तकनीक है। इसकी प्रभावशीलता इसके संगठन की कुशलता पर निर्भर करती है। किसी व्यावसायिक संस्था में बजटरी नियन्त्रण पद्धति का रूप व्यवसाय के आकार व प्रकृति पर निर्भर करता है। एक बड़ी संस्था में इस पद्धति के स्थापन के लिए निम्नलिखित कदम उठाना आवश्यक है–

(1) बजट केन्द्रों की स्थापना : सर्वप्रथम संस्था में बजट केन्द्र स्थापित किये जायें। प्रत्येक केन्द्र के अध्यक्ष के सहयोग से ही उस केन्द्र का बजट तैयार किया जाता है।

(2) पर्याप्त लेखा–अभिलेखों का समावेश : व्यवसाय में प्रयुक्त लेखांकन पद्धति में बजटरी नियन्त्रण पद्धति की आवश्यकात के अनुकूल समुचित समायोजन किये जायें। अतः लेखांकन पद्धति में सूचनाओं को इस प्रकार अभिलिखित व विश्लेषित किया जाये जिससे प्रत्येक बजट केन्द्र से सम्बन्धित सभी आवश्यक सूचनायें सरलता से प्रापत हो जायें।

(3) बजट तकनीक के बारे में सामाान्य निर्देश : संस्था में जो भी व्यक्ति इस पद्धति के क्रियान्वयन से सम्बन्ध रखते हैं (अर्थात् विभिन्न विभागाध्यक्ष) उन्हें बजट तकनीक के विषय में पर्यापत शिक्षा दी जाये। प्रत्येक व्यक्ति को उसके विभाग के लिए निर्धारित लक्ष्यों तथा इन लक्ष्यों की प्राप्ति में उससे अपेक्षित भूमिका से अवगत कराया जाये।

(4) संगठन चार्ट का निर्माण : इसमें प्रबन्ध के प्रत्येक सदस्य के कार्यात्मक उत्तरदायित्वों को परिभाषित किया जाता है जिससे प्रत्येक सदस्य के कार्यात्मक उत्तरदायित्वों को परिभाषित किया जाता है जिससे प्रत्येक सदस्या को संस्था में उसी स्थिति तथा दूसरे सदस्यों से उसके सम्बन्ध की जानकारी हो जाये। संगठन चार्ट स्पष्टतया संस्था के आकार व प्रकृति पर निर्भर करता है। एक बड़ी संस्था के लिए संगठन चार्ट का उचित प्रारूप नीचे दिया गया है।

(5) बजट समिति की स्थापना : छोटी संस्थाओं में लेखापाल ही सर्वोच्च प्रबन्ध व विभिन्न विभागाध्यक्षों के परामर्श से बजट तैयार करता है किन्तु बड़ी संस्थाओं में एक बजट समिति स्थापित कर दी जाती है जो कि बजट निर्माण व बजट पद्धति के सम्पूर्ण नियन्त्रण के लिए उत्तरदायी होती है। संस्था के सभी महत्वपूर्ण विभागों के अध्यक्ष इस समिति के सदस्य होते हैं। बजट समिति का सचिव प्रबन्ध–लेखापाल होता है, जिसे बजट अधिकारी कहते हैं तथा अध्यक्ष प्रबन्ध संचालक होता है। संस्था के बजट निर्माण व संचालन में इस समिति की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण होती है। यह समिति विभिन्न विभागों से प्राप्त बजट पूर्वानुमानों पर विचार करती है, उनमें समन्वय स्थापित करती है तथा बदलती हुई परिस्थितियों के अनुकूल पूर्वानुमान तैयार करने के लिए आवश्यक निर्देश देती है। इस प्रकार इस समिति के विभिन्न कार्य निम्नलिखित हैः

(1) पूर्वानुमान में सहायता के लिए प्रबन्ध को आवश्यक भूतकालीन सूचनायें प्रदान करना।

(2) बजट अपेक्षाओं, बजट अनुमानों के प्राप्त होने की अन्तिम तिथि आदि बातों के सम्बन्ध में निर्देश जारी करना।

(3) बजट के सम्बन्ध में प्रबन्ध की सामान्य नीतियों को स्पष्ट करना।

(4) विभिन्न विभागाध्यक्षों को बजट निर्माण के लिये आवश्यक भूतकालीन समंक प्रदान करना।

(5) बजटों के निर्माण में सलाह देना।

(6) बजटों पर पुनर्विचार करना।

(7) विभिन्न विभागीय बजटों में समन्वय स्थापित करना।

(8) बजटों में परिवर्तन और सुधार के लिए सुझाव देना।

(9) बजटों पर स्वीकृति प्रदान करना।

(10) नियत अवधि के अन्तर्गत बजट तैयार करना व प्रबन्ध के समक्ष पेश करना।

(11) जहां आवश्यक हो, बजट सारांश तैयार करना।

(12) विभिन्न विभागीय बजटों पर प्रबन्ध का अनुमोदन लेना तथा उनसे मास्टर बजट तैयार करना।

(13) बजटीय और वास्तविक परिणामों की तुलना तथा विश्लेषण करना।

(14) पूछे जाने पर प्रबन्ध को सुधारात्मक कार्यवाही के लिए सलाह देना।

(15) समस्त बजट कार्यक्रम में समन्वय स्थापित करना।

(6) बजट पुस्तिका का निर्माण : सी.आई.एम.ए. लंदन के अनुसार, ''सामान्यता यह खुले पन्नों के रूप में होती है जिससे आवश्यकता पड़ने पर उसमें सरलता से परिवर्तन किये जा सकें तथा समय–समय पर अधिकारियों की मांग पर उसके उचित भाग उन्हें नियमित किये जा सकें। इस पुस्तिका के आरम्भ में एक विषय सूची भी दी जाती है। इस पुस्तिका में सामान्यतया निम्नलिखित सूचनायें दी होती है :

(अ) पद्धति का वर्णन और इसके उद्देश्य

(ब) पद्धति के संचालन में अपनायी जाने वाली विधि।

(स) विभिन्न अधिकारियों के उत्तरदायित्वों व कर्तव्यों की व्याख्या।

(द) प्रत्येक बजट अवधि के लिए आवश्यक प्रतिवेदन व विवरण।

(7) बजट अवधि का निर्धारण : सी.आई.एम.ए. लंदन के अनुसार, सभी बजटों के लिए कोई एक प्रमापित अवधि नहीं निर्धारित की जा सकती है। बजट अवधि ऐसी होनी चाहिये जिसमें सरलता से व्यावसायिक भविष्यवाणी की जा सके। यह अवधि व्यवसाय की प्रकृति, उत्पादन विधि, भविष्य में बाजार दशाओं की स्थिरता, नियन्त्रण की सीमा आदि बातों पर निर्भर करती है। सामान्यतया बजट अवधि एक वर्ष रखी जाती है परन्तु कुछ व्यवसायों में छमाही या तिमाही बजट तैयार करना आवश्यक हो सकता है। इसी तरह कुछ व्यवसायों के परिणामें दीर्घकाल में स्पष्ट होते हैं। अतः उनके लिए लम्बी अवधि के बजट बनाये जाते हैं। सामयिक या मौसमी परिवर्तन वाले व्यवसायों (जैसे चीनी मिल) में बजट अवधि ऐसी रखी जाती है

जिसमें क्रियाओं का चक्र सम्मिलित हो जाये। यह आवश्यक नहीं है कि एक व्यवसाय में सभी बजट एक ही अवधि के हों। क्रय बजट वार्षिक बनाया जाता है जबकि विक्रय बजट 3 या 5 वर्ष के लिए बनाया जा सकता है।

नियन्त्रण के उद्देश्य से बजट अवधि को कई लघु अवधियों में बांट दिया जाता है जिन्हें नियन्त्रण अवधि कहते हैं। नियन्त्रण अवधि व्यवसाय की प्रकृति तथा प्रत्येक उत्तरदायित्व केन्द्र की विशिष्टता के आधार पर निश्चित की जाती है।

(8) मुख्य कारक का निर्धारण : व्यावसायिक बजटन में 'मुख्य कारक' का विशेष महत्व रहता हैं यह कार्यात्मक बजटों के तैयार करने में प्राथमिकतायें निर्धारित करता है। सी. आई.एम.ए. लंदन के अनुसार, '' यह वह कारक है जिसके प्रभाव की सीमा, कार्यात्मक बजटों के समुचित रूप में पूर्णतया योग्य होने को आश्वस्त करने के लिए, पहले आँक लेना चाहिये।'' इसे रोक लगाने वाला कारक', 'शासी कारक' अथवा 'मुख्य बजट कारक' भी कहते है।; यह व्यवसाय की उत्पादन और/अथवा विक्रय क्षमता को सीमित करता है। यह ध्यान रखना चाहिये कि प्रत्येक बजट अवधि में उसी मुख्य कारक का होना आवश्यक नहीं। परिस्थितियों में परिवर्तन आने पर मुख्य कारक भी बदल जाता है। प्रत्येक उद्योग में कोई न कोई मुख्य कारक अवश्य रहता है जो कि व्यवसाय की लाभार्जन क्षमता को सीमित करता है। एक उद्योग में एक ही समय पर दो या अधिक प्रमुख कारक पाये जा सकते हैं। उद्योगों में सामान्यतया निम्न मुख्य कारक पाये जाते हैं:

(1) सामग्री– (अ) पूर्ति की उपलब्धता

(ब) लाइसेंस, कोटा आदि के कारण प्रतिबन्ध।

(2) श्रम– (अ) श्रमिकों की सामान्य कमी।

(ब) कुछ प्रमुख विधियों में श्रमिकों की कमी।

(3) संयंत्र – (अ) पूर्ति की कमी के कारण अपर्याप्त क्षमता

(ब) पूंजी की कमी के कारण अपर्याप्त क्षमता।

(स) स्थान की कमी के कारण अपर्याप्त क्षमता।

(द) बाजारों की कमी के कारण अपर्याप्त क्षमता।

(इ) कुछ प्रमुख विधियों में अड़चने।

(4) विक्रय –(अ) कम उपभोक्ता मांग या उपभोक्ताओं का विरोध।

(ब) धन की कमी के कारण अपर्याप्त या अकुशल विज्ञापन।

(स) अच्छे व अनुभवी विक्रेताओं की कमी।

(5) प्रबन्ध – (अ) पूंजी की कमी।

(ब) तकनीकी ज्ञान की कमी।

(स) कुशल प्रशासनिक अधिकारियों की कमी।

(द) उत्पादन की डिजाइन और पद्धतियों में अपर्याप्त शोध।

(इ) नीति निर्णय, जैसे विक्रय–मूल्य को पूर्व स्तर पर बनाये रखने के लिए उत्पादन सीमित करना।

किसी उद्योग में उपर्युक्त में से कोई भी तत्व प्रमुख कारक हो सकता है। बजटन में इसका बहुत महत्व है क्योंकि यह विभागीय बजटों में प्राथमिकतायें निर्धारित करता हैं व्यवसाय में जो प्रमुख बजट कारक होता है, उसी क्रिया का बजट पहले तैयार किया जाता है। इस कारक के ही कारण विभागीय बजटों के समन्वय में जटिलतायें उत्पन्न होती है। यह कारक प्रबन्ध की उत्पादन और विक्रय नीतियों को भी प्रभावित करता है। अधिकतर उद्योगों में विक्रय ही मुख्य कारक रहता है। अतः सबसे पहले विक्रय बजट तैयार किया जाता है जिसके आधार पर अन्य बजटों में आवश्यक समायोजन किये जाते हैं।

बजट तैयार करते समय प्रबन्धक को बजट कारक का पता कर लेना चाहिये और यदि हो सके तो उसे दूर करने के लिए आवश्यक प्रयास करने चाहिये। किसी कारक का एक स्थायी रूप से प्रमुख कारक होना आवश्यक नहीं। वास्तव में अधिकतर दशाओं में यह केवल अल्पकालिक होता है। दीर्घकाल में प्रबन्ध लगभग प्रत्येक कारक पर विजय प्राप्त कर सकता है। अपने प्रयत्नों द्वारा प्रबन्ध अल्पकाल में भी कुछ सीमा तक इस पर विजय प्राप्त कर सकता है।

(9) क्रियाशीलता का स्तर–निश्चित करना : संस्था में क्रियाशीलता का सामान्य स्तर निश्चित करना बहुत आवश्यक है। यह पूर्वानुमान में बहुत महत्वपूर्ण है। इसी के आधार पर सामग्री व श्रम आवश्यकता की भविष्यवाणी की जाती है। इसी से ही उत्पादन उपरिव्यय बजट तैयार किया जाता है।

(10) बजट प्रतिवेदनें : केवल बजट बनाने का कोई लाभ नहीं जब तक कि वास्तविक परिणामों की उनके लिए निर्धारित बजटीय अंकों से तुलना न की जाये। इस तुलना के परिणाम शीघ्र ही प्रबन्ध को सूचित किये जाने चाहिए। अतः वास्तविक और बजटीय व्ययों के बीच अन्तर तथा उनके कारण और उनके लिये उत्तरदायी विभाग या अधिकारी का स्पष्ट उल्लेख करते हुए बजट प्रतिवेदनें आवधिक प्रस्तुत की जानी चाहिए जिससे प्रबन्ध समय पर समुचित सुधारात्मक कार्यवाही कर सके।

**प्रभावशील बजट प्रणाली या बजटरी नियन्त्रण पद्धति की आवश्यक बातें**

(1) सर्वोच्च प्रबन्ध का समर्थन : प्रभावशाली बजट प्रणाली के लिए यह आवश्यक है कि इसे सर्वोच्च प्रबन्ध का पूर्ण समर्थन मिलता रहे।

(2) सुदृढ़ एवं कुशल संगठन : बजट की सफलता इसके संचालन के लिए संस्था में स्थापित संगठन से भी प्रभावित होती है। यह कार्य योग्य, अनुभवी, दूरदर्शी व निष्पक्ष अधिकारियों को सौंपा जाये। प्रत्येक संस्था में समान्यतया इसके लिए एक बजट समिति स्थापित की जाती है।

(3) निश्चित दायित्व रेखायें : प्रभावशील बजटन के लिए दायित्वों का स्पष्ट निर्धारण आवश्यक है जिससे बजट के प्रत्येक भाग के लिए किसी न किसी अधिकारी को उत्तरदायी ठहराया जा सके।

(4) सतत् सतर्कता : बजट प्रणाली के अन्तर्गत बजट के लक्ष्यों तथा वास्तविक परिणामों के बीच निश्चित समय पर तुलना करने तथा प्रतिकूल परिस्थितियों के पता लगते ही उनकी रोकथाम तथा उपचार के लिए तुरन्त कार्यवाही की व्यवस्था होनी चाहिए।

(5) स्पष्टतः परिभाषित नीतियां : यह आवश्यक है कि प्रबन्ध की व्यावसायिक नीतियां स्पष्ट एवं पूर्व निश्चित हों जिससे कि बजट की तैयारी और उसके क्रियान्वयन में कोई बाधा न आये।

(6) सांख्यिकीय सूचनाओं की उपलब्धि : यह आवश्यक है कि प्रत्येक विभाग को उसके लिए आवश्यक सूचनायें सरलता से प्राप्त होती रहें।

(7) शुद्ध लेखांकन प्रणाली : प्रभावशील बजटन के लिए शुद्ध लेखा–विधि प्रणाली अपरिहार्य है। इससे संस्था के प्रत्येक भाग के लिए आवश्यक समुचित समंक उपलब्ध होते हैं तथा स्पष्ट उत्तरदायित्व निश्चित करना सम्भव होता है।

(8) पूर्व एवं नियोजित लागत लेखा–विधि : बजटन की सफलता पूर्वानुमानों की शुद्धता पर निर्भर करती है। लागत समंकों के सही एवं शुद्ध पूर्वानुमान के लिए संस्था में एक पूर्ण एवं कुशल लागत लेखा–विधि आवश्यक होती है।

(9) बजट की तैयारी में तर्कसंगत क्रम : यह आवश्यक है कि बजट अंकों के तर्कसंगत क्रम में तैयार करने, पेश करने, जांच करने व पुनर्विचार के लिए उचित कार्यविधि विकसित की जाये। इसलिए यह उचित होगा कि बजट बनाने का कार्य एक बजट समिति को सौंप दिया जाये तथा सभी महत्वपूर्ण विभागाध्यक्ष इस समिति के सदस्य हो। यह समिति विभिन्न बजटों में समन्वय स्थापित करती है।

(10) उत्तरदायी अधिकारियों द्वारा सहभागिता : बजट के तैयार करने, उत्तरदायित्वों के निर्धारित करने तथा निष्पादन के मूल्यांकन में संस्था के उत्तरदायी अधिकारियों को आमन्त्रित किया जाये।

(11) सतत् बजट शिक्षा : बजट प्रणाली की प्रभावशीलता इस बात पर निर्भर करती है कि यह उन व्यक्तियों में रुचि बनाये रख सके जो कि इसके क्रियान्वयन के लिए उत्तरदायी

है। इसके लिए सतत् बजट शिक्षा आवश्यक है। इसमें कर्मचारियों को बजटन के उद्देश्य, सम्भाव्यताओं और तकनीकों से तथा इसके उपयोग व सीमाओं से अवगत कराया जाये।

(12) समुचित प्राप्य लक्ष्य : बजट के लक्ष्य ऐसे हों जिन्हें उचित प्रयत्न करने पर प्राप्त किया जा सके।

(13) बजट अवधि : बजट अवधि व्यवसाय की प्रकृति के अनुसार उचित होनी चाहिए। यह अवधि ऐसी होनी चाहिये जिससे कि सभी प्रकार की वित्तीय एवं उत्पादन क्रियाओं तथा मौसमी परिवर्तनों को शामिल किया जा सके। सामान्यतया यह एक वर्ष होती है।

(14) लोच : बजटन में पर्याप्त लोच रहना चाहिए जिससे भविष्य की बदलती हुई परिस्थितियों में बजट के कार्यक्रमों में आवश्यक परिवर्तन किये जा सके।

(15) उचित प्रेरणा : बजट प्रणाली इस प्रकार अपनायी जाये कि जिससे कुशल एवं परिश्रमी कर्मचारियों को उचित प्रोत्साहन मिल सके।

बजटरी नियन्त्रण के लाभ

बटरी नियन्त्रण से व्यावसायिक नीति, योजनायें और क्रियायें समन्वित, एकीकृत व नियन्त्रित की जाती है। ब्लौकर और वैलमर के शब्दों, ''बजटरी नियन्त्रण की व्यवस्था उत्तरदायित्व एवं अधिकार का विभाजन करने में प्रबन्ध की सहायता करने, भविष्य के लिए अनुमान एवं योजनायें तैयार करने, अनुमानित एवं वास्तविक परिणामों के बीच विचलनों के विश्लेषण करने में सहायता करने और कार्य–कलाओं की कुशलता का मूल्यांकन करने लिये माप का आधार या प्रमाप विकसित करने हेतु की जाती है।'' बजटरी नियन्त्रण से निम्नलिखित लाभों की प्राप्ति की आशा की जा सकती है:

(1) नियोजन में सुधार : इसमें निम्नलिखित लाभों का समावेश किया जाता है :

(अ) भावी परिस्थितियों पर बुद्धिमतापूर्वक विचार : बजट प्रणाली प्रबन्ध को व्यापार की भावी समस्याओं पर पहले से ही विचार करने के लिए प्रोत्साहित करती है। इससे प्रबन्ध व्यापार की भावी समस्याओं के प्रति पहले से ही जागरूक हो जाता है और इसके समाधान के लिए पहले से ही आवश्यक उपाय कर सकता है।

(ब) व्यापारिक क्रियाओं में स्थायित्व : बटटरी नियन्त्रण में व्यावसायिक क्रियाओं को विभिन्न नियन्त्रण अवधियों में विभाजित किया जाता है। इससे व्यवसाय को सामयिक या मौसमी परिवर्तनों से दूर किया जा सकता है और व्यापार चक्रों के कुप्रभावों से बचाया जा सकता है। इससे व्यावसायिक क्रियाओं में स्थायित्व लाया जा सकता है।

(स) अधिकार एवं दायित्वों का अन्तरण : बटरी नियन्त्रण पद्धति में बहुत से उत्तरदायित्व केन्द्र (बजट केन्द्र) स्थापित किये जाते हैं। इससे प्रबन्ध बड़ी सरलता से अधिकार एवं उत्तरदायित्व का अनतरण करके भी सम्पूर्ण नियन्त्रण अपने हाथ में रख सकता है। अतः

बजट प्रणाली से व्यवसाय के प्रत्येक कार्य के लिए एक निश्चित व्यक्ति को उत्तरदायी ठहराया जा सकता है।

(द) उद्देश्यों का स्पष्टीकरण : बजट प्रणाली में प्रत्येक कर्मचारी को अपने कार्य–क्षेत्र, कार्य–मात्रा, उत्तरदायित्व, अधिकार सीमा के सम्बन्ध में कोई भ्रम नहीं रहता। प्रबन्ध–संचालक से लेकर एक पर्यवेक्षक तक यह जानता है कि निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए उसे क्या करना है। प्रत्येक अधिकारी को अपने विभाग की क्रियाओं के संचालन में कुशलता प्रदिर्शत करने का अवसर रहता है। इससे उनमें कर्त्तव्य परायणता की भावना बढ़ती है।

(इ) साधनों का सदुपयोग : बजटरी नियन्त्रण में कार्य के लक्ष्य तथा उत्तरदायित्व निश्चित हो जाने से कर्मचारी सतर्क हो जाते हैं और संस्था के सीमित साधनों के अधिकतम लाभदायक प्रयोग के लिए प्रयत्नशील रहते हैं। इससे मानव, मशीन व सामग्री के प्रयोग में कुशलता आती है तथा अपव्यय की सम्भावनायें कम होती है। रोकड़ प्राप्तियों और रोकड़ भुगतानों के पूर्वानुमान से एक वित्तीय प्रबन्धक व्यवसाय के फालतू कोषों के सर्वोत्तम उपयोग के लिए योजना बना सकता है तथा रोकड़ की कमी की स्थिति में पहले से ही उधार की व्यवस्था कर सकता है।

(फ) नियोजन से निश्चितता : बजट–प्रणाली में सभी व्यावसायिक क्रियाओं को आंकड़ों के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। इससे नियोजन में निश्चितता आती है।

(ज) संस्था के समपार्शिवक मूल्य में वृद्धि : बटरी नियन्त्रण सुदृढ़ नियोजन व कुशल प्रबन्ध का सूचक माना जाता है। बैंक व अन्य वित्तीय संस्थायें किसी व्यावसायिक संस्था को ऋण देने से पूर्व उसकी भावी योजनाओं के प्रति आश्वस्त होना चाहती है। इसके लिए बजट–प्रणाली बहुत उपयोगी होती है।

(2) समन्वय में सहायक : इसके अन्तर्गत निम्नलिखित लाभों को सम्मिलित किया जा सकता है :

(अ) सन्तुलित कार्य–कलापों को प्रोत्साहन : बजट–प्रणाली से व्यवसाय की विभिन्न क्रियाओं, विभागों तथा कर्मचारियों के कार्यों में प्रभावपूर्ण समन्वय स्थापित किया जाता है। इससे सन्तुलित कार्य–कलापों को प्रोत्साहन मिलता है और संस्था में अति उत्पादन या कम उत्पादन, सामग्री की कमी या प्रचुरता आदि की समस्याऐं स्वयं ही दूर हो जाती है।

(ब) सहयोग तथा दल भावना का प्रोत्साहन : बजट तैयार करने में सभी विभागाध्यक्षों का सहयोग रहता है तथा विभागीय बजट एक–दूसरे से सम्बन्धित होते हैं। इससे विभिन्न विभागाध्यक्षों में मनमुटाव कम हो जाता है तथा उनमें व्यवसाय के सामान्य उद्देश्यों के लिये सहयोग व मिल–जुलकर काम करने की भावना रहती है।

(स) बजटरी नियन्त्रण से व्यावसायिक नीतियों, योजनाओं व कार्य–कलापों में पूर्ण समन्वय लाया जा सकता है।

(3) विस्तृत नियन्त्रण : बजटरी नियन्त्रण व उत्तरदायित्व निर्धारण और वास्तविक निष्पादन की बजट से निरन्तर तुलना होते रहने से प्रबन्ध व्यावसायिक क्रियाओं पर प्रभावशाली नियन्त्रण स्थापित करने, लागत नियन्त्रण प्रभावशाली बनाने तथा सुधारात्मक कार्यवाहियों में सफल होता है। वास्तव में बजटरी नियन्त्रण विभागीय अधिकारियों के कार्य–कलापों के मूल्यांकन का एक बहुत ही उपयोगी यन्त्र है। वास्तविक निष्पादन की बजट अंकों से तुलना करने से त्रुटि की प्रकृति तथा उसके लिए उत्तरदायी अधिकारी का पता लगता है। इससे प्रबन्ध अवांछनीय प्रवृत्तियों का यथाशीघ्र निवारण कर सकता है। बजटरी नियन्त्रण व्यावसायिक संस्था की आधारभूत नीतियों की सामयिक जांच का भी एक उपयुक्त साधन है।

(4) अन्य लाभ :

(अ) प्रमाप परिव्ययन में सहायता : बजट प्रणाली के प्रयोग से प्रमाप परिव्यय पद्धति की स्थापना में सुविधा होती है। बजट प्रणाली में उत्पादन–स्तर के निर्धारित किये जाने से प्रमापित लागतों के निर्धारण में सरलता रहती है।

(अ) प्रमाप परिव्ययन में सहायता : बजट प्रणाली के प्रयोग से प्रमाप परिव्यय पद्धति की स्थापना में सुविधा होती है। बजट प्रणाली में उत्पादन–स्तर के निर्धारित किये जाने से प्रमापित लागतों के निर्धारण में सरलता रहती है।

(अ) सम्पूर्ण राष्ट्र को लाभ : सभी संस्थाओं में बजटरी नियन्त्रण के प्रयोग से रोजगार में स्थिरता, संयन्त्रों के प्रयोग में मितव्ययिता तथा अपव्ययों में कमी की जा सकती है जिसका लाभ सम्पूर्ण राष्ट्र को होगा।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि बजटरी नियन्त्रण संस्था के सीमित साधनों के कुशलतन प्रयोग, परिव्ययों में कमी और व्यावसायिक क्रियाओं में उत्तरोत्तर सुधार का साधन है। अतः व्यावसायिक संस्थाओं में इसे विलासिता न समझकर सफलता की कुन्जी समझना चाहिए।

**बजटरी नियन्त्रण की भूमिका या महत्व**

बज्टरी नियत्रण व्यावसायिक क्रियाओं के नियोजन, समन्वय एवं नियन्त्रण की एक उपयोगी प्रणाली है। इन क्षेत्रों में इसकी भूमिका अग्र इस प्रकार हैः

(i) नियोजन के क्षेत्र में : नियोजन प्रबन्ध का एक महत्वपूर्ण कार्य है। नियोजन का आशय व्यवसाय के उद्देश्य निर्धारित करना और इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए कार्यक्रम तैयार करने से है। उद्देश्यों में पूरे व्यवसाय के प्रत्येक उप–विभाग के लिए दीर्घकालीन और अल्पकालीन योजनायें शामिल होती है। बजटरी नियन्त्रण प्रणाली के लिए व्यावसायिक क्रियाओं का नियोजन अपरिहार्य है। नियोजन के बिना नियन्त्रण संभव नहीं है। अतः नियोजन की परिकल्पना नियन्त्रण की आवश्यकताओं के अनुकूल ही की जानी चाहिए। एक एकीकृत नियोजन और नियन्त्रण प्रणाली के दृष्टिकोण से नियोजन का आशय James L. Peirce के

शब्दों में "Planning refers to the construction of an operating programme, comprehensive enough to cover all phases of operation, and detailed enugh that specific attention may be given to its fulfilment in controllable segments."

कहने की आवश्यकता नहीं है कि व्यवसाय की सफलता बहुत कुछ कुशल नियोजन पर निर्भर करती है। परन्तु प्रश्न यह है कि क्या नियोजन के लिए बजटन अनिवार्य है? यह सत्य है कि औपचारिक बजटन के बिना भी नियोजन सम्भव है किन्तु इस प्रकार के नियोजन में बहुधा बहुत सी त्रुटियां व भूलें हो जाती है। बजटरी नियन्त्रण व्यावसायिक क्रियाओं के नियोजन का एक महत्वपूर्ण माध्यम हैं इससे सभी स्तर के प्रबन्धकों की नियोजन भूमिका सुस्पष्ट और अववृद्ध होती है और वे व्यवसाय की नियोजन प्रक्रिया पर ध्यान देने के लिए बाध्य हो जाते है। बजटन के द्वारा नियोजन से संस्था के अधिकारियों का दृष्टिकोण व्यापक हो जाता है और वे न केवल अपने–अपने विभागों के बारे में सोचते हैं वरन् प्रत्येक कार्य को सम्पूर्ण संस्था के हित की दृष्टि से सोचने लगते हैं। बजटरी नियन्त्रण में व्यावसायिक क्रियाओं की एक निश्चित समय से पूर्व ही भविष्यवाणी कर दी जाती है तथा विभिन्न समस्याओं का पूर्वानुमान लगाया जाता है और उनके निराकरण के लिए सभी स्तर के प्रबन्धकों के मत जाने जाते हैं। बजटरी प्रणाली के अन्तर्गत विक्रय नियोजन के लिए विक्रय बजट, उत्पादन के नियोजन तथा उत्पादन अनुसूचियन के लिए उत्पादन बजट, क्रयों के नियोजन के लिए क्रय बजट, श्रम के नियोजन के लिए श्रम बजट, संयन्त्र क्षमता के नियोजन के लिए संयन्त्र बजट तथा विभिन्न उत्पादन, आफिस, विक्रय और वितरण व्ययों के लिए नियोजन के लिए लागत बजट तैयार किये जाते हैं। इसी प्रकार इनमें पूंजीगत व्ययों के नियोजन के लिए पूंजीगत व्यय बजट तथा रोकड़ प्राप्तियों और रोकड़ भुगतानों के नियोजन के लिए रोकड़ बजट तैयार किया जाता है। इस प्रकार बजटरी नियन्त्रण विभिन्न व्यावसायिक क्रियाओं के नियोजन का एक सुदृढ़ माध्यम बन जाता है। इससे व्यवसाय की क्रियाओं में स्थायित्व व निश्चितता आती है और उसके सीमित साधनों का सदुपयोग होता है। अतः यह स्पष्ट है कि नियोजन के क्षेत्र में बजटरी नियन्त्रण की भूमिका अति महत्वपूर्ण है।

(ii) समन्वय के क्षेत्र में : समन्वय का आशय उत्पादन के सभी घटकों और व्यवसाय के सभी विभागों, उप–विभागों और कार्यों में सन्तुलन व तालमेल स्थापित करना है जिससे कि सामान्य उद्देश्य प्राप्त किये जा सकें। उदाहरण के लिए, उत्पादों का उत्पादन विक्रय के अनुसार हो, सामग्री की पूर्ति उत्पादन मात्रा के अनुरूप हो आदि। समन्वय के अभाव में न तो नियत्रण ही सम्भव है और न कोई नियोजन ही सफल हो सकता है। बजटरी नियन्त्रण से व्यावसियक क्रियाओं में समन्वय स्थापित होता है। ब्रूअर और लजारस के शब्दों में, ''बजट निर्माण एक व्यवसाय के विभिन्न विभागों की योजनाओं को समन्वित करता है तथा यह समन्वय विभिन्न विभागाधिकारियों के मध्य परामर्श द्वारा सम्भव होता है। यह परामर्श अनुमान पर नहीं वरन् ठोस तथयों के विश्लेषण पर आधारित होते हैं।'' समन्वय के क्षेत्र में बजटरी नियन्त्रण की भूमिका इस प्रकार हैः

(अ) एक सुस्पष्ट व सुनिश्चित योजना का अस्तित्व ही व्यावसायिक क्रियाओं में समन्वय का एक महत्वपूर्ण सूचक है। बजटरी नियन्त्रण से संस्था के अधिकारी अपने कार्यों का दूसरे के कार्यों या समपूर्ण कम्पनी के कार्यों से सम्बन्ध स्थापित करने के लिए बाध्य होते हैं।

(ब) बजट के तैयार करने में सभी अधिकारियों का सहयोग रहता है। अतः सभी विभागों के लक्ष्यों, समस्याओं व सम्भावनाओं पर पहले से ही विचार कर लिया जाता है जो समन्वय का आधारभूत सिद्धान्त है।

(स) बजट संवहन का श्रेष्ठ साधन है जो कि समन्वय के लिए बहुत आवश्यक है। बजट तैयार हो जाने के पश्चात् उसकी एक प्रति प्रत्येक अधिकारी को दे दी जाती है। इससे संस्था के प्रत्येक अधीकारी को यह पता लग जाता है कि योजना क्या है, इसमें दूसरों की क्या भूमिका रहेगी व दूसरे उससे क्या अपेक्षायें रखते हैं।

(द) बजट से अधिकारियों में सहयोग व मिल–जुलकर कार्य करने की भावना विकसित होती है जो कि समन्वय के लिए महत्वपूर्ण तत्व है।

अतः स्पष्ट है कि बजट समन्वय का एक महत्वपूर्ण उपकरण है।

(अ) नियन्त्रण के क्षेत्र में : नियन्त्रण शब्द का पय्रोग विभिन्न अर्थों में किया जाता है। बजटन के सम्बन्ध में इसका आशय James L. Peirce के शब्दों में, "Control is the presence in a business of that force which guides it to a predetermined objective by menas of predetermined policies and decisions." इसका उद्देश्य व्यावसायिक क्रियाओं को पूर्व–निर्धारित लक्ष्यों, योजनाओं व नीतियों के अनुरूप विनियमित करना होता है।

बजटरी नियन्त्रण प्रबन्ध–नियन्त्रण प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण अंग होता है। वस्तुतः जब नियन्त्रण की क्रिया को बजटन से सम्बन्धित कर दिया जाता है तो इसे बजटरी नियन्त्रण कहते हैं। इसके अन्तर्गत सम्पूर्ण कार्य की एक ऐसी रूपरेखा रखी जाती है जिसके द्वारा प्रबन्ध को यह पता लग सके कि कार्य पूर्व निर्धारित लक्ष्य, योजना व नीति के अनुसार हो रहा है अथवा नही, इसमें नियन्त्र की निम्न अवस्थायें रहती है :

(अ) बजट बनाने से प्रत्येक व्यक्ति को यह जानकारी हो जाती है कि संस्था को उससे क्या अपेक्षायें है। इस प्रकार इससे व्यक्ति इन अपेक्षाओं के अनुकूल कार्य करने के लिए निर्देशित होता है।

(अ) बजट बनाने से प्रत्येक विभागध्यक्ष की अपनी योजनाओं का विश्लेषण करना होता है तथा उनके लिए व्यय के अनुमान प्रस्तुत करने होते हैं। इस प्रकार बजटन क्रिया की प्रारम्भिक अवस्था से ही लागत नियन्त्रण लागू हो जाता है।

(अ) बजट के अनुमोदन के पश्चात् विभाग के लिए स्वीकृत राशियां विभागीय व्ययों को सीमित करती है। प्रत्येक विभागाध्यक्ष को इस स्वीकृत सीमा के अन्तर्गत ही अपने विभाग के व्यय सीमित करने पड़ते हैं।

(अ) बजटरी नियन्त्रण निष्पादन के मूल्यांकन की एक प्रभावशाली तकनीक है। इसमें बजट अवधि अथवा नियन्त्रण अवधि के अन्त में वास्तविक परिणामों की पूर्व निर्धारित बजटरी अंकों से तुलना तथा उनमें अन्तर ज्ञात किये जाते हैं। महत्वपूर्ण अन्तरों का विश्लेषण करके उनके कारणों और उनके लिए उत्तरदायी व्यक्तियों की खोज की जाती है तथा असंतोषजनक परिणामों की दशा में आवश्यक सुधारात्मक कार्यवाही की जा सकती है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि बजटरी नियन्त्रण, नियन्त्रण के क्षेत्र में भी एक अति कारगर भूमिका अदा करता है।

बजट विचरणांश का विश्लेषण

निष्पादन व लागत के वास्तविक समंकों व बजटेड समंकों के बीच प्राप्त अन्तर को बजट विचरणांश कहते हैं। यदि इन विचरणांशों का समुचित विश्लेषण किया जाये, तो उनके होने के लिए उत्तरदायी कारणों पर प्रकाश पड़ सकता है और भविष्य में उन पर नियन्त्रण करके लागत को नियन्त्रित किया जा सकता है। गत अध्याय में क्रियाओं के आधार पर निर्मित किये जाने वलो विभिन्न बजटों पर प्रकाश डाला गया है। वस्तुत5 किसी भी संस्था के लिए सम्पादित सम्पूर्ण व्यावसायिक क्रियाओं का सामूहिक परिणाम विक्रय, उत्पादन व लाभ (हानि) में परिलक्षित होता है। अतः इन तीनों के सम्बन्ध में बजटेड समंक व वास्तविक समंक के अन्तर का विश्लेषण आवश्यक होता है। जहां विक्रय क्रिया अपने आप में पूर्ण होती है, वहां उत्पादन क्रिया में सामग्री, श्रम व अन्य अप्रत्यक्ष व्यय सम्बन्धी उपक्रियाएं शामिल होती है। लाभ–क्रिया बिक्री व उत्पादन का परिणाम होती है। इस प्रकार हम यहां पर निम्न प्रकार के बजट विचरणांशों की व्याख्या करेंगे:

(अ) विक्रय विचरणांश

(ब) लागत विचरणांश

(i) सामग्री विचरणांश

(ii) श्रम विचरणांश

(iii) अप्रत्यक्ष व्यय विचरणांश

(स) कुल लाभ विचरणांश

उपर्युक्त प्रत्येक बजट विचरणांश में कई उप–अंक होते हैं, जिनका विधिवत् वर्णन नीचे किया गया है।

(अ) विक्रय विचरणांश : वास्तविक बिक्री की रकम और बजटेड बिक्री की रकम का अन्तर विक्रय विचरणांश कहलाता है। वास्तविक बिक्री की रकम बिक्री की वास्तविक मात्रा व वास्तविक विक्रय मूल्य के गुणनफल के बराबर होती है। इसी प्रकार बजटेड बिक्री की रकम

बिक्री की बजटेड मात्रा व बजटेड विक्रय मूल्य के गुणनफल के बराबर होती है। यदि वास्तविक बिक्री बजटेड बिक्री से अधिक होती है, तो विक्रय विचरणांश हित में माना जाता है और वास्तविक बिक्री का बजटेड बिक्री से कम होने पर अहित में माना जाता है। कुल विक्रय विचरणांश विक्रय की मात्रा व मूल्य में से एक या दोनों के वास्तविक व बजटेड समंकों के अन्तर का प्रतिफल हो सकता है। यदि बिक्रीत वस्तुओं की संख्या एक से अधिक है, तो उनके बजटेड मिश्रण और वास्तविक मिश्रण में अन्तर का भी कुल विक्रय विचरणांश पर प्रभाव पड़ सकता है। अतः कुल विक्रय विचरणांश का विश्लेषण करते समय इन तीनों कारकों के प्रभाव को अलग करना चाहिए। इस प्रकार कुल विक्रय विचरणांश व उनके उप–अंगों की गणना निम्न सूत्रों के आधार पर की जा सकती हैः

(क) जब केवल एक वस्तु की बिक्री हुई होः

Total Sales Variance = (AU x AP) - (BU x BP)

= (AS - BS)

यहां पर AU = Actual Units of Sales

BU = Budgeted Units of Sales

AP = Actual Selling Price

BP = Budgeted Selling Price

AS = Total Actual Sales

BS = Total Budgeted Sales

कुल विक्रय विचरणांश निम्न उप–विचरणांशों का योग होता हैः

(i) Sales Volume Variance = (AU - BU) x BP

(ii) Sales Price Variance = (AP - BP) x AU

(ख) जब एक से अधिक वस्तुओं की बिक्री की गयी हो। ऐसी स्थिति में प्रायः विभिन्न वस्तुओं की विक्रय योग्य मात्राओं का एक मिश्रण अनुपात बजटेड रूप में निर्धारित कर लिया जाता है। वास्तविक बिक्री में इन वस्तुओं के विक्रय–मात्रा का अनुपात कुछ और ही हो सकता है, अअतः कुल विक्रय विचरणांश का विश्लेषण करने के लिए मिश्रण विचरणाश को अलग करना आवश्यक होता है। इस सम्बन्ध में सर्वप्रथम विक्रय की संशोधित मात्रा ज्ञात की जाती है, जिसके लिए निम्न सूत्र का प्रयोग किया जाता हैः

Revised Units of Sales (BU)

= Budgeted Units of a Specific Item x Total Actual Units / Total Budgeted Units

Total Sales Variance = (AS - BS)

This is composed of :

(i) Sales Price Variance = (AP - BP) x AU

(ii) Sales Volume Variance = (RU - BU) x BP

(iii) Sales Mix Variance = (AU - RU) x BP

(ब) लागत विचरणांश : वास्तविक लागत व बजटेड लागत के अन्तर को लागत विचरणांश कहते हैं। लागत में सामग्री श्रम व अप्रत्यक्ष व्यय को शामिल करते हैं। अतः लागत विचरणांश का विश्लेषण इन तीनों लागत–तत्वों के संदर्भ में अलग–अलग किया जाता है।

(i) सामग्री विचरणांश : प्रयुक्त सामग्री की वास्तविक लागत व बजटेड लागत का अन्तर सामग्री विचरणांश कहलाता है। यदि सामग्री की वास्तविक लागत बजटेड लागत से कम होती है तो विचरणांश हितकर और अधिक होने पर अहितकर माना जाता है। सामग्री विचरणांश के भी दो उप–अंग सामग्री मूल्य विचरणांश और सामग्री मात्रा विचरणांश हो सकते हैं। अन्य शब्दों में, सामग्री में विचरण, सामग्री की मात्रा में विचरण प्रयुक्त मात्रा में कमी या अधिक के कारण या उनके अक्षम्य प्रयोगों के कारण हो सकता है। संक्षेप में, सामग्री विचरणांश के विश्लेषण में निम्न तीनों को अलग–अलग ज्ञात किया जाता है :

(i) Materials Volume Variance

(ii) Materials Usage Variance

(iii) Material Price Variance

उपर्युक्त तीनों की गणना के लिए निम्न सूत्रों का प्रयोग किया जाता हैः

(i) Materials Volume Variance = (BUR - NUR) x BP

यहां पर BUR = Budgeted Units of Raw Materials

NUR = Normal Units of Raw Materails at Actual Production Level

BP = Budgeted cost per Unit

(ii) Materials Usage Variance = (NUR - AUR) x BP

यहां पर AUR = Actual Units of Raw Materials

NUR = Normal Units of Raw Materials at Actual Production Level

BP = Budgeted Cost per Unit

(iii) Materials Price Variance = (BP - AP) x AUR

यहां पर BP = Budgeted Cost per Unit

AP = Actual Cost per Unit

AUR = Actual Units of Raw Materials

(ii) श्रम विचरणांश : सामग्री की तरह प्रत्यक्ष श्रम की वास्तविक लागत व बजटेड लागत के अन्तर को ही श्रम विचरणांश कहते है। यदि श्रम की वास्तविक लागत बजटेड लागत से कम है तो हित में और अधिक होने पर अहित में माना जाता है। श्रम विचरणांश के लिए भी मुख्यतः तीन कारण हो सकते हैं: प्रथम, उत्पादन की मात्रा में कमी या वृद्धि होना; द्वितीय, श्रम के प्रयोग में कुशलता व क्षमता बरतना; और तृतीय, श्रम की लागत में (मजदूरी दर में) परिवर्तन होना। इस प्रकार श्रम विचरणांश का विश्लेषण करते समय निम्न का पता लगाया जाता है:

(i) Labour Volume Variance

(ii) Labour Usage of Efficiency Variance

(iii) Labour Rate Vaiance

इन तीनों की गणना इस प्रकार से की जाती है:

(i) Labour Volume Variance = (BLH - NLH) x BWR

यहां पर BLH = Budgeted Labour Hours

NLF = Normal Labour Hours at Actual Production Level

BWR = Budgeted Wage Rate

(ii) Labour Usage Variance = (NLR - ALH) x BWR

यहां पर NLH = Normal Labour Hours

ALH = Actual Labour Hours

BWR = Budgeted Wage Rate

(iii) Labour Rates Variance = (BWR - AWR) x ALH

यहां पर BWR = Budgeted Wage Rate

AWR = Actual Wage Rate

ALH = Actual Labour Hours

(ii) अप्रत्यक्ष व्यय विचरणांश : कुल लागत में अप्रत्यक्ष व्यय को पूर्वानुमान द्वारा शामिल किया जाता है। यदि वास्तविक अप्रत्यक्ष व्यय बजटेड व्यय से अधिक या कम होता है, तो उसे अप्रत्यक्ष व्यय विचरणांश कहते हैं। यदि वास्तविक व्यय अनमानित व्यय से अधिक है, तो अहितकर विचरणांश और इसके विपरीत दशा में हितकर विचरणांश कहलाता है। इस विचरणांश का विश्लेषण करते समय निम्न को अलग–अलग ज्ञात किया जाता है :

(A) Overhed Budged Variance = (Budgeted Overhead - Actual Overhead)

(B) Idle Time Variance = (ALH - BLH) x OR

यहां पर ALH = Actual Labour Hours

BLH = Budgted Labour Hours

OR = Overhead Rate per Hour

(C) Overhead Efficiency Variance = (SLH - ALH) x OR

यहां पर SLH = Standard Labour Hours

ALH = Actual Labour Hours

OR = Overhead Rate per Hours

(A) Overhead Budget Variance = (F + (VH x ALH) - (AO)

यहां पर F = Total Fixed Overhead

VH = Variable Overhead per Hour

ALH = Actual Labour Hours

AO = Actual Overheads

(B) Idle Time Variance = (SLH x OR) - [F + (VH x SLH)]

यहां पर SLH = Standard Labour Hours

OR = Overhead Rate per Hour

F = Total Fixed Overheads

VH = Variable Overhead per Hour

(C) Overhead Efficience Variance = [F + (VH x SLH)] - [F + (VH x ALH)]

= (VH x SLH) - (VH x ALH)

(स) कुल लाभ विचरणांश : कुल विक्रय राशि में से बेची गयी वस्तु की लागत को घटाने पर कुछ लाभ ज्ञात हो जाता है। अतः बजटेड कुल लाभ व वास्तविक लाभ में अन्तर बिक्री विचरणांश निम्न में से एक या एक से अधिक तत्वों का परिणाम होता हैः

(i) विक्रय मूल्य में परिवर्तन (ii) बेची गयी वसतु की मात्रा में परिवर्तन

(iii) बेची गयी वस्तु की लागत में परिवर्तन (iv) विक्रय मिश्रण में परिवर्तन

इस प्रकार लाभ विचरणांश की व्याख्या निम्न द्वारा की जा सकती हैः

Profit Variance = Actual Profit - Budgeted Profit

This is explained by :

(i) Sales Volume Variance = (AU - BU) x BP

(ii) Sales Price Variance = (AP - BP) x AU

(iii) Cost Volume Variance = (BU - AU) x BCP

(iv) Cost Price Variance = (BCP - ACP) x AU

परन्तु जब एक से अधिक वस्तुओं का विक्रय किया गया हो, तो लाभ विचरणांश की व्याख्या प्रति इकाई लाभ के आधार पर निम्न रूप से की जा सकती हैः

Profit Variance = Actual Profit - Budgted Profit

This is explained by:

(i) Profit Rate Variance = (APt - BPt) x AU

(ii) Profit Volume Variance = (RU - BU) x BPt

(iii) Profit Mix Variance = (AU - RU) x BPt

यहां पर APt = Actual Profit per unit

BPt = Budgeted Profit per unit

RU की गणना वैसे ही की जायेगी जैसा अन्यत्र समझाया गया है।

**बजटन की सीमायें**

बजटन की भी कुछ सीमायें हैं जिससे इसके प्रयोगकर्त्ताओं को अवगत होना आवश्यक है। प्रमुख सीमायें निम्नलिखित है :

(1) बजटन प्रबन्ध व प्रशासन का स्थानापन्न नहीं है : यह तो संस्था के उद्देश्य प्राप्त करने का केवल एक साधन मात्र ही है। इसकी सफलता उन व्यक्तियों की योग्यता व कुशलता पर निर्भर करती है जो कि इसके संचालन के लिए उत्तरदायी है।

(2) बजट योजना अनुमान पर आधारित होती है : अतः बजटन की सफलता इन अनुमानों की शुद्धता पर निर्भर करती है। यद्यपि इन अनुमानों में पूर्ण शुद्धता तो सम्भव नहीं होती किन्तु यदि ये वास्तविकता से दूर है तो इससे समूची बजट–व्यवस्था व्यर्थ हो जाती है। बजटन के परिणामों के निर्वचन में इस सीमा का ध्यान रखना चाहिये।

(3) समय का प्रभाव : बजट बनाने के कार्य में काफी दिन लग जाते हैं। इस काल में बहुत से ऐसे परिवर्तन हो जाते हैं जिसमें बजट की शुद्धता बनाये रखना कठिन हो जाता है। बदलती हुई व्यावसायिक परिस्थितियों में बजट के अंकों की उपयोगिता समाप्त हो जाती है।

(4) दृढ़ता का भय : बजट अनुमान संख्यात्मक होते हैं, अतः उन्हें पूर्ण या अन्तिम मान लेने की प्रवृत्ति पायी जाती हैं किन्तु चूंकि ये व्यावसायिक दशाओं के सम्बन्ध मं होते हैं, जो कि लगातार बदलती रहती है, अतः यदि इनमें दृढ़ता या अपरिवर्तनशीलता आ जाती है तो इनकी उपयोगिता काफी सीमा तक समाप्त हो जायेगी। अतः बजट अनुमानों में व्यवसाय की बदलती हुई परिस्थितियों के अनुसार यथोचित परिवर्तन करते रहना आवश्यक है।

(5) निषेधशील लागत : बजट बनाने में बहुत समय व धन लगने के कारण छोटी संस्थाओं के लिए इस प्रणाली को अपनाना दुष्कर हो जाता है। अतः बजट प्रणाली से सम्भावित लाभों और इसकी लागत को बीच उचित संतुलन रहना चाहिये।

(6) बजट योजनाओं कार्यान्वयन स्वचालित नहीं होता : बजट बना देने से ही बजट योजनायें पूर्ण नहीं हो जाती वरन् इसके लिए संस्था के अधिकारियों की सक्रिय भूमिका अनिवार्य है। बजटन की सफलता कुशल प्रबन्ध तथा प्रशासन पर निर्भर करती है।

# कोष–प्रवाह विश्लेषण
# (Funds Flow Analysis)

कोष–प्रवाह विश्लेषण व्यवसाय के वित्तीय विवरणों के विश्लेषण व निर्वचन की एक महत्वपूर्ण तकनीक है। इस तकनीक के अन्तर्गत व्यवसाय की किन्हीं दो अवधियों के बीच उसके कोषों में हुए परिवर्तनों के कारणों का पता लगाया जाता है और उनकी वांछनीयता निर्धारित की जाती है। इस विश्लेषण के लिए एक विवरण तैयार किया जाता है जिसे कोष–प्रवाह विवरण कहते हैं।

**कोष–प्रवाह विवरण का आशय**
**(Meaning of Funds Flow Statement)**

किसी व्यवसाय के दो आर्थिक चिट्ठों के बीच व्यवसाय में कोषों के प्रवाह की स्थिति को स्पष्ट करने के लिए बनाया गया विवरण कोष–प्रवाह विवरण कहलाता है। **फाउल्के** के शब्दों में, ''कोषों के स्त्रोतों और प्रयोगों का विवरण एक तकनीकी युक्ति है जो कि दो तिथियों के बीच एक व्यावसायिक उपक्रम की वित्तीय स्थिति में हुए परिवर्तनों का विश्लेषण करने के लिए तैयार किया जाता है।''

**राबर्ट एन्थौनी** के अनुसार, '' कोष–प्रवाह विवरण उन स्रोतों का वर्णन करता है जिनसे अतिरिक्त कोष प्राप्त किये गये थे और जिनमें इन कोषों का प्रयोग किया गया है।'' अतः स्पष्ट है कि ये विवरण दो तिथियों के आर्थिक चिट्ठों के बीच विभिन्न सम्पत्तियों और समताओं में हुए परिवर्तनों को प्रदर्शित करता है। संक्षेप में, यह विवरण किसी संस्था के वित्तीय ढाँचे के परिवर्तनों को प्रकट करता है।

**कोष का आशय** (Meaning of Funds) – कोष–प्रवाह में प्रयुक्त 'कोष' शब्द का प्रयोग विभिन्न अर्थों में किया जाता है। वास्तव में इस शब्द का अर्थ इसके बनाने वाले के इरादों और आवश्यकताओं के अनुसार अलग अलग हो जाता है। अपने संकुचित अर्थ में इसका आशय 'रोकड़' से लिया जाता है। प्रबन्ध द्वारा व्यवसाय के अल्पकालीन वित्तीय नियोजन में इस शब्द का प्रयोग भुगतानों के विवरण के अतिरिक्त और कुछ नहीं रह जाता है। ऐसे कोष–विवरण को रोक–प्रवाह विवरण कहते है। अतः रोक प्रवाह विवरण में कोष और रोकड़ एक दूसरे के पर्यायवाची हो जाते हैं।

व्यापक अर्थो में कोष शब्द का आशय 'शुद्ध कार्यशील पूँजी' (Net Working Capital) से होता है। कोष शब्द का यह अर्थ ही अधिक प्रचलित है तथा कोष–प्रवाह विवरण में इसका प्रयोग इसी अर्थ में ही किया जाता है। इसीलिए कुछ विद्वान इस विवरण के लिये 'कार्यशील पूँजी का विश्लेषण' शब्द का प्रयोग अधिक तर्कसंगत मानते है। चूँकि कुल चालू सम्पत्तियों (Total Current Assets) और कुछ चालू दायित्वों (Total Current Liabilities) का अन्तर शुद्ध कार्यशील पूँजी होता है, अतः कुल चालू सम्पत्तियों और चालू दायित्वों का अन्तर ही कोष कहलाता है।

**चालू सम्पत्तियाँ** (Current Assets) – चालू सम्पत्तियों में सामान्यतः निम्नांकित सम्पत्तियाँ शामिल की जाती हैं :

हस्तस्थ रोकड़ (Cash in hand), बैंक में रोकड़ (Cash at Bank), देनदार (Debtors), पूर्वदत्त व्यय (Prepaid Expenses), अल्पकालीन निक्षेप (Short-term Deposits), प्राप्य बिल (Bill Receivable), पुस्तकीय ऋण (Book-Debts), स्टॉक/स्कन्ध (Stock, Inventory or Merchandise), विक्रय (विपणन) योग्य प्रतिभूतियाँ (Marketable Securities)।

सामान्यतः **विनियोगों** (Investments) को चालू सम्पत्तियों के अन्तर्गत शामिल नहीं करना चाहिए, परन्तु यदि उक्त विनियोग आसानी से विपणन योग्य हैं अर्थात् बाजार में बेचे जा सकते हैं या अल्पकालीन हैं तो इन्हें चालू सम्पत्तियों में शामिल करना चाहिए। **स्पष्ट सूचना के अभाव में सामान्यतः विनियोगों को दीर्घकालीन ही माना जाता है।**

**चालू दायित्व** (Current Liabilities) – चालू दायित्वों का आशय ऐसे दायित्वों से है जिनका भुगतान सामान्यतः एक वर्ष के अन्दर कर दिया जाता है। चालू दायित्वों में सामान्यतः निम्नलिखित को शामिल किया जाता है –

व्यापारिक लेनदार (Trade Creditors), नकद साख (Cash Credit), बैंक अधिविकर्ष (Bank Overdraft), देय बिल (Bills Payable), कर के लिए प्रावधान या देय आयकर (Provision for Taxation or Income Tax Dues), अदत्त व्यय (Outstanding Expenses), अल्पकालीन ऋण (Short-term Loans), डूबत एवं संदिग्ध ऋणों के लिए प्रावधान (Provision or Reserve for Doubtful Debts), अयाचित या न मांगा गया लाभांश (Unclaimed Dividend), प्रस्तावित लाभांश (Proposed Dividend)।

**प्रस्तावित लाभांश तथा कर प्रावधान** को कुछ व्यक्ति चालू दायित्व में शामिल नहीं करते हैं। इनकी विस्तृत विवेचना इसी अध्याय में आगे की गई है।

**'कोष–प्रवाह' का आशय** (Meaning of 'Flow of Funds')

प्रवाह का सामान्य अर्थ 'आवागमन' है। अतः किसी व्यवसाय में विभिन्न व्यावसायिक क्रियाओं के परिणामस्वरूप कोषों का आवागमन 'कोष–प्रवाह' कहलाता है। जैसा कि पूर्व में स्पष्ट किया जा चुका है 'कोष' का आशय 'शुद्ध कार्यशील पूँजी' से होता है, अतः कोष–प्रवाह विश्लेषण में **कोष–प्रवाह** और **शुद्ध कार्यशील पूँजी** में परिर्वतन समानार्थक है। किसी लेन–देन से कोष–प्रवाह तभी होगा जबकि उससे शुद्ध कार्यशील पूँजी में वृद्धि या कमी होती हो। किसी व्यवसायिक क्रिया या लेन–देन से कोष का प्रवाह होता है अथवा नहीं, इस बात का निर्णय करते समय निम्नांकित नियम ध्यान रखने योग्य है :

**कोष–प्रवाह होना** या **न होना** (Where There is Flow of Funds or not)

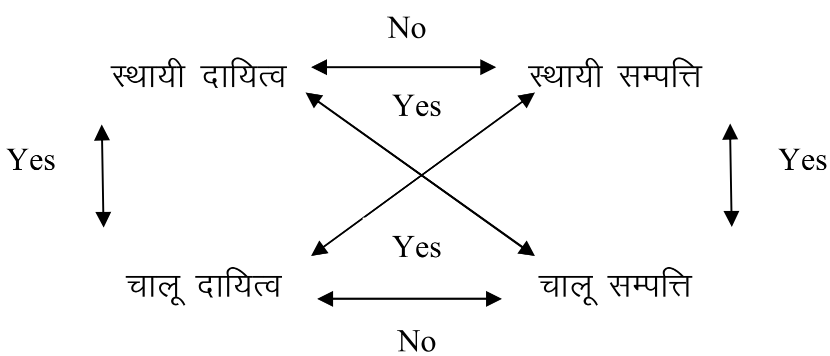


**कोष–प्रवाह न होना**

जिन लेन–देनों से शुद्ध कार्यशील पूँजी में कोई कमी या वृद्धि नहीं होती, उन लेन–देनों से कोष–प्रवाह नहीं होता है। मुख्यतः निम्नलिखित लेन–देन ऐसे है जिनसे कोष–प्रवाह नहीं होता है :

(1) **लेन–देन से प्रभावित होने वाले दोनों खाते चालू सम्पत्ति वर्ग के हों** – जैसे–माल का नकद क्रय, नकद बिक्री, देनदारियों से भुगतान प्राप्त होना, देनदारों से प्राप्त विपत्र मिलना, प्राप्य विपत्रों का भुगतान मिलना आदि। इन व्यवहारों से चालू सम्पत्तियों के स्वरूप में ही परिवर्तन होता है, उनका कुल योग पूर्ववत् ही रहता है। अतः ऐसे लेन–देनों का शुद्ध कार्यशील पूँजी पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

(2) **लेन–देन से प्रभावित होने वाले दोनों खाते चालू दायित्व वर्ग के हों** – जैसे–लेनदारों को देय बिलों पर स्वीकृति प्रदान करना, देय बिल का अनादृत होना, आदि। ऐसे लेन–देनों से केवल

चालू दायित्वों का स्वरूप ही परिवर्तित होता है, परन्तु चालू दायित्वों की कुल रकम तथा शुद्ध कार्यशील पूँजी अपरिवर्तित रहती है।

(3) **चालू सम्पत्तियों व चालू दायित्वों में समान दिशा ओर समान मात्रा में परिर्वतन हो** – यदि किसी लेन–देन से चालू सम्पत्तियों एवं चालू दायित्वों में समान दिशा और समान मात्रा में परिवर्तन होता है तो उनका शुद्ध कार्यशील पूँजी पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है अर्थात् कोई 'कोष–प्रवाह' नहीं होता है। जैसे – लेनदारों को भुगतान, देय बिलों का भुगतान, उधार माल खरीदना, आदि।

(4) **स्थायी सम्पत्तियां तथा स्थायी दायित्व या पूँजी वर्ग के खाते समान रूप से प्रभावित (परिवर्तित) होते हों** – जैसे– अंश या ऋणपत्रों के बदले स्थायी सम्पत्तियों का क्रय। ऐसे लेन–देनों का किसी चालू सम्पत्ति या चालू दायित्व के खाते पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता जिनके कारण शुद्ध कार्यशील पूँजी अपरिवर्तित रहती है अर्थात् कोष–प्रवाह नहीं होता है।

(5) **लेन–देन से प्रभावित होने वाले दोनों खाते गैर चालू वर्ग के हों** – जैसे–ऋणपत्र या पूर्वाधिकार अंशों का समता अंशों में परिर्वतन के द्वारा शोधन, बोनस अंशों का निर्गमन आदि।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि यदि लेने–देन से प्रभावित होने वाले दोनों खाते एक ही वर्ग (स्थायी या चालू) के हों तो कोष–प्रवाह नहीं होगा।

**कोष–प्रवाह होना** (Where There is Flow of Funds)

कोष–प्रवाह उन्हीं लेन–देनों से होता है जिनके कारण शुद्ध कार्यशील पूँजी में वृद्धि या कमी होती है। दूसरे शब्दों में कह सकते है कि 'कोष–प्रवाह' तभी होता है जब किसी लेन–देन से प्रभावित होने वाले दोनो खाते अलग–अलग वर्गो के हों, अर्थात् एक चालू सम्पत्ति या चालू दायित्व वर्ग का तथा दूसरा स्थायी सम्पत्ति या स्थायी दायित्व व पूँजी वर्ग का होना चाहिए। इस प्रकार कोष का प्रवाह निम्नलिखित दशाओं में ही हो सकता है।

(1) लेन–देन का प्रभाव चालू सम्पत्ति और स्थायी सम्पत्ति पर पड़ें; जैसे–स्थायी सम्पत्तियों का क्रय का विक्रय करना।

(2) लेन–देन का प्रभाव चालू सम्पत्ति और स्थायी दायित्व पर पड़े; जैसे– रोकड़ के बदले ऋणपत्रों को निर्गमित करना।

(3) लेन–देन का प्रभाव चालू सम्पत्ति और पूँजी पर पडे; जैसे– अंश पूँजी को रोकड़ के बदले निर्गमित करना।

(4) लेन–देन का प्रभाव चालू दायित्व और स्थायी सम्पत्ति पर पड़े; जैसे– मशीन का उधार क्रय करना।

(5) लेन–देन का प्रभाव चालू दायित्व और स्थायी दायित्व पर पड़े; जैसे– लेनदारों के भुगतान हेतु ऋणपत्र निर्गमित करना।

(6) लेन–देन का प्रभाव चालू सम्पत्ति और पूँजी पर पड़े; जैसे – लेनदारों को भुगतान से अंश निर्गमित करना, पूर्वाधिकार अंशों के शोधन हेतु देय बिल स्वीकार करना।

(7) व्यावसायिक क्रियाओं के फलस्वरूप होने वाले शुद्ध लाभ या शुद्ध हानि से भी कोष–प्रवाह होता है जिसे 'संचालन से कोष' कहा जाता है।

**कोष–प्रवाह विवरण** (Funds Flow Statement)

'कोष' एवं 'कोष–प्रवाह की व्याख्या के उपरान्त कोष–प्रवाह विवरण को आसानी से समझा जा सकता है।

किसी संस्था के दो तिथियों पर तैयार किये गये स्थिति विवरणों (आर्थिक चिट्ठों) के बीच संस्था के कोषों के परिवर्तनों के अध्ययन के लिए बनाया गया विवरण 'कोष–प्रवाह विवरण' कहलाता है। दूसरे शब्दों में इस विवरण में यह दर्शाया जाता है कि दो लेखा अवधियों के मध्य कोष का

प्रवाह किस प्रकार हुआ है अर्थात् किन–किन साधनों से कोष प्राप्त हुए है और इनका उपयोग किन–किन मदों में किया गया है।

कोष–प्रवाह विवरण के सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों द्वारा दी गई मुख्य परिभाषाएं निम्नवत् हैं :

**फाउल्के** के अनुसार, 'कोष की प्राप्ति व प्रयोग का विवरण वह तकनीक साधन है, जो दो तिथियों के मध्य किसी व्यावसायिक उपक्रम की वित्तीय स्थिति में हुए परिवर्तनों का विश्लेषण करने के लिए तैयार किया जाता है।

"A Statement of sources and application of fund is a technical device designed to analyse the changes in the financial condition of a business enterprise between two dates." – Foulke

**स्मिथ एवं ब्राउन** के अनुसार, ''कोष–प्रवाह विवरण सारांश रूप में तैयार किया गया एक विवरण–पत्र है जो दो विभिन्न तिथियों पर बनाये गये चिट्ठों के समयान्तर में वित्तीय दशाओं में हुए परिवर्तन का ज्ञान कराता है।''

"A fund flow statement is prepared in summary form to indicate changes and trends if prepared regularly occuring two different balance sheet dates." – Smith and Brown

**रॉबर्ट एन0 एन्थोनी** के अनुसार, ''कोष–प्रवाह विवरण इस बात का विवेचन करता है कि किन साधनों से अतिरिक्त कोष प्राप्त हुए और किन मदों पर इन कोषों को प्रयोग में लाया गया है।''

"Funds flow statement is a statement prepared to indicate the increase in the cash resources and the utilization of such resources of business during the accounting period."

- Robert N. Anthony

**निष्कर्ष** – उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि 'कोष–प्रवाह विवरण' किसी भी संस्था की दो लेखा अवधियों के मध्य वित्तीय विवरणों की सहायता से बनाया जाने वाला एक विवरण–पत्र है, जो यह विश्लेषण प्रस्तुत करता है कि आवश्यक कोषों को किन–किन साधनों से प्राप्त किया गया एवं उन कोषों को उपयोग किस प्रकार किया गया।

**कोष–प्रवाह विवरण के अन्य नाम**

कोष–प्रवाह विवरण को निम्नलिखित नामों से भी सम्बोधित किया जाता है :

(1) कोषों के उपयोग का विवरण (Statement of Application of Funds),

(2) कोषों के स्रोतों एवं उपयोग का विवरण (Statement of Sources and Application of Funds),

(3) कोषों के स्रोतों एवं प्रयोगों का विवरण (Statement of Sources and Uses of Funds),

(4) कहाँ से आया एवं कहाँ गया विवरण (Where got and where gone Statement),

(5) कोषों की पूर्ति एवं उपयोग का विवरण (Statement of Funds Supplied and Applied),

(6) संसाधनों की प्राप्ति एवं उपयोग का विवरण (Statement of Resources Provided and Applied)

## कोष–प्रवाह विवरण के प्रयोग या उद्देश्य
## (Uses or Objects of Funds Flow Statement)

कोष–प्रवाह विवरण का मुख्य उद्देश्य एक निश्चित अवधि के बीच कार्यशील पूँजी में हुए परिवर्तन के कारणों पर प्रकाश डालना होता है। यह विवरण दो चिट्ठों के बीच की अवधि में पूँजी संरचना और सम्पत्ति विस्तार के सम्बन्ध में हुए प्रमुख परिवर्तनों और प्रबन्धकीय नीति निर्णयों को प्रदर्शित करता है। वास्तव में इस विवरण से ऐसी सूचनायें प्राप्त होती हैं जोकि वित्तीय विवरणों से नहीं प्राप्त की जा सकती है। अतः व्यावसायिक संस्था के प्रबन्धकों तथा अन्य बाहरी पक्षकारों (अंशधारी बैंक, अल्पकालीन ऋणदाता आदि) के लिये यह विवरण बहुत महत्वपूर्ण है।

**प्रबन्धकीय प्रयोग** (Managerial Uses) – कोष–प्रवाह विवरण एक महत्वपूर्ण प्रबन्धकीय यन्त्र है। एक वित्तीय–प्रबन्धक के लिये इसके महत्वपूर्ण उपयोग निम्नलिखित हैं –

**(1) वित्तीय विश्लेषण और नियन्त्रण** (Financial Analysis and Control) – कोष–प्रवाह विवरण व्यवसाय की वित्तीय स्थिति का विश्लेषणात्मक चित्र प्रस्तुत करता है। इसकी सहायता से एक वित्तीय प्रबन्धक यह जान सकता है कि भूतकाल में कार्यशील पूँजी किन–किन स्रोतों से प्राप्त हुई तथा उसका उपयोग कैसे–कैसे हुआ ? इस प्रकार भूतकालीन अनुभवों के आधार पर कार्यशील पूँजी का भावी नियोजन और उस पर नियन्त्रण रखा जा सकता है। यह विवरण प्रबन्ध को मुख्य रूप से निम्न महत्वपूर्ण सूचनायें प्रदान करता है –

(अ) व्यावसायिक लाभों का क्या हुआ ? जैसे इन्हें लाभांश के रूप में वितरित किया जा सकता है या स्थायी सम्पत्तियों के क्रय अथवा ऋणों के भुगतान में लगाया जा सकता है। व्यवसाय के लाभों में वृद्धि के बावजूद लाभांश बाँटने के लिये कभी–कभी रोकड़ की कमी पड़ जाती है। यह विवरण इसके कारणों पर प्रकाश डालता है।

(ब) व्यवसाय की वर्तमान अर्जनों से अधिक लाभांश वितरण कैसे सम्भव हुआ है अथवा व्यावसायिक हानि की दशा में लाभांश कैसे बाँटा गया है ?

(स) व्यवसाय की शुद्ध आय में वृद्धि होने पर शुद्ध चालू सम्पत्तियों की कमी के क्या कारण हैं अथवा व्यवसाय में शुद्ध हानि की दशा में शुद्ध चालू सम्पत्तियों में वृद्धि कैसे हुई ?

(द) स्थायी सम्पत्तियों के विस्तार अथवा ऋणों के भुगतान के लिये कोषों की व्यवस्था कैसे हुई।

(इ) स्थायी सम्पत्तियों के विक्रय अथवा अंश व ऋण–पत्रों के निर्गमन से प्राप्त रोकड़ का प्रयोग किस प्रकार से किया गया है ?

उपर्युक्त सूचनाओं के आधार पर प्रबन्ध भविष्य में कार्यशील पूँजी का नियोजन व नियन्त्रण कर सकता है तथा व्यवसाय को प्रतिकूल प्रवृत्तियों से बचाया जा सकता है।

**(2) भावी मार्ग–दर्शन** (Future Guidance) – कोष–प्रवाह विवरण के विश्लेषण से ऐसी बहुत सी महत्वपूर्ण सूचनायें प्राप्त हो सकती हैं जो कि परम्परागत वित्तीय–प्रपत्रों (चिट्ठा आदि) से नहीं प्राप्त होतीं। यदि पिछले कई वर्षों के आधार पर इस विवरण को तैयार किया जाता है तो यह एक बहुत ही प्रकाशवान लेखापत्र हो सकता है, विशेषतः उस दशा में जबकि सम्पत्तियों को अपलिखित तथा अधिलिखित किये जाने के कारण चिट्ठा संदिग्ध और अस्पष्ट हो गया हो। इस सूचनाओं के आधार पर प्रबन्ध अपनी भावी वित्तीय–नीतियों का निर्माण कर सकता है। यह विवरण दो तिथियों के चिट्ठों के बीच कार्यशील पूँजी में हुए परिवर्तनों को प्रदर्शित करता है।

**(3) तुलनात्मक अध्ययन में सहायता** (Aid in Comparative Study) – यह विवरण आर्थिक चिट्ठा का लाभा–लाभ खाते से तुलना करने में पर्याप्त सहायक हो सकता है। इस विवरण में संचालन से सम्बन्धित कुछ ऐसी सूचनाओं को भी सम्मिलित किया जा सकता है, जिनको आर्थिक चिट्ठा में स्थान नहीं मिल पाता है।

(4) कुछ ऋणदाता संस्थायें, जैसे बैंक, बीमा कम्पनी आदि अपने ग्राहकों को ऋण की स्वीकृति देने से पूर्व उनसे बहुत–सी सूचनायें (जैसे अपेक्षित ऋण की राशि, ऋण का उद्देश्य, भुगतान की शर्तें, भुगतान के स्रोत आदि) माँगती हैं जिन्हें एक वित्तीय–प्रबन्ध इस विवरण की सहायता से पूर्ण विश्वास के साथ प्रदान कर सकता है।

(5) व्यावसायिक क्रियाओं तथा अन्य साधनों से प्राप्त कोषों के अनुमान के आधार पर वित्तीय प्रबन्धक कोषों के सही प्रयोग की योजना बना सकता है। इस प्रकार यह विवरण साधनों के बँटवारे के एक यन्त्र की भाँति कार्य करता है।

(6) यह विवरण फर्म की लाभांश–नीति, स्कन्ध में विनियोग, पूँजीगत व्यय आदि के निश्चित करने में भी सहायक होता है।

**अन्य प्रयोग** (Other Uses) – कोष–प्रवाह विवरण व्यवसाय के बाहरी पक्षकारों (जैसे अंशधारी, ऋणदाता, बैंकर्स आदि) के लिये भी महत्वपूर्ण है। इस विवरण से एक विनियोक्ता संस्था की सामान्य क्रियाओं से चालू कोष उत्पन्न करने की क्षमता का अनुमान लगाता है। इसी विवरण से ही बैंकर्स व अन्य अल्पकालीन ऋणदाता किसी व्यवसायी को ऋण देने में जोखिम की मात्रा का मूल्यांकन करते हैं। इससे एक अंशधारी संस्था के प्रबन्धकों को सौंपी गई कार्यशील पूँजी के प्रभावकारी प्रयोग, संस्था के वर्तमान कोषों की पर्याप्तता तथा प्रबन्ध की भावी योजनाओं आदि के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त करता है। वह इस विवरण की सहायता से ही संस्था में लाभांश वितरण के लिये उपलब्ध कोष की मात्रा निर्धारित करता है और अपने विनियोग पर लाभांश प्राप्ति की सम्भावनाओं का अनुमान लगाता है। वास्तव में यह विवरण कम्पनी की वित्तीय नीति का बाह्य जगत के लिये अच्छा संवाहक है। इस विवरण से इन पक्षकारों को कम्पनी की कार्यशील पूँजी का अनुमान तथा दो अवधियों के बीच उसमें हुए परिवर्तन के कारणों का पता लगता है और सामान्य जनता को प्रबन्ध की वित्तीय नीति का ज्ञान हो जाता है। यह विवरण संस्था की वित्तीय सुदृढ़ता को भी प्रकट करता है। अब तो अर्थशास्त्रियों ने भी अर्थव्यवस्था में उदित हुए कोष की गणना में इस विधि का प्रयोग करना प्रारम्भ कर दिया है।

## कोष–प्रवाह विवरण का महत्व व उपयोग का लाभ
## (Importance, Uses or Advantages of Funds Flow Statement)

कोष–प्रवाह विवरण एवं निश्चित अवधि में कार्यशील पूँजी में हुए परिवर्तनों के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण सूचना प्रदान करता है। इस विवरण की सहायता से ऐसे अनेक प्रश्नों के उत्तर दिये जा सकते हैं जिनका समाधान चिट्ठे अथवा लाभ–हानि खाते के आधार पर नहीं किया जा सकता। इस विवरण से व्यवसाय के प्रबन्धकों, स्वामियों, ऋणदाताओं, भावी विनियोजकों तथा शोधकर्ताओं को अनेक महत्वपूर्ण सूचनाएं उपलब्ध होते हैं। संक्षेप में कोष–प्रवाह विवरण निम्नलिखित दृष्टिकोणों से एक उपयोगी तकनीक है।

### (1) प्रबन्ध के लिए महत्व (Importance for Management)

कोष–प्रवाह विवरण प्रबन्ध के लिए अत्यन्त उपयोगी है। प्रबन्ध को संस्था के हित में विभिन्न प्रकार के निर्णय लेने पड़ते है तथा नितियों का निर्माण करना पड़ता है। ये निर्णय/नितियाँ कोष–प्रवाह विवरण के विश्लेषण के आधार पर तय की जाती है।

प्रबन्ध के लिए कोष–प्रवाह विवरण के महत्व को निम्नवत् स्पष्ट किया जा सकता है।

(1) **वित्तीय विश्लेषण** (Financial Analysis) – कोष–प्रवाह विवरण को तैयार करने की कोई बाध्यता नहीं होती है, फिर भी संस्था के प्रबन्धक द्वारा इसे तैयार किया जाता हैं। प्रबन्धक द्वारा इस विवरण को तैयार करने के मूल में संस्था की वित्तीय स्थिति का विश्लेषण प्राप्त करना होता है। 'कोष' के स्त्रोत विभिन्न वर्षो में कौन–कौन से रहे है तथा 'कोष' का प्रयोग किन–किन साधनों में किया गया है ? संस्था की कार्यशैली में वृद्धि हुई या विगत वर्ष की तुलना में कमी आई है। उसके पीछे कौन–कौन से कारण रहे है ? इनका विश्लेषण केवल कोष–प्रवाह विवरण के द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है।

(2) **वित्तीय विनियोजन एवं बजट** (Financial Planning and Forecasting of Budget) – कोष–प्रवाह विवरण के द्वारा संस्था को विभिन्न स्त्रोतो एवं कोषों के उपयोग मदों की विस्तृत जानकारी मिलती है। शुद्ध कार्यशील पूँजी की कितनी आवश्यकता होगी, इसका अनुमान लगाने हेतु विगत वर्षो के परिवर्तनों को ध्यान में रखकर बजट तैयार किया जाता है। कोष–प्रवाह विवरण के द्वारा वित्तीय नियोजन में सहायता मिलती है। भविष्य में स्थायी सम्पत्तियों के क्रय, कार्यशील पूँजी की आवश्यकता, ऋणों का भुगतान, आयकर एवं लाभांश के भुगतान हेतु आवश्यक रोकड़ का पूर्वानुमान लगाया जाता है। इस हेतु किन–किन साधनों से फण्ड का आगमन होगा ? जैसे–पूँजी का निर्गमन, स्थायी सम्पत्तियों का विक्रय, संचालन से रोकड़ प्राप्त, आदि। फण्ड की प्राप्तियों के आधार पर यह

ज्ञात होता है कि संस्था के आन्तरिक स्त्रोतों से कितने फण्ड मिलेगें तथा कितने फण्ड बाह्य स्त्रोतों से जुटाने पड़ेगें। अतः प्रबन्धकों को कोष–प्रवाह विवरणों की सहायता से वित्तीय नियोजन एवं बजट बनाने में आवश्यक मदद मिलती है।

(3) **भावी मार्ग–दर्शन** (Future Guidance) – कोष–प्रवाह विवरण विगत वर्षो की सूचनाओं की सहायता से बनाये जाते है। इसके आधार पर भावी योजनाएं बनायी जाती है तथा भविष्य के लिए वित्तीय नीतियों का निर्माण किया जाता है।

(4) **तुलनात्मक अध्ययन में सहायक** (Helpful in comparative study) – कोष–प्रवाह विवरण का निर्माण दो समयाविधियों के आर्थिक चिट्ठों के आधार पर किया जाता है, जिसमें तुलनात्मक अध्ययन में सहायता मिलती है। यद्यपि प्रत्येक संस्था में वित्तीय वर्ष के अन्त में लाभ–हानि खाता एवं आर्थिक चिट्ठा तो अनिवार्य रूप से तैयार किया जाता है। परन्तु इन दोनों वित्तीय विवरणों के आधार पर व्ययों, सम्पत्तियों एवं दायित्वों का तुलनात्मक अध्ययन नहीं किया जा सकता है, वास्तविकता यह है कि इनका तुलनात्मक अध्ययन केवल कोष–प्रवाह विवरण द्वारा ही किया जा सकता है।

(5) **ऋणों को प्राप्त करने में सहायक** (Helpful in Procurement of Loans) – कोष–प्रवाह विवरण वित्तीय विवरणों का अन्त–परीक्षण करता है। इसकी सहायता से विनियोजकों एवं ऋणदाताओं को संस्था की पूर्ण विस्तृत जानकारी एवं शोधन क्षमता का ज्ञान हो जाता है, इसके आधार पर ये संस्था को ऋण देने का निर्णय शीघ्रता से कर सकते है। अतः कोष–प्रवाह विवरण ऋण प्राप्त करने में अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करता है।

(6) **अर्जनों का विश्लेषण** (Analysis of Accruals) – व्यावसायिक लाभों का किस प्रकार उपयोग किया गया ? व्यवसाय में पर्याप्त लाभ होने पर भी कोष पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध क्यों नहीं हैं? इन प्रश्नों का उत्तर, कोष–प्रवाह विवरण द्वारा ही सम्भव है।

**(2) अंशधारियों के लिए महत्व** (Importance for Shareholders)

अंशधारी कोष–प्रवाह विवरण से निम्नलिखित जानकारी प्राप्त कर सकते है।

1) संस्था में वित्त प्रबन्धन किस प्रकार किया जा रहा है?
2) संस्था में उनका हित सुरक्षित है या नहीं?
3) लाभांश का भुगतान लाभों में से हो रहा है या पूँजी में से ?
4) संस्था में कार्यशील पूँजी की क्या स्थिति है?
5) संस्था में लाभों की प्रवृति क्या है?
6) संस्था संचालन (Operation) से अधिक कोष प्राप्त कर रही है या अन्य साधनों से ?

उपर्युक्त तथ्यों के विश्लेषण के आधार पर संस्था के अंशधारी, प्रबन्धकीय कुशलता की जांच कर सकते हैं।

**(3) ऋणदाताओं एवं विनियोक्ताओं के लिए महत्व** (Importance for Creditors and Investors)

ऋणदाता व विनियोक्ता इस विवरण की सहायता से निम्नलिखित जानकारी प्राप्त कर सकते हैं :

(i) संस्था की कार्यशील पूँजी में कमी या वृद्धि का अनुमान लगाकर भावी प्रवृति का विश्लेषण कर सकते हैं।

(ii) संस्था की सामान्य क्रियाओं से चालू कोष उत्पन्न करने की क्षमता का अनुमान लगा सकते हैं।

(iii) प्रदान किये जाने वाले ऋण की रकम सुरक्षित है या नहीं तथा ऋण पर ब्याज समय से मिलता रहेगा या नहीं ?

(iv) भविष्य में आय की क्या सम्भावना है ?

उपर्युक्त तथ्यों के विश्लेषण के आधार पर ऋणदाता व विनियोजक संस्था में विनियोजन करने या न करने का निर्णय ले सकते है।

कुछ वित्तीय संस्थाएं तो ऋण देने से पूर्व कोष–प्रवाह विवरण विशेष रूप से मांगती है।

**(4) अन्य फर्मो के लिए महत्व** (Importance for Other Firms)

समान उद्योग में सलंग्न अन्य फर्मो के कोष–प्रवाह विवरण के तुलनात्मक अध्ययन से एक फर्म अपने वित्तीय प्रबन्ध में कमियाँ ज्ञात कर सकती है तथा सुधार के लिए ठोस कदम उठा सकती है।

**(5) सरकार के लिए महत्व** (Importance for Government)

कोष–प्रवाह विवरण से सरकार को उद्योगों में प्रयुक्त पूँजी के विभिन्न स्त्रोतों का ज्ञान होता हे जिससे सरकार को पूँजी नियन्त्रण में सहायता मिलती है। संचालन लाभों का अध्ययन कर सरकार विक्रय मूल्य नीति के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण निर्णय ले सकती है।

**(6) अर्थशास्त्रियों के लिए महत्व** (Importance for Economics)

व्यवसाय की वित्तीय स्थिति के विश्लेषण में तो इस विधि का प्रयोग किया ही जाता है, आजकल अर्थशास्त्रियों ने भी अर्थव्यवस्था में उदित हुए कोषों की गणना में इस विधि का उपयोग प्रारम्भ कर दिया है। केन्द्रीय सांख्यिकीय संगठन (C.S.O.) ने क्षेत्रीय कोष–प्रवाह की संगणना में इस विधि का प्रयोग किया है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि कोष–प्रवाह, चिट्ठे तथा लाभ–हानि खाते की तुलना में अधिक महत्वूपर्ण सूचनाएं प्रदान करता है। यही कारण है कि अमेरिकन कम्पनियों के लिए चिट्ठे तथा लाभ–हानि खाते के समान ही वित्तीय स्थिति में परिवर्तनों का विवरण (Statement of Changes in Financial Position) – सम्पूर्ण साधनों (Total resources) की अवधारणा पर आधारित कोष–प्रवाह विवरण एक आवश्यक विवरण बना दिया गया है। भारत में यद्यपि कम्पनियों के लिए इस प्रकार की कोई अनिवार्यता नहीं है, फिर भी भारत के चार्टड लेखापालों के संस्थान (Institute of Chartered Accountants of India) द्वारा सिफारिश की गई है कि वार्षिक लेखों के साथ 'वित्तीय स्थिति में परिवर्तन का विवरण' भी प्रकाशित किया जाए।

## कोष–प्रवाह विवरण की सीमाएँ
## (Limitations of Funds Flow Statement)

यद्यपि कोष–प्रवाह विवरण वित्तीय प्रबन्ध का एक महत्वपूर्ण एवं उपयोगी साधन है, फिर भी इसकी कुछ सीमाएँ है जिनकी जानकारी होना आवश्यक है। इसकी प्रमुख सीमाएं अग्रवत् है :

(1) **गैर–कोष मदों की उपेक्षा** – यद्यपि यह विवरण चिट्ठ तथा लाभ–हानि खाते की तुलना में अनेक महत्वपूर्ण सूचनाएं उपलब्ध कराता है, परन्तु इसमें गैर–कोष मदों से सम्बन्धित व्यवहारों की पूर्णतः उपेक्षा की जाती है। इस दृष्टि से यह विवरण चिट्ठे तथा लाभ–हानि खाते की तुलना मं अपरिष्कृत है।

(2) **भूतकालीन विश्लेषण** – कोष–प्रवाह विवरण भूतकालीन विश्लेषण से अधिक सम्बन्ध रखता हैं, क्योंकि यह विवरण मुख्यतः यह बताता है कि क्या हो चुका है। इस विवरण से यह मालूम नहीं होता कि भविष्य में किस प्रकार के परिवर्तन होंगे।

(3) **मौलिक सूचनाओं का अभाव** – इस विवरण से व्यवसाय की वित्तीय स्थिति अथवा उसमें परिवर्तन के सम्बन्ध में जो भी जानकारी मिलती है, वह मौलिक नहीं होती है। यह विवरण तो केवल चिट्ठे एंव लाभ–हानि खाते द्वारा प्रदर्शित समंकों का रूप परिवर्तित करके अथवा उन्हें पुनः व्यवस्थित करके कुछ सूचनाएं उपलब्ध करा देता है।

(4) **रोकड़ स्थिति में परिवर्तन की जानकारी नहीं** –यह विवरण केवल कोष–प्रवाह की ही जानकारी देता है, रोकड़ स्थिति में परिवर्तन की नहीं। अतः केवल कोष–प्रवाह पर आधारित सूचनाएं भ्रामक चित्र प्रस्तुत कर सकती है जिससे भ्रामक निष्कर्ष निकल सकते है।

(5) **कार्यशील पूँजी के विभिन्न मदों का अलग–अलग विश्लेषण करने में असमर्थ** – यह विवरण कार्यशील पूँजी की कुल राशि में परिवर्तन का ही विश्लेषण करता है, कार्यशील पूँजी के विभिन्न मदों में परिवर्तन या उच्चावचन का नहीं।

## कोष–प्रवाह विवरण एंव आर्थिक चिट्ठे में अन्तर

## (Difference Between Fund-Flow Statement and Balance Sheet)

(1) **प्रकृति** (Nature) – कोष–प्रवाह विवरण की प्रकृति गतिशील होती है क्योंकि यह दो समयावधियों के मध्य कोषों में हुए परिवर्तनों की जानकारी देता है। आर्थिक चिट्ठे की प्रकृति स्थायी होती है। यह संस्था के समाप्त होने वाले वर्ष की आर्थिक स्थिति प्रति वर्ष प्रकट करता है।

(2) **विषय सामग्री** (Subject-matter) – कोष–प्रवाह विवरण के अन्तर्गत आर्थिक चिट्ठे की केवल उन्हीं मदों को लिया जाता है, जिनसे किसी न किसी रूप में कोष प्रभावित होते है, जबकि आर्थिक चिट्ठे के अन्तर्गत खाता बही के व्यक्तिगत एवं वास्तविक शेषों को सम्मिलित किया जाता है।

(3) **उद्देष्य** (Purpose) – कोश–प्रवाह विवरण बनाने का उद्देश्य अल्पकालिक होता है। यह दो समयावधियों के मध्य सम्पत्तियों, दायित्वों, पूँजी में हुए परिवर्तनों की जानकारी प्राप्त करने के उद्देश्य से बनाया जाता है जबकि चिट्ठे का उद्देश्य संस्था की आर्थिक स्थिति से अवगत कराना होता है।

(4) **उपयोगिता** (Utility) – कोष–प्रवाह विवरण की उपयोगिता, अल्पकालिक शोधन क्षमता एवं कोषों के प्रवाह की जानकारी देने में होती है जबकि आर्थिक चिट्ठे की उपयोगिता संस्था या व्यवसाय की आर्थिक स्थिति को स्पष्ट करने की होती है।

(5) **आन्तरिक एवं बाह्य प्रलेख** (Internal and External Documents) – कोष–प्रवाह विवरण संस्था या प्रबन्ध–मण्डल का आन्तरिक प्रलेख होता है। इसे बनाने एवं प्रकाशन की कोई बाध्यता नहीं होती है। चिट्ठे को बनाना एवं प्रकाशित करना संस्था के लिए अनिवार्य होता है, अतः यह बाह्य प्रलेख समझा जाता है।

(6) **तैयारी** (Preparation) – कोष–प्रवाह विवरण को चिट्ठे में प्रदर्शित सूचनाओं के आधार पर तैयार किया जाता है। अतः पहले चिट्ठे को तैयार किया जाता है एवं उसके पश्चात् कोष–प्रवाह विवरण तैयार होता है। इस प्रकार आर्थिक चिट्ठा, कोष–प्रवाह विवरण को आवश्यक विषय–सामग्री उपलब्ध कराता है।

## कोष–प्रवाह विश्लेषण की विधि

## (Procedure for Funds Flow Analysis)

## या

## कोष–प्रवाह विवरण तैयार करने की विधि

कोष–प्रवाह विश्लेषण सामान्यतः एक वर्ष की अवधि के लिए तैयार किया जाता है, यद्यपि यह अवधि दो या अधिक वर्ष की भी हो सकती है। इस विश्लेषण के लिए आवश्यक समंक दोनों चिट्ठों (प्रारम्भिक एवं अन्तिम) से प्राप्त किये जाते है। कुछ अतिरिक्त सूचनाएं अन्य खातों से प्राप्त कर लेते है। कोष–प्रवाह विश्लेषण के लिए निम्नलिखित दो विवरण तैयार किये जाते है।

(1) कार्यशील पूँजी में परिवर्तनों की अनुसूची अथवा विवरण (Schedule or Statement of Changes in Working Capital),

(2) कोष–प्रवाह विवरण (Funds Flow Staetment)

## कार्यशील पूँजी में परिवर्तनों की अनुसूची

## (Schedule of Changes in Working Capital)

यह अनुसूची दो तिथियों के चिट्ठों के बीच कार्यशील पूँजी में हुए परिवर्तनों को प्रदर्शित करती है। इसे चालू सम्पत्तियों व चालू दायित्वों की सहायता से तैयार किया जाता है। चालू सम्पत्तियों व चालू दायित्वों का अन्तर 'कार्यशील पूँजी' कहलाता है।

कार्यशील पूँजी में होने वाले परिवर्तनों की गणना हेतु ध्यान रखने योग्य प्रमुख नियम निम्नलिखित है।

(1) यदि गत वर्ष की तुलना में चालू वर्ष में चालू सम्पत्तियों में वृद्धि होती है, तो शुद्ध कार्यशील पूँजी में भी वृद्धि होती है (If current assets increases, working capital decreases) ।

(2) यदि गत वर्ष की तुलना में चालू वर्ष में चालू सम्पत्तियों की धनराशि में कमी होती है, तो शुद्ध कार्यशील पूँजी भी घट जाती है (If current assets decreases, working capital decreases) ।

(3) यदि किसी चालू दायित्व में वृद्धि होती है तो कार्यशील पूँजी में कमी होती है (If current liabilities increases, working capital decreases) ।

(4) यदि किसी चालू दायित्व में कमी होती है तो कार्यशील पूँजी में वृद्धि होती है (If current liabilities decreases, working capital increases) ।

उपर्युक्त विवेचन से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि चालू सम्पत्तियों के साथ कार्यशील पूँजी का सीधा सम्बन्ध पाया जाता है तथा चालू दायित्वों के साथ कार्यशील पूँजी का विपरीत सम्बन्ध होता है।

चालू सम्पत्तियों एवं चालू दायित्वों में शामिल किये जाने वाले मदों की विस्तृत विवेचना इसी अध्याय के प्रारम्भ में दी हुई है।

कार्यशील पूँजी में परिवर्तनों की अनुसूची का प्रारूप निम्नवत् है :

Statament /Schedule of changes in working capital

| *Items* | *Previous year* | *Current year* | *Effects on Working Capital* | |
|---|---|---|---|---|
| | | | *Increse* | *Derease* |
| | Rs. | Rs. | Rs. | Rs. |
| (A) Current Assets: | | | | |
| Stock, inventory or Marchandise | | | | |
| Marketable securities | | | | |
| Debtors or book debts | | | | |
| Bills Receivables | | | | |
| Cash | | | | |
| Bank | | | | |
| Prepaid Expenses | | | | |
| Short Term Investment | | | | |
| Total (A) | | | | |
| (B) Current Liabilities : | | | | |
| Creditors | | | | |
| Bills Payable | | | | |
| Bank Overdraft | | | | |
| Outstanding Expenses | | | | |
| Unclaimed Dividend | | | | |
| Total (B) | | | | |
| Working Capital (A) – (B) | .......... | .......... | | |
| Increase/Decrease in Working Capital | .......... | .......... | | |

| TOTAL | | | | |
|---|---|---|---|---|

यदि वर्तमान वर्ष के अन्त की कार्यशील पूँजी गत वर्ष की कार्यशील पूँजी से अधिक है तो इनके मध्य अन्तर कार्यशील पूँजी में वृद्धि कहा जायेगा, किन्तु यदि वर्तमान वर्ष के अन्त की कार्यशील पूँजी गत वर्ष की कार्यशील पूँजी से कम हो तो इनके मध्य अन्तर कार्यशील पूँजी में कमी कहलायेगा। कार्यशील पूँजी की वृद्धि एवं कमी के स्तम्भों का योग बराबर करने के लिए कार्यशील पूँजी की वृद्धि को कमी वाले स्तम्भ में तथा कार्यशील पूँजी की कमी को वृद्धि वाले स्तम्भ में दिखाया जायेगा। गत वर्ष एवं चालू वर्ष के स्तम्भों का योग बराबर करने के लिए कार्यशील पूँजी में वृद्धि को गत वर्ष के स्तम्भ में तथा कार्यशील पूँजी में कमी को चालू वर्ष के स्तम्भ में दिखाया जायेगा।

यह ध्यान देने योग्य बात है कि कार्यशील पूँजी की अनुसूची, चिट्ठों में विद्यमान मदों से ही तैयार की जाती है। प्रश्न के अन्त में दी गई अन्य सूचनाओं का इस अनुसूची पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

***Illustration :*** मोनिका लि. के निम्नलिखित चिट्ठों से कार्यशील पूँजी में परिवर्तन की अनुसूची तैयार कीजिए :

From the following Balance Sheets of Monika Ltd., you are required to prepare a schedule of changes in working capital :

| | 31st Dec. 2006 | 31st Dec. 2007 |
|---|---|---|
| Land and Buildings | 45,000 | 48,000 |
| Plant and Machinery | 29,000 | 36,000 |
| Stock | 19,000 | 17,000 |
| Debtors | 6,500 | 11,500 |
| Cash at Bank | 4,000 | 7,000 |
| | 1,03,500 | 1,19,500 |
| Capital | 70,000 | 81,000 |
| Profit and Loss A/c | 23,500 | 27,500 |
| Creditors | 10,000 | 6,000 |
| Mortgage | ---- | 5,000 |
| | 1,03,500 | 1,19,500 |

***Solution :***

**Schedule of Changes in Working Capital**

| *Items* | *Previous year* | *Current year* | *Effects on Working Capital* | |
|---|---|---|---|---|
| | | | *Increse* | *Derease* |
| | Rs. | Rs. | Rs. | Rs. |
| (A) ***Current Assets:*** | | | | |
| Stock | 19,000 | 17,000 | --- | 2,000 |
| Debtors | 6,500 | 11,500 | 5,000 | --- |
| Cash at Bank | 4,000 | 7,000 | 3,000 | --- |
| Total (A) | 29,500 | 35,500 | | |
| (B) ***Current Liabilities :*** | | | | |
| Creditors | 10,000 | 6,000 | 4,000 | --- |
| Total (B) | 10,000 | 6,000 | | |

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| Net Working Capital (A) – (B) | 19,500 | 29,500 | | |
| Increase/Decrease in Working Capital | 10,000 | | --- | 10,000 |
| TOTAL | 29,500 | 29,500 | 12,000 | 12,000 |

## कोष–प्रवाह विवरण (Funds Flow Statement)

कार्यशील पूँजी में परिवर्तनों की अनुसूची दो तिथियों के बीच कार्यशील पूँजी में परिवर्तन को प्रदर्शित करती है जबकि कोष–प्रवाह विवरण उस परिवर्तन के कारण को स्पष्ट करता है। इस विवरण के दो भाग होते हैं – कोषों के स्त्रोत (Sources of Funds) तथा कोषों के प्रयोग (Applications or Uses of Funds)। इन दोनों पक्षों के अन्तर की राषि शुद्ध कार्यशील पूँजी में परिवर्तन को प्रदर्शित करती है। जब कोषों के स्त्रोत पक्ष का योग कोषों के प्रयोग पक्ष से अधिक होता है, तो शुद्ध कार्यशील पूँजी में वृद्धि होती है। जब कोषों के स्त्रोत पक्ष का योग, कोषों के प्रयोग पक्ष की तुलना मे कम होता है तो शुद्ध कार्यशील पूँजी में कमी होती है।

**यह सदैव ध्यान रखें कि कोष–प्रवाह विवरण के स्त्रोतों तथा प्रयोगों के बीच उतना ही अन्तर होता है जितना कार्यशील पूँजी में परिवर्तन आ रहा हो।**

कोष–प्रवाह विवरण में शुद्ध कार्यशील पूँजी को प्रभावित करने वाली मदें ही दिखलायी जाती है। जिन व्यवसायिक लेन–देनों से शुद्ध कार्यशील पूँजी बढ़ जाती है (जैसे–भवन का नकद विक्रय, अंषो या ऋणपत्रों का जनता में निर्गमन आदि) उन्हें कोषों का प्रयोग कहते हैं। किन्तु यदि किसी लेन–देन से शुद्ध कार्यशील पूँजी में कोई परिवर्तन नहीं होता (जैसे–लेनदारों को भुगतान, ऋणपत्रों का अंशों में परिवर्तन, बोनस अंशों का निर्गमन, आदि) तो उसे कोष–प्रवाह विवरण में नहीं दिखलाया जाता। शुद्ध कार्यशील पूँजी में परिवर्तन केवल उन्हीं लेन–देनों द्वारा होते है जो एक ओर चालू सम्पत्ति/दायित्व को प्रभावित करते है एवं दूसरी ओर पूँजी, स्थायी सम्पत्ति/दायित्व को प्रभावित करते है। यह भी नियम ध्यान रखने योग्य है कि जो मदें कार्यशील पूँजी की अनुसूची में सम्मिलित कर ली जाती है (चालू सम्पत्तियां एवं चालू दायित्व) उन्हें कोष–प्रवाह विवरण में नहीं दिखलाया जाता है।

**कोषों के स्त्रोत** (Sources of Funds) – जिन लेन–देनों से कोषों का आगमन होता है, उन्हें 'कोषों के स्त्रोत कहा जाता है। इनका विस्तृत विवरण निम्नांकित है :

(i) व्यवसाय संचालन से प्राप्त कोष (Funds received from business operations)

(ii) अंश पूँजी में वृद्धि (Increase in share capital)

(iii) दीर्घकालीन ऋणों की प्राप्ति या वृद्धि (Receipts or increases of long-term loans)

(iv) स्थायी सम्पत्तियों का विक्रय (Sale of fixed assets)

(v) गैर–व्यापारिक प्राप्तियां (Non-trading receipts)

(vi) कार्यशील पूँजी में कमी (Decrease in working capital)

**कोषों के प्रयोग** (Applications of Funds) – कोष–प्रवाह विवरण बनाते समय कोषों के प्रयोग में निम्नलिखित मदों को दर्शाते है :

(i) व्यवसाय संचालन से प्राप्त हानि (Funds lost from business operations)

(ii) स्थायी सम्पत्तियों का क्रय (Purchases of fixed assets)

(iii) पूर्वाधिकार अंशों/ऋणपत्रों/ऋणों का शोधन (Redemption of preferential shares/debentures/loans)

(vi) लाभांश का भुगतान (Payment of Dividend)

(v) गैर–व्यापारिक व्ययों का भुगतान (Payment of non-trading expenses)
(vi) कार्यशील पूँजी में वृद्धि (Increase in working capital)
(vii) चालू वर्ष में करों के लिए भुगतान (Payment for tax in current year)

**कोषों के प्रवाह से सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण मदों की विवेचना**

**(1) व्यवसाय के संचालन से लाभ या हानि** (Profit or loss from business operations or Funds from operations) – कोष प्राप्ति का यह सबसे महत्त्वपूर्ण साधन है। किसी व्यवसाय में होने वाली आय व्यावसायिक क्रियाओं एवं गैर–व्यावसायिक क्रियाओं दोनों से हो सकती है। व्यावसायिक कुशलता को स्पष्ट करने के लिए कोष–प्रवाह विवरण में व्यावसायिक क्रियाओं से होने वाली आय को ही दर्शाया जाता है। व्यावसायिक क्रियाओं में मुख्यतः माल के क्रय–विक्रय या प्रमुख व्यावसायिक गतिविधियों से होने वाली आय (Funds or Profits from Business Operations) को ही सम्मिलित किया जाता है, जबकि गैर–व्यावसायिक आय में विनियोगों से प्राप्त ब्याज या लाभांश, सम्पत्ति के विक्रय पर लाभ, मकान–सम्पत्ति से प्राप्त किराया, आकस्मिक आय, आदि को शामिल किया जाता है। लाभ–हानि खाते द्वारा प्रदर्शित लाभ–हानि को कोष–प्रवाह विवरण के लिए व्यवसाय संचालन का लाभ अथवा हानि नहीं माना जा सकता, क्योंकि लाभ–हानि खाते में बहुत सी ऐसी मदें सम्मिलित होती है, जिनका व्यवसाय संचालन में कोई सम्बन्ध नहीं होता। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसी मदें भी सम्मिलित होती है जिनका कार्यशील पूँजी पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। अतः संचालन से कोष की गणना करते समय लाभ–हानि खाते द्वारा प्रदर्शित शुद्ध लाभ में कुछ समायोजन करने पड़ते है। संक्षेप में संचालन से कोष की गणना अग्रांकित दो प्रारूपों में की जा सकती है :

(i) **विवरण प्रारूप** (Statement Form) – यदि चालू वर्ष के शुद्ध लाभ की रकम सम्बन्धी सूचना स्पष्ट रूप से दी गई है या लाभ–हानि खाते का सारांश दिया गया है, तो उस शुद्ध लाभ से गैर–नकद खर्च व गैर संचालन आय व हानि के सम्बन्ध में निम्नलिखित समायोजन किया जाता है :

| | | Rs. | Rs. |
|---|---|---|---|
| | Net Profit for the Current Year | | ....... |
| (+) | Non-cash Items : (Already debited to P. & L. A/c) | | |
| | Depreciation | ....... | |
| | Preliminary Expenses written-off | ....... | |
| | Goodwill written-off | ....... | |
| | Patents written-off | ....... | |
| | Discount on Issue of Shares/Debentures written-off | ....... | |
| | Fixed Assets written-off | ....... | (+) ....... |
| | | | ....... |
| | Non-operating Losses : (Already debited to P. & L. A/c) | | |
| (+) | Loss on Sale of Fixed Assets/Investments | ....... | (+) ....... |
| | | | ....... |
| (+) | Appropriation of Profits : (Non-trading Charges) | | |
| | Interim Dividend | ....... | |
| | Proposed Dividend of Current year | ....... | |
| | Provision for taxation of Current year | ....... | |
| | Provision for tax during the current year | ....... | |
| | Transfer to Reserve | ....... | (+)....... |
| | | | ....... |
| ( - ) | Non-operating Incomes : (incomes already credited to P. & L. A/c) | | |

| | | |
|---|---|---|
| Interest and Dividend Received | ....... | |
| Profit on Sale of Fixed Assets | ....... | |
| Appreciation in Fixed Assets | ....... | |
| Excess Provision or Reserve written back | ....... | ( - ) ....... |
| Trading Profit or funds from Operations | ....... | ....... |

नोट –

(1) यदि व्यवसाय संचालन में हानि (Loss) आ रही हो तो उसे कोषों का प्रयोग माना जाता है।

(2) यह भी उल्लेखनीय है कि 'संचालन से कोषों' (Funds From Operations) की गणना करते समय 'करो के पश्चात का शुद्ध लाभ' (Net profit after Taxes) ही प्रयोग करते है। यदि प्रश्न में केवल 'शुद्ध लाभ' शब्द लिखा हुआ हो तो उसे 'करों के पश्चात् का ही लाभ माना जायेगा।' यदि प्रश्न में प्रदत्त शुद्ध लाभ कर के पूर्व का है तो उसमें से कर की रकम को घटा देंगे।

(3) यदि चालू वर्ष के शुद्ध लाभ/हानि की सूचना स्पष्ट रूप से न दी हुई हो तो चालू एवं गत वर्ष के लाभ–हानि खाते के प्रदत्त शेष में विद्यमान अन्तर ही चालू वर्ष का शुद्ध लाभ–हानि माना जायेगा।

(ii) **खाता प्रारूप** (Account Form) – इसमें एक समायोजित लाभ–हानि खाता (Adjusted Profit and Loss Account) तैयार किया जाता है। इसे खाते के क्रेडिट पक्ष में सर्वप्रथम लाभ–हानि खाते अथवा प्रतिधारित आय अथवा आधिक्य का प्रारम्भिक शेष लिखा जाता है तथा इस खाते के डेबिट पक्ष के अन्त में इनका अन्तिम शेष (Closing balance) लिखा जाता है। समस्त जोड़ी जाने वाली मदें खाते के नाम पक्ष (Debit side) तथा समस्त घटायी जाने वाली मदें खाते के जमा पक्ष में प्रदर्शित की जाती है। इस खाते का अन्तर (Balance) कोषों से प्राप्त लाभ अथवा कोषों की हानि को दर्शाता है। जब इस खाते को बनाया जाता है तो यह ध्यान रखा जाता है कि वर्तमान वर्ष के शुद्ध लाभ का प्रयोग इस खाते में कहीं भी नहीं किया जाये। इसका प्रारूप निम्नवत् है :

**Adjusted Profit & Loss Account**

| ***Details*** | ***Amount (Dr.) Rs.*** | ***Details*** | ***Amount (Cr.) Rs.*** |
|---|---|---|---|
| To Depreciation on Fixed Assets | ........ | By Opening Balance of P. & L. A/c or Surplus or Retained Earnings | ......... |
| To Preliminary Expenses of Godowill or Patents written-off | ........ | By profit on sale of fixed Assets | ........ |
| To Loss on Sale of Fixed Assets | ........ | By Dividend Received | ........ |
| To Discount on Issue of Shares/Debentures | ........ | By Excess Provisions or Reserves transfer bank to P. & L. A/c | ........ |
| To Premium on Redemption of Shares/Debentures written-off | ........ | By Refund of Taxes | ........ |
| To Interim Dividend | ........ | By Funds from Operations (Balancing figure) | ........ |
| To Proposed Dividend | ........ | | |
| To Transfer to General Reserve | ........ | | |
| To Provision for Tax during the current year | ........ | | |

| | | | |
|---|---|---|---|
| To Closing Bal. of P. & L. A/c or Surplus or Retained Earnings | ........ | | |

**(2) अंश पूँजी में वृद्धि या कमी** (Increase or Decrease in Share Capital) – दो तिथियों के बीच अंश पूँजी में परिवर्तन साधारणतः वृद्धि के रूप में ही होता है। हां पूर्वाधिकार अंश पूँजी की दशा में परिवर्तन कमी के रूप में भी हो सकता है, बशर्ते पूर्वाधिकारी अंश शोधनीय रहे हो। अंश पूँजी में वृद्धि को कोषों की प्राप्ति मानते है। अंश पूँजी में वृद्धि नये अंशों के निर्गमन के कारण ही होती है। अतः वृद्धि की रकम को अंश निर्गमन के रूप में दर्शाते है। परन्तु यहाँ पर भी ध्यान में रखना चाहिए कि स्थायी सम्पत्तियों के क्रय के बदले में या ऋणपत्रों के शोधन के बदले में निर्गमित अंशों के कारण जो वृद्धि होगी, उसे कोषों की प्राप्ति नहीं मानेगें, परन्तु अंशों के निर्गमन द्वारा प्राप्त चालू सम्पत्तियों की रकम को कोष को स्त्रोत माना जाता है। यहाँ पर यह भी उल्लेखनीय है कि लेखांकन प्रमाप–3 की नई शर्त के अनुसार, यदि अंशों के निर्गमन द्वारा स्थिर सम्पत्तियों को प्राप्त किया गया है तो कोष–प्रवाह विवरण में ऐसे व्यवहार को स्त्रोत एवं प्रयोग दोनों पक्ष में दर्शायेंगे, जिसका शीर्षक 'कार्यशील पूँजी को प्रभावित न करने वाली वित्त प्रबन्ध एवं निवेशी क्रियाएँ' (Financing and Investing Activities not affecting Wroking Capital) होगा। नवीनतम सूचना के अनुसार ''दी इन्स्टीट्यूट ऑफ चार्टर्ड एकाउन्टेन्ट्स ऑफ इन्डिया, नई दिल्ली'' द्वारा कार्यशील पूँजी के सम्बन्ध में प्रस्तावित संशोधित लेखांकन प्रमाप–3 को निरस्त कर दिया गया है। इसी प्रकार बोनस अंशों के निर्गमन से अंश पूँजी में हुई वृद्धि को भी कोषों का स्त्रोत नहीं माना जाता है। जब इन अंशों का निर्गमन–प्रीमियम पर हुआ हो, तो वृद्धि की रकम को प्रीमियम की रकम से बढ़ा देंगे। कम्पनीज (संशोधन) अधिनियम, 1999 के द्वारा धारा 80 में यह संशोधन किया गया है कि 'अंश प्रीमियम खाते' (Share Premium A/c) के स्थान पर 'प्रतिभूति प्रीमियम खाते' (Security Premioum A/c) शब्दावली का प्रयोग किया गया है। इसीलिए प्रस्तुत अध्याय में 'प्रतिभूति प्रीमियम' (Security Premium) शब्दावली का ही प्रयोग किया गया है। अंशों का निर्गमन छूट पर हुआ हो, तो वृद्धि की रकम को छूट की रकम से कम कर देंगे।

पूर्वाधिकार अंश पूँजी में कमी को शोधन के रूप में फण्ड का प्रयोग मानते है, परन्तु शोधन नये अंशों या ऋणपत्रों के निर्गमन के रूप में हुआ है, तो उसे फण्ड प्रयोग में नहीं दिखलायेंगे।

**(3) दीर्घकालीन दायित्वों में वृद्धि या कमी** – इसके अन्तर्गत ऋणपत्रों, दीर्घकालीन ऋणों, बन्धक ऋणों व दायित्वों में दो तिथियों के बीच हुए परिवर्तन को ज्ञात किया जाता है। यदि यह परिवर्तन वृद्धि के रूप में है, तो उसे कोषों का स्त्रोत मानते है और यदि परिवर्तन कमी के रूप में है, तो उसे कोषों का प्रयोग मानते है। वृद्धि की दशा में यह मान लिया जाता है कि नये ऋणपत्रों का निर्गमन हुआ है या वित्तीय संस्थाओं से नये ऋण प्राप्त किये गये है। इसी प्रकार कमी की दशा में यह मान लिया जाता है कि या तो ऋणपत्रों का शोधन किया गया है अथवा ऋणों का भुगतान किया गया है। परन्तु वृद्धि या कमी को साधन या प्रयोग के रूप में दर्शाने से पहले यह देख लेना चाहिए कि इस प्रकार की वृद्धि या कमी गैर चालू मदों के बीच हुए लेन–देनों के कारण तो नहीं हुई है। यदि ऋणपत्रों का निर्गमन स्थायी सम्पत्ति के क्रय के बदले में किया गया है या ऋणपत्रों का शोधन अंशों में परिवर्तन के रूप में किया गया है, तो इसके कारण होने वाली वृद्धि व कमी को फण्ड विवरण में बिल्कुल नहीं दर्शाया जायेगा। हाँ, यदि ऋणपत्रों का निर्गमन प्रीमियम पर हुआ है, तो वृद्धि की रकम में प्रीमियम को जोड़ देगें और यदि निर्गमन छूट पर हुआ है, तो वृद्धि की रकम में से छूट को घटा देंगे। दूसरी ओर, यदि ऋणपत्रों का शोधन प्रीमियम पर किया गया है, तो कमी की रकम को प्रीमियम की रकम से बढ़ा देंगे और यदि शोधन पर लाभ हुआ है अर्थात छूट पर शोधन किया गया है, तो कमी की रकम को लाभ की रकम से बढ़ा देंगे।

(4) **दीर्घकालीन विनियोगों में वृद्धि या कमी** (Increase or Decrease in Long-Term Investments) – किसी भी व्यवसाय के द्वारा विनियोग चालू सम्पत्ति की तरह रखे जा सकते हैं। यदि व्यवसाय के पास उपलब्ध अतिरिक्त कोषों को थोड़े समय के लिए विक्रय–योग्य प्रतिभूतियों (Marketable Securities) में विनियोग किया जाता है तो इन्हें चालू सम्पत्ति माना जाता है और इसे कार्यशील पूँजी में परिवर्तनों की अनुसूची में दिखाया जाता है। अतः इनका क्रय–विक्रय व्यवसाय के कोष पर कोई प्रभाव नहीं डालता है। दूसरी और, यदि विनियोग स्थायी प्रकृति के है; जैसे–व्यापारिक विनियोग (Trade Investments) तो इन्हें गैर–चालू सम्पत्ति माना जाता है और इस कारण इनका क्रय–विक्रय व्यवसाय के कोषों को प्रभावित करता है। व्यापारिक विनियोगों का विक्रय चालू सम्पत्तियों का स्त्रोत माना जाता है एवं व्यापारिक विनियोगों का क्रय चालू सम्पत्तियों का प्रयोग माना जाता है। यदि दो चिट्ठों के अलावा भी कोई सूचना उपलब्ध है तो विनियोगों से कोषों का प्रवाह ज्ञात करने के लिए अलग से एक विनियोग खाता तैयार करना चाहिए जिसमें वर्ष का प्रारम्भिक शेष डेबिट में तथा अन्तिम शेष क्रेडिट में लिखना चाहिए। इसके पश्चात् यदि वर्ष में प्राप्त लाभांश की राशि में कुछ भाग विनियोगों के अधिग्रहण से पूर्व की अवधि में लाभांश (Pre-acquisition Dividend) का हो (विनियोगों के लाभांश सहित क्रय की दशा में) तो इस राशि को विनियोग खाते में क्रेडिट किया जाना चाहिए। तत्पश्चात् विनियोग खाते का शेष वर्ष में क्रय अथवा विक्रय किए गए विनियोगों की राशि बतायेगा। जिसे कोष–प्रवाह विवरण में उपयोग या स्त्रोत के रूप में दिखाया जायेगा। यदि वर्ष में बेचे गये विनियोगों की लागत सम्बन्धी सूचना दी गई है तो लागत व विक्रय मूल्य का अन्तर विक्रय पर लाभ या हानि होगी जिसे समायोजित लाभ–हानि खाते में स्थानान्तरित किया जायेगा जिससे कि संचालन के लाभों की सही जानकारी हो सके।

(5) **स्थायी सम्पत्तियों में वृद्धि या कमी** (Increase or Decrease in Fixed Assets) – कोष–प्रवाह विवरण में स्थायी सम्पत्तियों में वृद्धि को 'स्थायी सम्पत्तियों का क्रय' तथा स्थायी सम्पत्तियों के विक्रय' के रूप में माना जाता हैं। स्थायी सम्पत्तियों का रोकड़ के बदले क्रय 'कोष का प्रयोग' होता है तथा इनके विक्रय को 'कोषों का स्त्रोत' कहा जाता है। यदि स्थायी सम्पत्तियों का क्रय अंशों अथवा ऋणपत्रों के निर्गमन के बदले किया गया है, तो उसे कोषों का प्रयोग नहीं माना जा सकता। स्थायी सम्पत्तियों का क्रय–विक्रय स्थायी सम्पत्ति खाता बनाकर ज्ञात किया जा सकता है। स्थायी सम्पत्ति खाता बनाकर ज्ञात किया जा सकता है। स्थायी सम्पत्ति का खाता अपलिखित मूल्य (Written-down value) पर तैयार कर सकते है अथवा मूल लागत पर। मूल लागत पर स्थयी सम्पत्ति खाता तैयार किये जाने की दशा में अलग से एक 'ह्रास आयोजन खाता' (Provision for Depreciation A/c या Accumulated Depreciation A/c) भी तैयार किया जाता है। संक्षेप में, स्थायी सम्पत्ति खाता निम्नांकित प्रकार तैयार किया जाता है:

(1) **अपलिखित मूल्य पर स्थायी सम्पत्ति खाता तैयार करना** (To prepare the Fixed Assets A/c at W.D.V.) :

**Fixed Assets Account (at W.D.V.)**

| | *Rs.* | | *Rs.* |
|---|---|---|---|
| To Balance b/d (at original cost) | ..... | By Cash A/c (amount realized on sale of the asset) | ...... |
| To P. & L. A/c (Profit on sale or revaluation of the assets) | ...... | By P. & L. A/c (Loss on sale or revaluation of the asset) | ...... |
| To P. & L. A/c (Over provision of depreciation) | ....... | By P. & L. A/c (Depreciation charged during the current year) | ...... |

| | | | |
|---|---|---|---|
| To Cash A/c or Share Capital A/c or Debenture A/c (Purchase of assets) | ....... | By Balance c/d (W.D.V.) | ...... |
| | ....... | | ....... |

(2) **मूल लागत पर स्थायी सम्पत्ति खाता व ह्रास आयोजन खाता तैयार करना** (To prepare the Fixed Assets Account at Original Cost and Provision for Depreciation Account) :

**Fixed Assets Account (at Cost)**

| | ***Rs.*** | | ***Rs.*** |
|---|---|---|---|
| To Balance b/d (at W.D.V.) | ..... | By Cash A/c (amount realized on sale of the asset) | ...... |
| To Adjusted P. & L. A/c (Profit on sale or revaluation of the assets) | ...... | By Provision for Dep. A/c (Accumulated depreciation on assets sold) | ...... |
| To Cash A/c (Purchase of asset) | ....... | By Adjusted P. & L. A/c (Loss of sale or revaluation of assets) | ...... |
| | | By Balance c/d (at original cost) | ...... |
| | ....... | | ....... |

अनेक बार, प्रश्न में स्थायी सम्पत्ति की लागत की सूचना नहीं दी जाती है, ऐसी स्थिति में अपलिखित मूल्य में कुल काटी गई ह्रास की रकम जोड़ देने पर सम्पत्ति की लागत ज्ञात हो जाती है।

**ख्याति हेतु लेखांकन उपचार की विवेचना** (Discussion of Accounting Treatment for Goodwill) – जैसा कि हम जानते है कि ख्याति किसी भी व्यावसायिक उपक्रम की स्थिर सम्पत्ति होती है। इसके सम्बन्ध में सम्भावित विभिन्न स्थितियां एवं उनके लेखांकन उपचार की विवेचना निम्नलिखित है–

(अ) **गत वर्ष के चिट्ठे में ख्याति का कोई शेष नहीं दिया हुआ है परन्तु चालू वर्ष के चिट्ठे में ख्याति की रकम दी हुई है** – ऐसी दशा में यह देखेगें की अतिरिक्त या पूरक सूचनाओं के अन्तर्गत ख्याति का क्रय किये जाने के सम्बन्ध में कोई सूचना दी हुई है या नहीं। यदि अतिरिक्त सूचनाओं में कोई जानकारी नहीं दी हुई है तो यह माना जायेगा कि ख्याति को रोकड़ के बदले क्रय किया गया है एवं ऐसी दशा में ख्याति की उक्त रकम को कोष–प्रवाह विवरण के अन्तर्गत प्रयोग (applications) के रूप में दर्शायेंगे। इसके विपरीत यदि अतिरिक्त सूचनाओं में अंशों या ऋणपत्रों के निर्गमन द्वारा स्थिर अथवा चालू या दोनों प्रकार की सम्पत्तियों को क्रय करने की बात कही गई है और उसमें ख्याति की उतनी ही रकम दी हुई है जितनी चालू वर्ष के चिट्ठे में लिखी हुई है अथवा निर्गमित किये जाने वाले अंशों के अंकित मूल्य एवं प्राप्त सम्पत्तियों के मूल्य के बीच उतना ही अन्तर है जितनी रकम चालू वर्ष के चिट्ठे में ख्याति के रूप में लिखी हुई है, तो ऐसी दशा में कहीं पर कुछ नहीं करेगें क्योंकि इससे कोष (कार्यशील पूँजी) में कोई परिवर्तन नहीं होगा। इसका कारण यह है कि इससे एक तरफ स्थिर सम्पत्ति में वृद्धि हुई है तथा दूसरी तरफ दीर्घकालीन दायित्व में वृद्धि होगी। वस्तुतः ऐसी स्थिति में निम्नलिखित जर्नल प्रविष्टि की जाती है :

Godowill a/c Dr.
To Share Capital A/c or Debenture A/c

(ब) यदि प्रश्न में दो भिन्न तिथियों पर ख्याति का विद्यमान शेष चिट्ठों में दिया हुआ है तो अग्रवत् प्रारूप में ख्याति खाता तैयार करके अज्ञात सूचना ज्ञात कर लेगें :

**Goodwill Account**

| | *Rs.* | | *Rs.* |
|---|---|---|---|
| To Balance b/d (Opening balance) | ..... | By P. & L. A/c (Amount written off, if any) | ...... |
| To Share Capital A/c (If shares have been issued for purchase of Goodwill) | ...... | | |
| To Cash A/c (If cash has been paid for Goodwill) | ....... | By Balance c/d (Closing balance) | ...... |
| | ....... | | ....... |

चालू वर्ष में लाभ–हानि खाते से ख्याति की अपलिखित की गई रकम को 'Funds From Operations' की गणना करने हेतु समायोजित लाभ–हानि खाते की डेबिट में लिखेगें अथवा चालू वर्ष के प्रदत्त शुद्ध लाभ की रकम में जोड़ देते है। यदि ख्याति खाते की डेबिट साइड का योग कम है तो अन्तर की रकम को कोष–प्रवाह विवरण में प्रयोग (applications) की ओर दर्शायेंगे।

(6) **कृत्रिम सम्पत्तियां** (Fictitious Assets) – यदि प्रदत्त आर्थिक चिट्ठों में कृत्रिम सम्पत्तियां जैसे–अंशों या ऋणपत्रों के निर्गमन पर छूट, अभिगोपन कमीशन, प्रारम्भिक व्यय आदि को दर्शाया गया है तो इनके सम्बन्ध में लाभ–हानि खाते से अपलिखित की गई रकम को 'Fund from Operations' की गणना करने हेतु समायोजित लाभ–हानि खाते के डेबिट में लिखते है अथवा चालू वर्ष प्रदत्त शुद्ध लाभ की रकम में जोड़ देते है। यदि प्रश्न में अपलिखित की गई रकम की सूचना न दी हुई हो तो उसे निम्नवत् प्रारूप में कृत्रिम सम्पत्ति खाता तैयार करके ज्ञात कर लेगें :

**Fictitious Asset Account**

| | *Rs.* | | *Rs.* |
|---|---|---|---|
| To Balance b/d (Opening balance) | ..... | By P. & L. A/c (Balancing figure being amount written off) | ...... |
| | | By Balance c/d (Closing balance) | ...... |
| | ....... | | ....... |

## कोष–प्रवाह विवरण के तैयार करने में भ्रमित करने वाली मदें
## (Confusing Items in Preparation of Funds-Flow Statement)

कोष–प्रवाह विवरण तैयार करने में 'Provision for taxation' एवं 'Proposed dividend' मुख्यतः दो ऐसी मदें है जो विद्यार्थी को सबसे अधिक भ्रमित करती है। इसका कारण यह है कि विभिन्न पुस्तकों में इनका व्यवहार अलग–अलग प्रकार से किया गया है। इतना ही नहीं, एक ही पुस्तक में भी कुछ प्रश्न एक ढंग से किये गये है तो कुछ अन्य प्रश्न दूसरे ढंग से किये गये है। इनकी विस्तृत विवेचना निम्नलिखित है :

**करों के लिए आयोजन** (Provision for Taxation)

इस मद के व्यवहार की दो वैकल्पिक विधियाँ है। पहली विधि के अन्र्तगत कर आयोजन को चालू दायित्व की भाँति मानकर तथा दूसरी विधि के अन्र्तगत लाभों का नियोजन या आन्तरिक कोष मानकर व्यवहार किया जाता है।

(i) **चालू दायित्व के रूप में** (As a Current Liability) – करों के आयोजन को जब चालू दायित्व माना जाता है तो चिट्ठों में कर आयोजन की दी हुई राशियों को कार्यशील पूँजी में परिवर्तन की अनुसूची में चालू दायित्वों में दिखाकर कार्यशील पूँजी में कमी या वृद्धि को दिखा देगें। इसके बाद प्रश्न में नीचे दी गई अतिरिक्त या पूरक सूचनाओं में यदि वर्ष में आय कर की भुगताने के बारे में कोई सूचना दी हुई है तो इसका ध्यान नहीं रखा जायेगा अर्थात् वर्ष में किये गए भुगतान की राषि को अब कोष–प्रवाह विवरण में उपयोग के रूप में नहीं दिखाया जाएगा। इसके अतिरिक्त वर्ष में लाभ–हानि खाते से किए गए आयोजन की राशि को भी समायोजित लाभों की गणना करने के लिए पुनः नहीं जोड़ा जाएगा। इस प्रकार कर के पश्चात् के लाभों (Profit after tax) को ही कोष का साधन माना जायेगा।

(ii) **आन्तरिक कोष के रूप में** (As an Internal Reserve) – करों के लिए आयोजन को आन्तरिक कोष व लाभों के नियोजन की भाँति भी माना जा सकता है क्योंकि चिट्ठे की तिथि को इसके विरूद्ध कोई दायित्व नहीं होते एवं वह राशि व्यापार में ही रहती है। अतः इसे कार्यशील पूँजी में परिवर्तन की अनुसूची में बिल्कुल नहीं दिखाया जाता हैं। इसके लिए 'करारोपण हेतु प्रावधान' खाता (Provision for Taxation Account) अलग से खोलना चाहिए। इसमें प्रारम्भिक एवं अन्तिम शेष को क्रमशः क्रेडिट एवं डेबिट पक्ष में दिखाया जाता है तथा वर्ष में कर हेतु किए गए भुगतान की राशि को डेबिट में दिखाया जाता है इसके बाद क्रेडिट पक्ष का शेष इस वर्ष लाभ–हानि खाते से की गई कर आयोजन की राशि को बतायेगा जिसे समायोजित लाभ–हानि खाते के डेबिट पक्ष में लिखा जाएगा। चालू वर्ष में कर करे लिए भुगतान की गई राशि को कोष–प्रवाह विवरण में कोषों के उपयोग के रूप में दिखाया जाता है। यदि प्रश्न में वर्ष में चार्ज की गई राशि अथवा वर्ष में भुगतान की गई कर की राशि नहीं दी गई है तो उसकी रकम को 'करो के लिए आयोजन खाता' तैयार करके ज्ञात किया जा सकता है। संक्षेप में, 'कर के लिए आयोजन खाते' का प्रारूप निम्नलिखित है :

**Provision for Taxation Account**

| | *Rs.* | | *Rs.* |
|---|---|---|---|
| To Bank A/c (Tax Paid)<br>(Balancing Figure, if any) | ..... | By Balance b/d | ...... |
| To Balance c/d | ....... | By P. & L. A/c<br>(Provision made during the year)<br>(Balancing Figures if any) | ...... |
| | ....... | | ....... |

**विशेष रूप से ध्यान रखें** : यदि प्रश्न में प्रदत्त चिट्ठों में 'कर आयोजन खाते' का कोई शेष नहीं दिया हुआ है, परन्तु चिट्ठों के नीचे पूरक या अतिरिक्त सूचनाओं में भुगतान की गई कर की राशि दी हुई है तो ऐसी राशि को उपयुर्क्त वर्णित दोनों विकल्पों की दशा में एक तरफ 'संचालन से कोषों' (Funds from Operations) की गणना करने हेतु समायोजित लाभ–हानि खाते के डेबिट पक्ष में अथवा चालू वर्ष के शुद्ध लाभ में जोड़ देगें तथा दूसरी और कोष–प्रवाह विवरण में 'कोषों के प्रयोग' (Application of Funds) के रूप में दिखाएगें।

**उदाहरण** : एक कम्पनी के चिट्ठे में 2013 व 2014 वर्ष के लिए कर के लिए आयोजन की राषि क्रमशः 40,000 रूपये एवं 50,000 रूपये दी हुई है। अतिरिक्त सूचना के रूप में बताया गया है कि वर्ष में 25,000 रूपये के करों का भुगतान किया गया है। कोष–प्रवाह विवरण बनाते समय इसका व्यवहार निम्नवत् किया जायेगा :

इस प्रकार वर्ष में किए गए आयोजन की राशि 35,000 रूपये को समायोजित लाभ–हानि खाते के डेबिट पक्ष में दिखाया जाएगा तथा वर्ष में किए गए भुगतान की राशि 25,000 रूपये कोष–प्रवाह विवरण में 'उपयोगों' में दिखाया जाएगा।

यदि इसे चालू दायित्व मानकर व्यवहार किया जाता है तो कार्यशील पूँजी में परिवर्तन की अनुसूची में गत् वर्ष में 40,000 एवं चालू वर्ष में 50,000 रूपये लिखकर 10,000 रूपये कार्यशील पूँजी में कमी के स्तम्भ में दिखा दिए जाते। इसके पश्चात् इसका लेखा न तो समायोजित लाभ–हानि खाते में ही किया जाता है ओर न ही कोष–प्रवाह विवरण में।

उपरोक्त दोनों विधियों से उत्तर अलग–अलग आएगें, परन्तु दोनों ही तरीके ठीक है अर्थात् विद्यार्थी परीक्षा में किसी भी विधि का प्रयोग कर सकते है। प्रश्न के अन्त में इस मद के सम्बन्ध में एक नोट लिख देना चाहिए कि हमने प्रश्न ऐसे किया है, परन्तु इसके स्थान पर ऐसा भी कर सकते है। मेरी दृष्टि में प्रथम विकल्प ही विद्यार्थियों के दृष्टिकोण से अधिक उपर्युक्त है, अतः इस पुस्तक में प्रथम विकल्प को ही अपनाया गया है। इसके अतिरिक्त भारतीय कम्पनी अधिनियम की धारा 211 के अनुसार, अनुसूची 6 के भाग 1 में आर्थिक चिट्ठे के दिये गये प्रारूप में करों के लिए आयोजन की रकम को 'चालू दायित्व एवं आयोजन' (Current Liabilities and Provisions) शीर्षक के अर्न्तगत ही दर्शाया जाता है।

परन्तु कुछ व्यक्तियों का कहना है कि चिट्ठे में प्रदर्शित कर आयोजन का और कर के वास्तविक भुगतान के बीच लम्बा समयान्तर होने के कारण इसे कार्यशील पूँजी की गणना से अलग रखना ही उचित है अर्थात् इसे चालू दायित्व नहीं माना जाना चाहिए।

**प्रस्तावित लाभांश** (Proposed Dividend)

करों के लिए आयोजन के समान ही प्रस्तावित लाभांश के व्यवहार की भी दो वैकल्पिक विधियाँ है। पहली विधि के अर्न्तगत प्रस्तावित लाभांश को चालू दायित्व मानकर तथा दूसरी विधि के अर्न्तगत लाभों का नियोजन या आन्तरिक कोष मानकर व्यवहार किया जाता है।

(i) **चालू दायित्व के रूप में** (As a Current Liability) – इस परिस्थिति में, प्रस्तावित लाभांश को कार्यशील पूँजी में परिवर्तनों की अनुसूची में दिखाया जाएगा। चालू वर्ष में पिछले वर्ष के प्रस्तावित लाभांश में से किए गए लाभांश का भुगतान कोष–प्रवाह विवरण में कोष के उपयोग के रूप में नहीं दिखाया जाएगा क्योंकि ऐसा भुगतान दो चालू खातों (रोकड़ खाता तथा प्रस्तावित लाभांश खाता) को प्रभावित करने के कारण कोष या कार्यशील पूँजी को प्रभावित नहीं करेगा। संचालन से कोष की जानकारी करने के लिए चालू वर्ष के लिए प्रस्तावित लाभांश को समायोजित लाभ–हानि खाते में भी डेबिट नहीं किया जाएगा क्योंकि चालू दायित्व होने के कारण यह एक व्यापारिक प्रभार माना जाएगा न कि लाभों का नियोजन।

(ii) **आन्तरिक कोष के रूप में** (As an Internal Reserve) – इस परिस्थिति में प्रस्तावित लाभांश को कार्यशील पूँजी में परिवर्तनों की अनुसूची में नहीं दिखाया जाएगा। चालू वर्ष में पिछले वर्ष के प्रस्तावित लाभांश का भुगतान कोष का उपयोग माना जाएगा क्योंकि इससे चालू दायित्व में कमी हुए बगैर चालू सम्पत्ति (रोकड़) में कमी होती है।

परन्तु चालू वर्ष के चिट्ठे में प्रदत्त प्रस्तावित लाभांश की रकम जिसका भुगतान आगामी वर्ष में किया जाएगा। उसे संचालन से कोषों की गणना करने के लिए समायोजित लाभ–हानि खाते (Adjusted P. & L. A/c) की डेबिट में लिखा जाएगा। सदैव ध्यान रखें कि यदि लाभांश की घोषणा का लेखांकन नहीं हुआ है तो उसे कहीं नहीं दर्शाया जाएगा। यह भी ध्यान रखना होगा कि यदि लाभांश घटाने के पूर्व के लाभों की राशि के आधार पर संचालन से कोषों की गणना की जा रही है तो चालू वर्ष में प्रस्तावित लाभांश की राशि को समायोजित लाभ–हानि खाते की डेबिट में नहीं लिखा जाएगा।

कभी–कभी चिट्ठे में प्रस्तावित लाभांश नहीं दिया हुआ होता है ओर अलग से भी सूचना नहीं दी हुई होती है। ऐसी स्थिति में यह देखना चाहिए कि लाभ–हानि खाते के शेष में वृद्धि की रकम

वर्ष के लाभ से नियोजन की मदों की रकम को घटाने के बाद बचने वाली रकम के बराबर है या नहीं। सूत्र के रूप में :

| | | | Rs. |
|---|---|---|---|
| | Net profit after appropriation for Current year | | ......... |
| | Balance of P. & L. A/c of Current year | ......... | |
| Less : | Balance of P. & L. A/c of Previous year | ......... | ......... |
| | | Dividend Paid | ......... |

यद्यपि उपरोक्त दोनों ही विधियों में से किसी भी विधि का प्रयोग किया जा सकता है, परन्तु इसे लाभ का नियोजन अर्थात् आन्तरिक कोष के रूप में मानना ही अधिक उपर्युक्त है। अतः इस पुस्तक में प्रस्तावित लाभांष का व्यवहार दूसरी विधि के अनुसार ही किया गया है।

**महत्वपूर्ण नोट** (Important Note) :

(1) चिट्ठे में प्रदर्शित प्रस्तावित लाभांश की रकम संचयी नहीं होती है अर्थात् चालू वर्ष के प्रस्तावित लाभांश का पिछले वर्ष के प्रस्तावित लाभांश से कोई सम्बन्ध नहीं होता है। साथ ही व्यवहार में गत वर्ष प्रस्तावित लाभांश का चालू वर्ष में ही भुगतान हो पाता हैं। अतः प्रश्न में लाभांश भुगतान के लिए कहा गया हो या नहीं, गत वर्ष के प्रस्तावित लाभांश को चालू वर्ष में भुगतान के रूप में मान लेना चाहिए।

(2) यदि प्रश्न में प्रदत्त तुलनात्मक चिट्ठों में गत वर्ष हेतु प्रस्तावित लाभांश की रकम के साथ–साथ अयाचित लाभांश की रकम केवल चालू वर्ष के चिट्ठे में दी हुई है तथा पूरक या अतिरिक्त सूचनाओं में लाभांश के सम्बन्ध में कोई सूचना नहीं दी हुई है तो ऐसी दशा में चालू वर्ष के प्रस्तावित लाभांश की रकम को 'संचालन से कोषों' (Funds From Operations) की गणना करने हेतु समायोजित लाभ–हानि खाते के डेबिट पक्ष में अथवा चालू वर्ष के शुद्ध लाभ में जोड़ देगें।

गत वर्ष में प्रस्तावित लाभांष एवं चालू वर्ष में प्रदत्त अयाचित लाभांश (Unclaimed Dividend) की रकम हेतु निम्नलिखित दो विकल्प है :

(अ) गत वर्ष के प्रस्तावित लाभांश की रकम को कोष–प्रवाह विवरण के अर्न्तगत प्रयोग (Application) के रूप में प्रदर्शित कर दे तथा चालू वर्ष में अयाचित लाभांश की रकम को कार्यशील पूँजी में परिवर्तनों की अनुसूची के अर्न्तगत चालू दायित्व में सम्मिलित कर ले।

(ब) गत वर्ष के प्रस्तावित लाभांश की रकम में से चालू वर्ष में प्रदर्शित अयाचित लाभांश की रकम को घटा कर बची हुई शेष रकम को कोष–प्रवाह विवरण के अर्न्तगत प्रयोग (Application) के रूप में प्रकट कर दे। ऐसी दशा में अयाचित लाभांश की रकम को अन्यत्र कहीं पर नहीं दिखायेंगे।

**अन्तरिम लाभांश** (Interim Dividend)

चालू वर्ष के लाभों में से चालू वर्ष में चुकाया गया लाभांश 'अन्तरिम लाभांश' कहलाता है जिसे कोष–प्रवाह विवरण में कोष के उपयोग के रूप में दिखाया जाता है तथा संचालन से कोषों की गणना करते समय इसे समायोजित लाभ–हानि खाते के डेबिट पक्ष में लिखा जाता है। सामान्यतः इस प्रकार के लाभांश का भुगतान अधिक लाभ अर्जित करने की दिशा में ही किया जाता है।

**न मांगा गया लाभांश या अयाचित लाभांश** (Unclaimed Dividend)

कम्पनी प्रस्तावित लाभांश का जब भुगतान करती है तो सभी अंशधारियों को लाभांश अधिपत्र (Dividend warrant) भेज दिए जाते है, परन्तु वर्ष की समाप्ति तक कुछ अंशधारी प्राप्त लाभांश अधिपत्र (Dividend warrant) को वसूली के लिए बैंक में नहीं डालते है। ऐसी दशा में जितनी धन राशि के लाभांश अधिपत्र का अंशधारियों द्वारा भुगतान नहीं लिया गया है, उसे 'अयाचित लाभांश' (Unclaimed dividend) कहते हैं। इसकी रकम को सदैव चालू दायित्वों के अर्न्तगत ही सम्मिलित

करते है। यहाँ पर यह, उल्लेखनीय है कि यदि प्रदत्त तुल्नात्मक चिट्ठों में गत वर्ष में कोई अयाचित लाभांश की रकम नहीं दी हुई है, परन्तु चालू वर्ष में अयाचित लाभांश की रकम दी हुई है एवं इसके अतिरिक्त प्रदत्त चिट्ठों के नीचे पूरक सूचनाओं के अर्न्तगत लाभांश की भुगतान की गई रकम दी हुई है, तो ऐसी दशा में (1) 'Fund From Operations' की गणना हेतु घोषित लाभांश (Dividend declared) की रकम लाभांश की भुगतान की गई रकम एवं चालू वर्ष के चिट्ठे में प्रदत्त अयाचित लाभांश की रकम के योग के बराबर लेगें, (2) इसके साथ–साथ कोष–प्रवाह विवरण में लाभांश की भुगतान की गई रकम तथा अयाचित लाभांश की रकम दोनों को प्रयोग (application) के रूप में दर्शायेंगे, अयाचित लाभांश को कार्यशील पूँजी की अनुसूची में चालू दायित्व के अन्तर्गत भी दर्शायेंगे।

यदि प्रश्न में चालू एवं गत वर्ष के लिए प्रस्तावित लाभांश की रकम दी हुई है एवं साथ में अयाचित लाभांश केवल चालू वर्ष के लिए दिया हुआ है तो ऐसी दशा में अयाचित लाभांश को केवल कार्यशील पूँजी में परिर्वतनों की अनुसूची के अन्तर्गत चालू दायित्व में ही शामिल करेगें।

**विनियोग** (Investments)

विनियोगों को भी कहीं चालू सम्पत्ति मान लिया जाता है, तो कहीं दीर्घकालीन विनियोग मानकर चालू सम्पत्ति में शामिल नहीं करते हैं। परिणास्वरूप, विद्यार्थियों में भ्रमपूर्ण स्थिति बनी रहती है तथा वे इस दुविधा में रहते है कि प्रदत्त विनियोगों को चालू सम्पत्ति में शामिल किया जाए या नहीं। सामान्यतः विनियोगों को चालू सम्पत्तियों में शामिल नहीं करना चाहिए, परन्तु यदि आसानी से विपणन योग्य (Marketable) है अर्थात् है बाजार में बेचे जा सकते है या अल्पकालीन (Short-term) हैं तो इन्हें चालू सम्पत्तियों में शामिल करना चाहिए। स्पष्ट सूचना के अभाव में सामान्यतः विनियोगों को दीर्घकालीन ही माना जाता है।

**संदिग्ध एवं डूबत ऋणों के लिए प्रावधान** (Provision for Bad and Doubtful Debts)

इसे सदैव चालू दायित्व में शामिल करते है अथवा देनदारों की रकम में से घटा देते है। लेकिन यदि Debtors (Good) लिखा हुआ है, तो ऐसी दशा में यह माना जाता है कि यह प्रावधान कम्पनी की वित्तीय स्थिति को सुदृढ़ करने के लिए रखा गया है अर्थात् उसे समायोजित लाभ–हानि खाते में 'Fund From Operations' की गणना करने हेतु सम्मिलित करते है।

## कोष–प्रवाह विवरण का प्रारूप
## (Format of Funds Flow Statement)

कोष–प्रवाह विवरण का कोई एक सर्वमान्य प्रारूप निर्धारित करना संभव नहीं है। व्यवहार में इसके लिए ऐसा कोई प्रारूप अपनाया जा सकता है जिसमें सभी आवश्यक सूचनायें स्पष्टतः दर्शायी गई हों। सामान्यतः यह विवरण दो रूपों में तैयार किया जाता है – प्रतिवेदन के प्रारूप (Report form) में तथा खाते के प्रारूप (Account form) में। ये दोनों ही रूप व्यवहार में काफी प्रचलित है। प्रतिवेदन के प्रारूप में पहले कोषों के सभी स्त्रोतों को दिखलाया जाता है और उसके नीचे कोषों के प्रयोग दिखलाये जाते है, जबकि खाता प्रारूप कोषों के स्त्रोतों को बायीं ओर तथा कोषों के प्रयोग को दांई ओर दिखलाया जाता है।

## प्रतिवेदन के प्रारूप में कोष–प्रवाह विवरण
## (Funds Flow Statement)

| | | Rs. |
|---|---|---|
| ***(A)*** | ***Sources of Funds :*** | |
| (i) | Funds from Operations (Trading Profits) | ........... |
| (ii) | Issue of Share Capital for Cash and Current Assets only | ........... |
| (iii) | Issue of Debentures for Cash and Current Assets only | ........... |
| (iv) | Receipts or Increase of Long-term Loans | ........... |
| (v) | Sale of Non-Current Assets i.e. Fixed Assets | ........... |
| (vi) | Non-Trading Receipts (e.g. Dividends received) | ........... |

(vii) Decrease in Working Capital ...........

Total ...........

***(B) Applications of Funds :***

(i) Trading Loss or Funds Lost in Operations ...........
(ii) Redemption of Preference Share Capital ...........
(iii) Redemption of Debentures ...........
(iv) Repayment of Long-term Loans ...........
(v) Purchase of Non-Current Assets i.e. Fixed Assets ...........
(vi) Non-Trading Payments (e.g., Dividend paid, Donations, etc.) ...........
(vii) Tax Paid ...........
(viii) Payment of Proposed Dividend ...........
(ix) Increase in Working Capital ...........

Total ...........

**खाता प्रारूप में कोष–प्रवाह विवरण** (Funds-Flow Statement in Account Form) – कोष प्रवाह विवरण को खाता प्रारूप में अग्रवत् तैयार किया जाता है –

| *Sources of Funds* | *Amount Rs.* | *Application of Funds* | *Amount Rs.* |
|---|---|---|---|
| 1. Funds from Operations | ............ | 1. Trading Loss or Funds Lost in Operations | ............ |
| 2. Issue of Share Capital for Cash & Current Assets only | ............ | 2. Redemption of Preference Share Capital | ............ |
| 3. Issue of Debenture for Cash and Current Assets only | ............ | 3. Repayment of Loans | ............ |
| 4. Receipt of Long-term Loans | ............ | 4. Redemption of Debentures | ............ |
| 5. Sale of Non-Current Assets i.e. Fixed Assets | ............ | 5. Purchase of Non-Current Assets i.e. Fixed Assets | ............ |
| 6. Non-Trading Receipts | ............ | 6. Non-Trading Payments | ............ |
| 7. Decrease in Working Capital (If any) | ............ | 7. Tax Paid (treated as non-current item) | ............ |
| | | 8. Payment of Proposed Dividend of Previous year | ............ |
| | | 9. Increase in Working Capital (if any) | ............ |
| Total | ............ | Total | ............ |

**कोष प्रवाह–विवरण के तैयार करने में कठिनाई वाली मदें**

**(1) स्थायी खातों में परिवर्तन** (Changes in Non-Current Accounts) – स्थायी खातों (अर्थात् स्थायी सम्पत्तियों, स्थायी अथवा दीर्घकालीन दायित्व और पूँजी) में परिवर्तनों की प्रारम्भिक जाँच इन मदों के प्रारम्भिक व अन्तिम शेषों से करनी चाहिये। विचाराधीन अवधि में स्थायी सम्पत्तियों में वृद्धि तथा दीर्घकालीन दायित्वों व पूँजी में कमी कोषों के प्रयोग होते हैं। इसके विपरीत स्थायी सम्पत्तियों में कमी तथा दीर्घकालीन दायित्वों व पूँजी में वृद्धि कोषों के स्रोत होते हैं। किन्तु ध्यान रहे कि स्थायी खातों के केवल वे ही परिवर्तन कोष–प्रवाह विवरण में दिखलाये जाते हैं जो कि व्यवसाय की कार्यशील पूँजी में परिवर्तन लाते हैं।

किसी स्थायी खाते में परिवर्तन की राशि ज्ञात करने के लिये निम्न विधि अपनायी जायेगी –

(अ) **यदि स्थायी खाते की किसी मद के सम्बन्ध में कोई अतिरिक्त सूचना या सुराग नहीं दिया गया है** तो उस मद के प्रारंभिक और अन्तिम शेष में परिवर्तन के आधार पर ही परिवर्तन के सम्बन्ध में व्याख्या की जायेगी। उदाहरण के लिये जनवरी 1 और दिसम्बर 31 को एक व्यवसाय के भूमि खाते के शेष क्रमशः 50,000 रु. और 70,000 रु. दिये हुए हैं तथा इनके सम्बन्ध में कोई अतिरिक्त सूचना नहीं दी गई है तो प्रारंभिक व अन्तिम शेष के 20,000 रु. के अन्तर को व्यवसाय द्वारा भूमि का नकद क्रय माना जायेगा तथा इसे कोषों के प्रयोग में दिखलाया जायेगा।

(ब) **यदि किसी स्थायी खाते के सम्बन्ध में कुछ अतिरिक्त सूचनायें दी गई हैं** तो इस मद के सम्बन्ध में ठीक उसी प्रकार एक खाता खोल लेना चाहिये जिस प्रकार कि यह खाताबही में खुला होता है। इस खाते में सबसे पहले उसका प्रारम्भिक व अन्तिम शेष लिखना चाहिये। तत्पश्चात् उस खाते के सम्बन्ध में दी गई अतिरिक्त सूचनाओं अथवा सुरागों के आधार पर उसमें उसी प्रकार प्रविष्टियाँ करनी चाहिये जिस प्रकार से खाताबही के अन्तर्गत की जाती है और तत्पश्चात् उस खाते का शेष निकालकर गुप्त सूचना (hidden information) प्राप्त करनी चाहिये।

**दीर्घकालीन दायित्वों और पूँजी का प्रारम्भिक शेष जमा पक्ष की ओर दिखलाया जाता है तथा अन्तिम शेष नाम पक्ष की ओर।** इन खातों के सम्बन्ध में दी गई अतिरिक्त सूचनाओं के आधार पर इनमें आवश्यक प्रविष्टियाँ करने के पश्चात् यदि किसी खाते का नाम शेष आता है (अर्थात् नाम पक्ष जमा पक्ष से अधिक हो) तो अन्तर नयी पूँजी या ऋण की प्राप्ति कहलायेगा और उसे कोषों का स्रोत माना जायेगा। इसके विपरीत यदि ऐसे किसी खाते का जमा शेष आता है (अर्थात् जब जमा पक्ष नाम पक्ष से अधिक हो) तो अन्तर पुरानी पूँजी या ऋण का शोधन कहलायेगा और उसे कोषों का प्रयोग माना जायेगा। यह ध्यान रहे कि अंशों व ऋण–पत्रों से प्राप्त राशि को उनके अंकित मूल्य में प्रब्याज (premium) जोड़कर या कटौती घटाकर (जैसा भी किया हो) दिखलाना चाहिये। इसी तरह यदि किसी पूर्वाधिकारी अंशों या ऋण–पत्रों का शोधन प्रव्याज पर किया गया हो तो कोषों के प्रयोग में इनके अंकित मूल्य में प्रव्याज की राशि को जोड़कर दिखलाना चाहिये।

**किसी स्थायी सम्पत्ति का खाता खोलते समय उसका प्रारम्भिक शेष नाम पक्ष की ओर तथा अन्तिम शेष जमा पक्ष की ओर लिखा जाता है।** स्थायी सम्पत्ति खाते के ये शेष सम्पत्ति के अपलिखित मूल्य (Written Down Value) पर दिखलाये जा सकते हैं अथवा उनकी मूल लागत (Original Cost) पर। यदि ये शेष अपलिखित मूल्य पर हैं तो सम्पत्ति खाते के जमा पक्ष में वर्ष का ह्रास, सम्पत्ति के किसी भाग या सम्पूर्ण सम्पत्ति के विक्रय से प्राप्त राशि और इस व्यवहार से हानि (यदि कोई हो) तथा उस सम्पत्ति के पुनर्मूल्यांकन पर हानि (यदि कोई हो) का लेखा किया जाता है तथा नाम पक्ष की ओर सम्पत्ति विक्रय या पुनर्मूल्यांकन पर लाभ (यदि कोई हो), वर्ष काल में क्रय की गई सम्पत्ति की लागत तथा सम्पत्ति के अधि–आयोजित ह्रास (Over-Provision of Depreciation) की लाभ–हानि खाते में हस्तान्तरित की गई राशि लिखी जाती है। संक्षेप में, स्थायी सम्पत्ति खाता का प्रारूप इस प्रकार होता है –

**Fixed Assets Account**

| | *Rs.* | | *Rs.* |
|---|---|---|---|
| To Balance b/d (at W.D.V.) | | By Cash (amount realized on sale of the asset) | |
| To Adjusted P. & L. Account (Profit on sale or revaluation of the asset) | | By Adjusted P. & L. Account (Loss on sale or evaluation of the asset) | ........ |
| To Adjusted P. & L. Account (Over Provision of Depreciation) | | By Adjusted P. & L. Account (Depreciation for the year) | ........ |

| | | | |
|---|---|---|---|
| To Cash or Share Capital or Debendtures (Purchase of Asset) | | By Balance c/d (at W.D.V.) | |
| | | | |

उपरोक्त प्रकार से स्थायी सम्पत्ति का खाता तैयार करके छिपी सूचना प्राप्त की जा सकती है।

यदि स्थायी सम्पत्ति खाते के प्रारम्भिक व अन्तिम शेष मूल लागत पर दिखलाये जाते हैं तो स्थायी सम्पत्ति खाते के साथ पृथक् से एक 'ह्रास आयोजन खाता' और तैयार किया जाता है। ह्रास आयोजन खाते का प्रारम्भिक शेष जमा पक्ष में तथा अन्तिम शेष नाम पक्ष में दिखलाया जाता है। किसी सम्पत्ति के विक्रय पर उस सम्पत्ति पर आयोजित कुल ह्रास (accumulated depreciation) की राशि ह्रास आयोजन खाते के नाम पक्ष में तथा सम्पत्ति खाते के जमा पक्ष में लिख दी जाती है। सम्पत्ति की विक्रय से प्राप्त राशि तथा इस व्यवहार में लाभ–हानि का सम्पत्ति खाते में लेखा पूर्ववत् ही होता है। इसी प्रकार सम्पत्ति के क्रय की लागत पूर्ववत् सम्पत्ति खाते के नाम पक्ष में दिखलाई जाती है। सम्पत्ति पर वर्ष का ह्रास 'ह्रास आयोजन खाता' के जमा पक्ष की ओर और, 'आधिक्य ह्रास आयोजन' की लाभ–हानि खाते में पुनः हस्तान्तरित राशि जमा नाम पक्ष में दिखलायी जाती है। संक्षेप में, इन दोनों खातों के अन्तर्गत व्यवहार निम्न प्रकार से दिखलाये जाते हैं –

**Fixed Assets Account**

| | ***Rs.*** | | ***Rs.*** |
|---|---|---|---|
| To Balance b/d (at original cost) | | By Cash (amount realized on sale of the asset) | |
| To Adjusted P. & L. Account (Profit on sale or revaluation of the asset) | | By Provision for Dep. Account (accumulated depre. on asset sold) | |
| To Cash (Purchase of Asset) | | By Adjusted P. & L. Account (Loss on sale or evaluation of the asset) | ........ |
| | | By Balance c/d (at original cost) | |
| | | | |

**Provision for Depreciation Account (or Accumulated Depreciation Account)**

| | ***Rs.*** | | ***Rs.*** |
|---|---|---|---|
| To Fixed Assets (accumulated depreciation on asset sold) | | By Balance b/d | |
| To Adjusted P. & L. Account (Over-Provision of depreciation) | | By Adjusted P. & L. Account (Depreciation for the year) | |
| To Balance c/d | | | ........ |
| | | | |

ध्यान रहे कि किसी स्थायी सम्पत्ति के क्रय पर दी गई वास्तविक राशि कोषों का प्रयोग होती है तथा इसके विक्रय से प्राप्त शुद्ध राशि (अर्थात् इसके विक्रय सम्बन्धी व्ययों को घटाकर) ही कोषों का स्रोत मानी जाती है।

**(2) विनियोग** (Investments) – व्यावसायिक विनियोग दो प्रकार के होते हैं – अल्पकालीन विनियोग व दीर्घकालीन विनियोग। पहले प्रकार के विनियोग चालू सम्पत्ति और दूसरे प्रकार के स्थायी सम्पत्ति कहलाते हैं। अल्पकालीन विनियोगों के लिये खाता खोलने की आवश्यकता नहीं होती, क्योंकि इनमें परिवर्तन कार्यशील पूँजी की तालिका से स्वयं ही समायोजित हो जाते हैं। अल्पकालीन विनियोगों के विक्रय से लाभ–हानि परिचालन लाभ–हानि मानी जाती है, अतः इसके लिये लाभों में कोई समायोजन नहीं किया जाता है। लेकिन दीर्घकालीन विनियोगों के लिये एक अलग खाता खोल देना चाहिये और प्रारम्भिक व अन्तिम शेषों को इस खाते के क्रमशः नाम व जमा पक्ष में लिख देना चाहिये। क्रय के पूर्व लाभों से प्राप्त लाभांश (Dividend received out of pre-acquisition) को विनियोग खाते के जमा पक्ष में लिखना चाहिये। विनियोग के विक्रय पर लाभ–हानि का लेखा करने के पश्चात् विनियोग खाते का शेष विनियोग का विक्रय (यदि नाम शेष अधिक हो) या विनियोगों का क्रय (यदि जमा शेष अधिक हो) प्रदर्शित करेगा। इनके विक्रय से लाभ–हानि को स्थायी सम्पत्तियों के विक्रय से लाभ–हानि की तरह ही समायोजित किया जाता है।

**(3) चालू सम्पत्तियों पर आयोजन** (Provision Against Current Assets) – विभिन्न चालू सम्पत्तियों पर सम्भावित हानियों से बचने के लिये विभिन्न प्रकार के आयोजन किये जाते हैं, जैसे संदिग्ध ऋणों के लिये आयोजन (Provision for Discount on Debtors), देनदारों पर कटौती के लिये आयोजन (Provision for Discount on Debtors), स्कन्ध हानि के लिये आयोजन (Provision for Loss of Stock or Allowance for Inventory Loss) आदि। कोष–विवरण में इन आयोजनों को दिखलाने के लिये निम्न दो में कोई भी रीति प्रयोग की जा सकती है –

(क) आयोजन खाते के प्रारम्भिक शेष को उससे सम्बन्धित चालू सम्पत्ति के प्रारम्भिक शेष से तथा आयोजन खाते के अन्तिम राशि को सम्पत्ति के अन्तिम शेष से घटा दिया जाये।

(ख) आयोजन खाते के प्रारम्भिक व अन्तिम शेषों को क्रमशः प्रारम्भिक व अन्तिम चालू दायित्वों के साथ दिखलाया जाये।

नोट : यदि तुलनात्मक चिट्ठों में दिये गये सभी देनदार अच्छे (Good) दिये हों तो संदिग्ध ऋणों के लिये आयोजन की राशि गैर–चालू मद (non-current item) मानी जायेगी तथा इस खाते के परिवर्तन का लेखा समायोजित लाभ–हानि खाते में संचितियों की भाँति किया जायेगा, अर्थात् चाले वर्ष में इस खाते की वृद्धि डेबिट पक्ष में तथा कमी क्रेडिट पक्ष में दिखलायी जायेगी।

**(4) करों के लिये आयोजन** (Provision for Taxation) – इसे दिखलाने की निम्न दो वैकल्पिक रीतियाँ हैं –

**(I) लाभों पर एक प्रभार मानना** – इस स्थिति में –

(क) इसके प्रारंभिक व अन्तिम शेषों को 'कार्यशील पूँजी के विवरण' में चालू दायित्वों के अन्तर्गत दिखलाते हैं।

(ख) चूँकि यह चालू दायित्व चालू वर्ष के लाभों से सृजित किया जाता है, अतः संचालन से कोषों का अन्तर्वाह इस दायित्व की राशि से कम हो जाता है। इसीलिये संचालन से कोष की गणना यदि समायोजित लाभ–हानि खाता बनाकर की जा रही है (अथवा लाभ–हानि खाते के प्रारम्भिक व अन्तिम शेषों के अन्तर से की जा रही है) तो इसके लिये इस खाते में कोई समायोजन नहीं किया जायेगा। लेकिन यदि यह गणना चालू वर्ष के लाभ की राशि से की जा रही है तो यह देखना होगा कि लाभ की यह राशि चालू वर्ष में आयोजित कर की राशि घटाने से पूर्व की है अथवा इसके बाद

की है। प्रथम स्थिति में आयोजित कर की राशि को वर्ष के लाभ से घटाया जायेगा तथा द्वितीय स्थिति में इसके लिये किसी प्रकार के समायोजन की आवश्यकता नहीं होती।

(ग) चालू वर्ष में भुगतान की गई कर की राशि के कोषों के प्रयोग में नहीं दिखलाया जायेगा, क्योंकि यह भुगतान दो चालू खातों (रोकड़ और कर–आयोजन अथवा कर के अग्रिम भुगतान) को ही प्रभावित करता है, अतः इससे शुद्ध कार्यशील पूँजी में कोई परिवर्तन नहीं आता है।

**(II) लाभों का नियोजन (अथवा आन्तरिक संचय) मानना** – इस स्थिति में –

(क) इसे 'कार्यशील पूँजी के विवरण' में नहीं दिखलाया जायेगा।

(ख) वर्ष में आयोजित कर की राशि को समायोजित लाभ–हानि खाते में नाम पक्ष की ओर दिखाया जायेगा। यदि संचालन से कोष की गणना लाभ–हानि खाते के प्रारंभिक व अंतिम शेषों के अन्तर से की जा रही है, अथवा चालू वर्ष के कर घटाने के पश्चात् के लाभ से की जा रही है तो चालू वर्ष में आयोजित कर की राशि को उसमें वापस जोड़ दिया जायेगा। हाँ, यदि वर्ष का लाभ कर घटाने से पूर्व का है तो फिर इसमें इस मद के लिये कोई समायोजन की आवश्यकता नहीं होती है।

(ग) वर्ष में भुगतान की गई आय–कर की राशि को कोषों के प्रयोग में दिखलाया जायेगा।

**नोट** : (i) लेखांकन प्रमाप 3 (AS – 3) के अनुसार करों के लिये आयोजन को एक गैर–चालू मद मानते हुए लाभों के नियोजन के रूप में दिखलाना चाहिये। प्रश्न में चाहे यह मद चालू दायित्वों के अन्तर्गत दी गई है फिर भी इसे गैर–चालू मद की तरह ही माना जाना चाहिए। अतः वर्ष में भुगतान की गई आय–कर की राशि को कोषों के प्रयोग में तथा वर्ष में आयोजित कर राशि को समायोजित लाभ–हानि के डेबिट पक्ष में दिखलाना चाहिये। वस्तुतः चिट्ठे की तारीख पर कर आयोजन और कर के वास्तविक भुगतान के बीच एक लम्बा समायान्तर होने के कारण इसे कार्यशील पूँजी की गणना से अलग रखना ही उचित है।

(ii) यदि प्रश्न में वर्ष में आयोजित कर की राशि अथवा वर्ष में भुगतान की गयी कर की राशि नहीं दी गई है तो इसे ज्ञात करने के लिये एक 'करों के लिये आयोजन खाता' बना लेना चाहिए। कर के लिये आयोजन खाते का प्रारूप निम्नलिखित है :

**Provision for Taxation Accounts**

| | ***Rs.*** | | ***Rs.*** |
|---|---|---|---|
| To Bank A/c (Tax paid) | ........ | By Balance b/d | ........ |
| To Balance c/d | ........ | By P. & L. a/c (provision made during the year) | ........ |
| | | | |

उपर्युक्त प्रारूप से स्पष्ट है कि इस खाते के जमा पक्ष में इसका प्रारंभिक शेष तथा नाम पक्ष में अंतिम शेष लिखना चाहिये। वर्ष में भुगतान की गई आय–कर की राशि को इस खाते के नाम पक्ष में लिख देना चाहिये। इसके पश्चात् इस खाते का शेष वर्ष में आयोजित कर की राशि (यदि नाम शेष जमा शेष से अधिक है) अथवा कर का आधिक्य आयोजन (यदि जमा शेष नाम शेष से अधिक है) बतलायेगा। कर के आधिक्य आयोजन की राशि को समायोजित लाभ–हानि खाते में जमा

पक्ष की ओर दिखलाया जाता है। यदि संचालन से कोष की गणना चालू वर्ष के लाभ से की जाती है अथवा लाभ–हानि खाते के प्रारम्भिक व अन्तिम शेषों के अन्तर से की जा रही है तो आधिक्य आयोजन की राशि को इससे घटाया जा सकता है।

(iii) यदि चिट्ठों में दर्शाये गये कर आयोजन खाते के शेषों के अतिरिक्त कोई अन्य सूचना नहीं दी गई है तो प्रारम्भिक शेष को चालू वर्ष में भुगतान कर दिया गया मानना चाहिये और इसे कोषों के प्रयोग में दिखलाना चाहिये और अन्तिम शेष को चालू वर्ष का आयोजन मानते हुए समायोजित लाभ–हानि के डेबिट में दिखलाना चाहिये।

(iv) यदि प्रश्न में तुलनात्मक चिट्ठों में दिये आयोजन खाते के प्रारम्भिक और अन्तिम शेषों के साथ अतिरिक्त सूचनाओं में केवल वर्ष में आयोजित कर की राशि दी हुई है तथा भुगतान की गई कर की राशि अज्ञात है तो उपर्युक्त खाते का अवशेष चालू वर्ष में भुगतान की गयी कर की राशि दर्शायेगा। इसी तरह यदि चिट्ठे में दिये आयोजन खाते के प्रारम्भिक और अन्तिम शेषों के साथ अतिरिक्त सूचनाओं में केवल वर्ष में भुगतान की गई कर की राशि की गई है तो इस खाते का अन्तर वर्ष में आयोजित कर की राशि होगी।

(v) यदि तुलनात्मक चिट्ठों में कर आयोजन खाता का कोई शेष नहीं दिया है, किन्तु अतिरिक्त सूचना में भुगतान की गई कर की राशि दी है तो यह राशि एक ओर गैर–परिचालन व्यय की तरह समायोजित लाभ–हानि खाते के डेबिट पक्ष में तथा दूसरी ओर कोष प्रवाह विवरण में कोषों के प्रयोग के रूप में दिखलाई जायेगी।

**(5) प्रस्तावित लाभांश** (Proposed Dividend) – कम्पनी की वार्षिक सामान्य सभा में पारित होने से पूर्व यह लाभों का एक भाग ही होता है किन्तु जब यह इस सभा में पारित हो जाता है (सामान्यतया ऐसा ही होता है) तो यह कम्पनी का चालू दायित्व बन जाता है। यह एक गैर–परिचालन अथवा सामान्य नियोजन मद है। अतः

(क) इसे 'कार्यशील पूँजी के विवरण' में नहीं दिखलाया जायेगा।

(ख) चालू वर्ष में गत वर्ष या उससे पूर्व के वर्षों के प्रस्तावित लाभांश की भुगतान की गयी राशि को कोषों के प्रयोग में दिखलाया जायेगा। पिछले वर्ष का प्रस्तावित लाभांश चालू वर्ष में भुगतान कर दिया गया माना जाता है।

(ग) चालू वर्ष में प्रस्तावित लाभांश की राशि को समायोजित लाभ–हानि के नाम पक्ष में दिखलाया जायेगा। यदि संचालन से कोष की गणना लाभ–हानि के प्रारम्भिक व अन्तिम शेषों के अन्तर से की जाती है तो चालू वर्ष में प्रस्तावित लाभांश की राशि को इस लाभ में जोड़ा जायेगा। लेकिन यदि यह गणना चालू वर्ष के लाभ से की जाती है तो इसके लिये कोई समायोजन की आवश्यकता नहीं होती है, क्योंकि चालू वर्ष का लाभ इस लाभांश के घटाने से पूर्व का होता है।

**(6) अन्तरिम लाभांश** (Interim Dividend) – अन्तरिम लाभांश की भुगतान की गई राशि कोषों के प्रयोग में तथा समायोजित लाभ–हानि खाते के नाम पक्ष में दिखलाते हैं। लाभ–हानि खाते के प्रारम्भिक व अन्तिम शेषों के अन्तर से संचालन से कोष की गणना में इसे लाभ की राशि में जोड़ देते हैं। यदि यह गणना चालू वर्ष के लाभ से की जाती है तो इसके लिये कोई समायोजन नहीं किया जायेगा।

**(7) अयाचित लाभांश** (Unclaimed Dividend) – कम्पनी द्वारा घोषित किन्तु अंशधारियों द्वारा संग्रह न किया गया लाभांश अयाचित (या भुगतान न किया गया) लाभांश कहलाता है। अयाचित लाभांश चालू दायित्व का मद है, अतः इसे कार्यशील पूँजी में परिवर्तनों की अनुसूची में दिखलाना चाहिये।

यदि अयाचित लाभांश की राशि केवल चालू वर्ष के चिट्ठे में ही दी गई है और वर्ष में भुगतान की गई लाभांश की राशि पूरक सूचनाओं में दी गई है तो :

(अ) वर्ष में भुगतान किया गया लाभांश और चालू वर्ष का अयाचित लाभांश का योग वर्ष में घोषित किये लाभांश की राशि मानी जायेगी और इसे समायोजित लाभ–हानि के डेबिट पक्ष में दर्शाया जायेगा (अथवा शुद्ध लाभ की राशि में जोड़ा जायेगा)।

(ब) भुगतान किये गये लाभांश और अयाचित लाभांश की राशियों को कोष प्रवाह विवरण में कोषों के प्रयोग की तरह दिखलाया जायेगा।

(स) अयाचित लाभांश की राशि को कार्यशील पूँजी में परिवर्तनों की अनुसूची में चालू दायित्व की तरह दिखलाया जायेगा।

**(8) प्राप्त एवं प्राप्यनीय लाभांश** (Dividend Received and Receivable) – लाभांश की प्राप्त एवं प्राप्यनीय शुद्ध राशि (अर्थात् कुल लाभांश राशि में से स्रोत पर काटा गया आय–कर घटाकर) कोषों का स्रोत होती है, लेकिन यह परिचालन आय नहीं होती। अतः यदि इसे लाभों में सम्मिलित कर लिया गया है, तो शुद्ध लाभ से इसे घटाकर (समायोजित लाभ–हानि खाते में जमा पक्ष की ओर दिखाकर) ही संचालन से कोष की गणना करनी चाहिए। यदि प्राप्त या प्राप्यनीय लाभांश की कुल राशि (Gross Amount) को कोषों का स्रोत दिखलाया जाता है तो स्रोत पर काटे गये आय–कर को कार्यशील पूँजी की तालिका में चालू सम्पत्ति के रूप में दिखलाना होगा। ध्यान रहे कि पूँजीगत लाभांश की प्राप्ति का लेखा विनियोग खाते में होता है। अतः इसका लाभों में कोई समायोजन नहीं किया जायेगा।

प्राप्यनीय लाभांश को कार्यशील पूँजी की तालिका में चालू सम्पत्ति के रूप में दिखलाना चाहिये। यदि पुस्तकों में प्राप्यनीय लाभांश की शुद्ध राशि दिखलायी जाती है तो प्राप्यनीय लाभांश तथा स्रोत पर काटा गया आय–कर दोनों ही चालू सम्पत्ति के रूप में दिखलाये जायेंगे।

**(9) स्थायी सम्पत्तियों और दीर्घकालीन विनियोगों के विक्रय पर लाभ अथवा हानि** (Profit or Loss on Sale of Fixed Assets and Long-term Investments) – इस प्रकार के लाभ अथवा हानि को लेखा–पुस्तकों में दिखलाने की निम्न तीन रीतियाँ हैं –

(क) **इसे लाभ–हानि खाते में हस्तान्तरित किया जा सकता है।** इस स्थिति में संचालन से कोष की गणना में स्थायी सम्पत्ति के विक्रय पर लाभ को शुद्ध लाभ से घटाया जायेगा (समायोजित लाभ–हानि खाते में जमा पक्ष की ओर लिखा जायेगा) तथा हानि को शुद्ध लाभ में जोड़ा जायेगा (समायोजित लाभ–हानि खाते में नाम पक्ष की ओर लिखा जायेगा)।

(ख) **इसे किसी संचय, जैसे सामान्य संचय, पूँजी संचय आदि में हस्तान्तरित किया जा सकता है।** इस स्थिति में संचालन से कोष की गणना में इसका कोई समायोजन नहीं होगा।

(ग) **इसे वर्तमान चिट्ठे में यूँ ही सम्पत्ति या दायित्व की तरह दिखलाया जा सकता है।** इस स्थिति में भी संचालन से कोष की गणना में इसका कोई समायोजन नहीं होगा।

यह ध्यान रखना चाहिये कि जब तक प्रश्न में स्पष्ट रूप से इसके विपरीत न कहा गया हो, स्थायी सम्पत्ति के विक्रय से लाभ अथवा हानि को लाभ–हानि खाते में हस्तान्तरित किया हुआ माना जायेगा।

**(10) आन्तरिक संचय** (Internal Reserves) – वर्तमान वर्ष में लाभ–हानि खाते के विभिन्न कोषों में हस्तान्तरित की गयी राशियों को संचालन से कोष की गणना में वर्ष के शुद्ध लाभ में पुनः जोड़ा जायेगा (समायोजित लाभ–हानि खाते में नाम पक्ष की ओर लिखा जायेगा)। यदि इन कोषों से धन लाभ–हानि खाते में हस्तान्तरित किया गया है तो इसे शुद्ध लाभ से घटाया जायेगा (समायोजित लाभ–हानि खाते में जमा पक्ष की ओर लिखा जायेगा)। यदि किसी कोष में कमी या वृद्धि लाभ–हानि खाते से या को हस्तान्तरण के अतिरिक्त किसी अन्य कारण से हो तो इसका लाभों में कोई समायोजन नहीं किया जायेगा।

## लागत–मात्रा–लाभ सम्बन्ध अथवा सम–विच्छेद विश्लेषण
## (Cost-volume-profit Relationship or Break-even Analysis)

वर्तमान समय में किसी संस्था द्वारा अर्जित लाभों की रकम को ही उस संस्था की सफलता का मापदण्ड माना जाता है। इसी कारण सभी संस्थाएं अपने लाभों को अधिकतम करना चाहती है। लाभों की रकम वस्तु की लागत, विक्रय मात्रा तथा विक्रय मूल्य, आदि अनेक तत्वों से प्रभावित होती है। वस्तुतः किसी वस्तु की उत्पादन–मात्रा, लागत, लाभ व विक्रय मूल्य में गहरा सम्बन्ध होता है। उदाहरण के लिए लाभ बिक्री पर निर्भर करता है, विक्रय मूल्य काफी सीमा तक लागत पर निर्भर करता है एवं लागत, उत्पादन की मात्रा पर निर्भर करती है। जब एक लेखापाल उत्पादन के किसी भी स्तर पर इन तत्वों का विश्लेषण करके इनमें पारस्परिक सम्बन्ध स्थापित करता है तो उसे 'लागत–मात्रा–लाभ विश्लेषण' या 'सम–विच्छेद विश्लेषण' कहा जाता है।

वस्तुतः 'लागत–मात्रा–लाभ' अथवा 'विच्छेद विश्लेषण' किसी व्यावसायिक संस्था की विक्रय मात्रा के सम्बन्ध में उसके आगमों एवं लागतों का विश्लेषण करके विक्रय के विभिन्न स्तरों पर लाभ की स्थिति का अध्ययन करने की एक तकनीक है।

संक्षेप में, लागत–मात्रा लाभ सम्बन्ध को निम्नलिखित प्रकार व्यक्त किया जा सकता है –

(1) उत्पादन की मात्रा एवं उत्पादन की लागत में ऋणात्मक सम्बन्ध होता है अर्थात् उत्पादन की मात्रा बढ़ने पर प्रति इकाई लागत की मात्रा कम होती है।

(2) उत्पादन की लागत एवं लाभ की मात्रा में ऋणात्मक सम्बन्ध होता है अर्थात् उत्पादन की लागत कम होने के साथ–साथ लाभ की मात्रा बढ़ती जाती है।

(3) उत्पादन की मात्रा एवं लाभ की मात्रा में धनात्मक सम्बन्ध होता है अर्थात् उत्पादन की मात्रा बढ़ने के साथ–साथ लाभ की मात्रा में भी वृद्धि होती जाती है।

## लागत–मात्रा–लाभ सम्बन्ध का महत्त्व
## (Importance of Cost-Volume Profit Relationship)

लागत–मात्रा–लाभ सम्बन्ध एक महत्वपूर्ण प्रबन्धकीय उपकरण है। प्रबन्धकीय नियोजन एवं नियन्त्रण प्रक्रिया में यह महत्वपर्ण भूमिका का निर्वहन करता है। संक्षेप में, इसके महत्त्व को निम्नलिखित विवेचन के आधार पर स्पष्ट किया जा सकता है–

1. इस सम्बन्ध की सहायता से यह जानकारी मिल जाती है कि संस्था का सम–विच्छेद बिन्दु क्या होगा अर्थात् कितना उत्पादन/विक्रय करने पर संस्था को न लाभ होगा एवं न हानि।

2. इस सम्बन्ध की सहायता से यह पता चल जाता है कि एक निश्चित उत्पादन किये जाने की दशा मे कितनी लागत आयेगी।

3. इस सम्बन्ध के आधार पर यह जानकारी भी हो जाती है कि किसी निश्चित विक्रय स्तर पर कितना लाभ अर्जित होगा।

4. यह सम्बन्ध यह निर्धारित करने में भी सहायक होता है कि एक निश्चित लाभ प्राप्त करने के लिए संस्था को कितना विक्रय करना होगा।

5. इस सम्बन्ध की सहायता से यह भी पता चल जाता है कि उत्पादन लागत में एक निश्चित परिवर्तन होने पर लागत एवं लाभ पर क्या प्रभाव पड़ेगा।

6. इस सम्बन्ध की सहायता से यह जानकारी भी मिल जाती है कि विक्रय मूल्य में परिवर्तन एक निश्चित लाभ की मात्रा को किस प्रकार प्रभावित करेगा।

7. यह सम्बन्ध यह निर्णय लेने में भी सहायता करता है कि संस्था को विभिन्न वैकल्पिक उत्पादों मे से किस उत्पाद का चुनाव करना चाहिए।

8. यह सम्बन्ध अनुकूलतम विक्रय मिश्रण के निर्धारण में भी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करता है। उपरोक्त विवेचन से स्पश्ट है कि लागत–मात्रा–लाभ सम्बन्ध प्रबन्ध–तन्त्र के लिए अत्यन्त उपयोगी होता है क्योंकि यह लाभ नियोजन, लागत नियन्त्रण एवं निर्णयन में सहायता करता है।

'लागत–मात्रा–लाभ' अथवा 'सम–विच्छेद' की विभिन्न विधियों को निम्नलिखित दो भागों में बाँटा जा सकता है :

1. बीजगणितीय विधियाँ (Algebraic Methods)
2. लेखाचित्रीय विधियाँ (Graphic Methods)

## बीजगणितीय विधियाँ (Algebraic Methods)

'लागत–मात्रा–लाभ सम्बन्धों का अध्यनन करने के लिए सामान्यतः निम्नलिखित बीजगणितीय विधियों का प्रयोग किया जाता है :

(i) अंशदान (Contribution)
(ii) लाभ–मात्रा–अनुपात (Profit-Volume Ratio)
(iii) सम–विच्छेद बिन्दु (Break-Even Point)
(iv) सुरक्षा–सीमा (Margin of Safety)

इन सभी तकनीकों की विस्तृत व्याख्या निम्नलिखित है :

### (i) अंशदान (Contribution)

विक्रय मूल्य तथा विक्रय की सीमान्त लागत के अन्तर को 'अंशदान' (Contribution) कहते हैं। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि यह एक प्रकार का कोष है जिसका उपयोग पहले स्थिर लागतों की पूर्ति हेतु किया जाता है एवं जो शेष बचता है वह लाभ कहलाता है। इस प्रकार स्थिर लागतों एवं लाभ का योग ही 'अंशदान' कहलाता है। इसे 'सकल लाभ' (Gross Margin or Gross Profit) भी कहते हैं।

सूत्र के रूप में, अंशदान को निम्नवत् व्यक्त किया जा सकता है :

(i) अंशदान (Contribution) = विक्रय (Sales) – परिवर्तनशील लागत (Variable Cost)

or $$C = S - V$$

परिवर्तनशील लागत में प्रत्यक्ष सामग्री, प्रत्यक्ष श्रम, प्रत्यक्ष व्यय तथा सभी परिवर्तनशील उपरिव्ययों को शामिल किया जाता है। अन्य शब्दों में परिवर्तनशील लागत का अभिप्राय सीमान्त लागत से है।

(ii) अंशदान (Contribution) = स्थिर लागत (Fixed Cost) + लाभ (Profit)

or $$C = F + P$$

अंशदान के उपर्युक्त दोनों सूत्रों को निम्नलिखित 'सीमान्त लागत समीकरण' के रूप में भी प्रस्तुत किया जा सकता है :

Sales – Variable Cost = Fixed cost + Profit

or $$S - V = F + P$$

अंशदान के उपर्युक्त सूत्रों के विश्लेषण से स्पष्ट है कि यदि अंशदान की रकम स्थिर लागतों से अधिक होगी ($C > F$) तो संस्था को लाभ होगा, जबकि अंशदान की रकम स्थिर लागतों से कम होने पर ($C < F$) हानि तथा बराबर ($C = F$) होने पर न कोई लाभ और न ही कोई हानि होगी।

**प्रति इकाई अंशदान** (Contribution per Unit) – यदि किसी वस्तु की एक इकाई के विक्रय मूल्य में से एक इकाई की परिवर्तनशील लागत घटा दी जाती है तो जो शेष बचता है उसे 'प्रति इकाई अंशदान' कहा जाता है। सूत्र के रूप में निम्नवत् लिखा जा सकता है :

$$CP = SP - VP$$

Where : CP = Contribution per Unit
SP = Selling Price per Unit
VP = Variable Cost per Unit

अंशदान की सहायता से लाभ एवं स्थिर लागत को आसानी से ज्ञात किया जा सकता है। इस सम्बन्ध में निम्नलिखित सूत्र ध्यान रखने योग्य है :

(i) Profit = (Sales in Units × Contribution per Unit) – Fixed Cost
(ii) Fixed Cost = (Sales in Units × Contribution per Unit) – Profit

**प्रस्तावित या अतिरिक्त व्ययों की पूर्ति हेतु वांछित विक्रय मात्रा ज्ञात करना** – किसी भी संस्था के प्रबन्ध तन्त्र द्वारा विक्रय वृद्धि की योजनाओं का निर्माण करने पर स्वाभाविक ही है कि विक्रय व्ययों में निश्चित रूप से वृद्धि होगी। ऐसी अपेक्षित वृद्धि की स्वीकृति प्रबन्ध तन्त्र तभी देगा जब यह जानकारी मिल जाये कि इनकी पूर्ति हेतु कितनी अतिरिक्त विक्रय मात्रा की आवश्यकता होगी।

अंशदान की सहायता से वांछित विक्रय मात्रा निम्नलिखित सूत्र द्वारा ज्ञात की जा सकती है :

$$\text{Additional Sales Volume (in Units)} = \frac{\text{Proposed or Increased Expenditure}}{\text{Contribution per Unit}}$$

**अंशदान के लाभ या उपयोगिता** (Advantages or Utility of Contribution) – 'लागत–मात्रा–लाभ' अथवा 'सम–विच्छेद विश्लेषण' के अध्ययन में अंशदान का विशेष महत्त्व है। सामान्यतः इसके अध्ययन से प्रबन्धकों को निम्नलिखित लाभ प्राप्त होते है :

(i) अंशदान की सहायता से सम–विच्छेद बिन्दु, लाभ–मात्रा अनपात तथा उत्पादों या विभागों की लाभदायकता का निर्धारण करने में सुविधा रहती है। जिस भी विभाग या उत्पाद का अंशदान सबसे अधिक होता है, उसे ही लाभदायक माना जाता है।

(ii) किसी वस्तु विशेष के उत्पादन के चालू रखने या बन्द करने का निर्णय भी उस वस्तु के अंशदान पर ही निर्भर करता है।

(iii) उत्पादन मिश्रण सम्बन्धी निर्णय के अन्तर्गत सर्वाधिक लाभप्रद मिश्रण का चुनाव भी अंशदान के आधार पर ही किया जाता है।

(iv) उत्पादन प्रक्रिया का चुनाव भी अंशदान के आधार पर ही सम्भव होता है। जो भी प्रक्रिया अधिक अंशदान उपलब्ध कराती है, उसी प्रक्रिया को चुना जाता है।

### (ii) लाभ–मात्रा–अनुपात
### (Profit-Volume Ratio)

अंशदान का विक्रय मूल्य के साथ जो अनुपात है, उसे ही 'लाभ–मात्रा अनुपात' कहते है। वस्तुतः इसे 'लाभ–मात्रा अनुपात' के स्थान पर 'अंशदान विक्रय अनुपात' (Contribution/Sales Ratio) कहना अधिक उपयुक्त होगा। सामान्यतः इसे प्रतिशत के रूप में व्यक्त किया जाता है। संक्षेप में, इसे ज्ञात करने के लिए अंशदान की रकम में विक्रय का भाग देकर 100 से गुणा कर देते है। प्रदत्त सूचनाओं को ध्यान में रखते हुए इसकी गणना हेतु निम्नलिखित में से किसी एक सूत्र का प्रयोग कर सकते है :

(i) $$\text{P/V Ratio} = \frac{C}{S}\times 100 \text{ or } \frac{CP}{SP}\times 100 \text{ or } \frac{S-V}{S}\times 100 \text{ or } \frac{SP-VP}{SP}\times 100$$

Where :
C = Total Contribution
S = Total Sales in Rs.
CP = Contribution per Unit
SP = Selling Price per Unit
V = Total Variable Cost
VP = Variable Cost per Unit

(ii) $$\text{P/V Ratio} = \frac{\text{Fixed cost} + \text{Profit}}{\text{Sales}}\times 100 \text{ or } \frac{F+P}{S}\times 100$$

**यदि दो भिन्न अवधियों की बिक्री तथा लाभ की राशि दी हुई हो तो लाभ–मात्रा अनुपात ज्ञात करने के लिए निम्नलिखित सूत्र का प्रयोग करेगें –**

$$\text{P/V Ratio} = \frac{\text{Change in Profit}}{\text{Change in Sales}}\times 100$$

कभी–कभी दो भिन्न अवधियों की बिक्री तथा कुल लागत दे दी जाती है, ऐसी दशा में प्रत्येक अवधि का लाभ ज्ञात करने हेतु अवधि की विक्रय राशि में से उसी अवधि की कुल लागत रकम को घटा दिया जाता है।

**यदि लाभ तथा सुरक्षा–सीमा की राशि दी हुई हो तो :**

$$\text{P/V Ratio} = \frac{\text{Profit}}{\text{Margin of Safety}}\times 100 \text{ or } \frac{P}{MS}\times 100$$

लाभ–मात्रा अनुपात की सहायता से अंशदान, लाभ, स्थिर एवं परिवर्तनशील लागतों को आसानी से ज्ञात किया जा सकता है। इस सम्बन्ध में निम्नलिखित सूत्र ध्यान रखने योग्य है :

| | | | |
|---|---|---|---|
| (i) | Contribution | = | Sales × P/V Ratio |
| or | C | = | S × P/V Ratio |
| (ii) | Variable Cost | = | Sales × (100 - % or P/V Ratio) |
| (iii) | Fixed Cost | = | (Sales in Rs. × P/V Ratio) – Profit |
| (iv) | Profit | = | (Sales × P/V Ratio) – Fixed Cost |

**विशेष** – लाभ–मात्रा अनुपात तथा परिवर्तनशील लागत का विक्रय के साथ प्रतिशत परस्पर आश्रित है। दोनों में किसी के भी ज्ञात प्रतिशत को 100 में से घटाने पर जो शेष बचता है वही दूसरें मद का विक्रय मूल्य के साथ प्रतिशत होता है। उदाहरणार्थ – यदि P/V Ratio 20% है तो यह माना जायेगा कि परिवर्तनशील लागते बिक्री की 100 – 20 = 80% हैं तथा यदि यह कहा जाये कि परिवर्तनशील लागतें बिक्री की 60% हैं तो लाभ–मात्रा अनुपात 100 – 60 = 40% होगा। संक्षेप में, इसी बात को सूत्र के रूप में निम्नवत् व्यक्त किया जा सकता है :

P/V Ratio = 100 - % of Variable Cost to Sales

% of Variable Cost to Sales = 100 - % of P/V Ratio

निम्नलिखित उदाहरणों से लाभ–मात्रा अनुपात की गणना विधि भली प्रकार स्पष्ट हो जायेगी :

**प्रस्तावित या अतिरिक्त व्ययों की पूर्ति हेतु वांछित विक्रय राशि ज्ञात करना** – व्ययों में अपेक्षित वृद्धि पूर्ति हेतु कितनी अतिरिक्त विक्रय राशि की आवश्यकता होगी, यह जानकारी प्रबन्ध के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है क्योंकि यह जानकारी होने के पश्चात् ही व्ययों में वृद्धि की स्वीकृति या अस्वीकृति का निर्णय लिया जाता है। लाभ–मात्रा अनुपात की सहायता से अतिरिक्त विक्रय राशि निम्नलिखित सूत्र के द्वारा ज्ञात की जा सकती है :

$$\text{Additional Sales in Rs.} = \frac{\text{Proposed or Increased Expenditure}}{\text{P/V Ratio}}$$

**बहु–उत्पाद फर्मो के लिए संयुक्त लाभ–मात्रा अनुपात ज्ञात करना** (Combined P/V Ratio for Multi-product Firms) – बहुत से उत्पादक एक से अधिक प्रकार की वस्तुओं का उत्पादन करते है, ऐसी फर्मों को 'बहु–उत्पाद फर्म' कहा जाता है। ऐसी फर्मे अपनी सभी वस्तुओं के लिए संयुक्त लाभ–मात्रा अनुपात ज्ञात करना चाहती है। संयुक्त लाभ–मात्रा अनुपात ज्ञात करने की प्रक्रिया निम्नलिखित है :

1. सर्वप्रथम, प्रत्येक वस्तु का पीछे बताये ये सूत्रों के अनुसार अलग–अलग लाभ–मात्रा अनुपात ज्ञात किया जायेगा।
2. प्रत्येक वस्तु की बिक्री का सभी वस्तुओं की कुल बिक्री के साथ प्रतिशत ज्ञात करेंगें।
3. अन्त में, प्रत्येक वस्तु के लाभ–मात्रा अनुपात तथा विक्रय प्रतिशत की आपस में गुणा करेंगे और इस प्रकार प्राप्त गुणनफलों को जोड़ देंगे। यह योग ही Combined या Overall P/V Ratio कहलायेगा।

**लाभ मात्रा अनुपात का उपयोग** – यह अनुपात सम–विच्छेद विश्लेषण में अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करता है। इसके कुछ महत्वपूर्ण उपयोग निम्वत् हैं –

(i) इसके द्वारा सम–विच्छेद बिन्दु आसानी से ज्ञात होता है। विस्तृत वर्णन आगे किया गया है।

(ii) इसकी सहायता से बिक्री के किसी भी स्तर पर अर्जित लाभ की रकम ज्ञात की जा सकती है।

(iii) इसकी सहायता से इच्छित लाभ को अर्जित करने हेतु वांछित बिक्री की रकम भी ज्ञात की जा सकती है।

(iv) विभिन्न विभागों तथा उत्पादों की लाभदायकता की तुलना में भी यह अनुपात महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करता है।

### (iii) सम–विच्छेद विश्लेषण एवं सम–विच्छेद बिन्दु
### (Break-even Analysis and Break-even Point)

**सम–विच्छेद विश्लेषण** (Break-even Analysis) – सम–विच्छेद विश्लेषण से आशय विक्रय की मात्रा, उत्पादन की लागत एवं उनके विश्लेषण से है। वस्तुतः इस विश्लेषण के अर्न्तगत यह अध्ययन किया जाता है कि उत्पादन एवं विक्रय के किस स्तर पर उत्पादन की लागत एवं विक्रय आगम आपस में एक दूसरे के समान होगें अर्थात् उत्पादन एवं विक्रय के किस स्तर पर संस्था को न लाभ होगा, न हानि।

**माट्ज करी** एवं **फ्रेंक** के अनुसार, ''सम–विच्छेद विश्लेषण उस स्तर को प्रकट करता है जिस पर लागत एवं आगम साम्यावस्था में होते है।'' (A Break-even Analysis indicates at what level, cost and revenue are in equilibrium – Matz, Curry and Frank)

**सम–विच्छेद बिन्दु** (Break-even Point or B.E.P.) – लागत –मात्रा–लाभ विश्लेषण के अन्तर्गत सम–विच्छेद बिन्दु का विशेष महत्व है। इसे 'खण्ड–सम–बिन्दु' या 'निर्लाभ–बिन्दु' भी कहा जाता है। यह क्रियाशीलता का वह बिन्दु होता है जहाँ कुल आगम और कुल व्यय बराबर होते है अर्थात् यह बिन्दु उत्पादन या विक्रय की उस स्थिति को प्रदर्शित करता है जहां व्यवसाय को न तो लाभ होता है ओर न ही हानि। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि सम–विच्छेद बिन्दु विक्रय मात्रा का वह बिन्दु होता है जहां केवल स्थिर लागतों के बराबर ही अंशदान प्राप्त होता है। यदि इस बिन्दु से कम उत्पादन या बिक्री होती है तो व्यवसाय में हानि होती है जबकि इस बिन्दु से अधिक उत्पादन या बिक्री होने पर उपक्रम को लाभ होता है। सम–विच्छेद, इकाइयों अथवा मूल्य या दोनों में ज्ञात किया जा सकता है।

**हार्नग्रेन** के अनुसार, ''सम–विच्छेद बिन्दु क्रियाशीलता (विक्रय मात्रा) का वह बिन्दु है जहां कुल आगम एंव कुल व्यय बराबर हो, वह शून्य लाभों का बिन्दु होता है।''

**एन. के. प्रसाद** के अनुसार, ''सम–विच्छेद बिन्दु बिक्री की वह मात्रा है जिस पर न लाभ होता है और न हानि होती हे, लागत और आय बराबर रहती है।''

**ई.एल. कोहलर** के अनुसार, ''सम–विच्छेद बिन्दु, मात्रा का वह बिन्दु होता है जिस पर आय और लागत बराबर होती है।''

**सम–विच्छेद बिन्दु का आधार** – सम–विच्छेद मूलतः स्थिर लागतों (Fixed Costs) तथा परिवर्तनशील लागतों (Variable Costs) पर आधारित है। इन दोनों लागतों की संक्षिप्त चर्चा निम्नवत् है :

**स्थिर लागतें** (Fixed Costs) – स्थिर लागतों से अभिप्राय उन व्ययों से है जिन पर उत्पादन की मात्रा का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। अर्थात् ऐसे व्यय जो उत्पादन की मात्रा घटाने–बढ़ाने के बावजूद भी एक समान बने रहते है। उदाहरण के लिए कारखाने के भवन का किराया (Rent of Factory Building), पूंजी पर ब्याज (Interest on Capital), प्रबन्धक का वेतन (Manager's Salary) आदि। स्थिर व्ययों के सम्बन्ध में यह ध्यान रखें कि ऐसे व्ययों का योग तो स्थिर रहता है, परन्तु उत्पादन की मात्रा में परिवर्तन होने के साथ–साथ प्रति इकाई स्थिर व्यय परिवर्तित होते रहते हैं।

**परिवर्तनशील लागतें** (Variable Costs) – इन व्ययों का उत्पादन की मात्रा के साथ सीधा सम्बन्ध होता है। ऐसे व्ययों में मुख्यतः प्रत्यक्ष सामग्री, प्रत्यक्ष श्रम, प्रत्यक्ष व्यय तथा परिवर्तनशील उपरिव्ययों को शामिल किया जाता है।

विक्रय में से उसकी परिवर्तनशील लागतों को घटा देने पर प्राप्त अंशदान की रकम, यदि स्थिर लागत के बराबर ही होती है तो इसी विक्रय स्तर को 'सम–विच्छेद बिन्दु' कहा जाता है क्योंकि ऐसी दशा में न तो कोई लाभ होता है और न ही कोई हानि।

**उपयोगिता** (Utility) – सम–विच्छेद बिन्दु के आधार पर प्रबन्धक अपने व्यवसाय के क्रियाशीलता स्तर को नियन्त्रित करता है। इसकी सहायता से उसे यह पता चल जाता है कि वह किस स्तर पर उत्पादन को कम कर सकता है ताकि उसे कोई हानि न हो। यदि कोई संस्था घाटे की स्थिति में चल रही है तो उसका सर्वप्रथम प्रयास सम–विच्छेद बिन्दु तक पहुंचना होता है। सम–विच्छेद बिन्दु के उपरान्त उत्पादन एवं विक्रय जितना बढ़ता जाता है उतना ही लाभ भी बढ़ता जाता है।

**सम–विच्छेद बिन्दु की गणना** (Calculation of Break-Even Point)

बीजगणितीय सूत्रों की सहायता से सम–विच्छेद बिन्दु की गणना वस्तु की इकाईयों में अथवा विक्रय मात्रा के मौद्रिक मूल्य के रूप में की जा सकती है। अतः सम–विच्छेद बिन्दु दो प्रकार से ज्ञात किया जा सकता है :

(i) इकाईयों मे सम–विच्छेद बिन्दु (B.E.P. in Units);

(ii) मूल्य में सम–विच्छेद बिन्दु (B.E.P. in Value)।

**इकाइयों में सम–विच्छेद बिन्दु** (B.E.P. in Units) – जैसा कि ऊपर स्पष्ट कर ही चुके है कि सम–विच्छेद बिन्दु पर न तो कोई लाभ होता है और न ही कोई हानि, अतः इस बिन्दु पर :

Sales = Fixed Cost + Variable Cost

अथवा

Selling Price per Unit × Volume of Sales = Total Fixed Cost + (Variable Cost per Unit × Volume)

or $SP.\ Q = F + VP.\ Q$

or $SP.\ Q - VP.\ Q = F$

or $Q\ (SP - VP) = F$

$\therefore \quad Q = \dfrac{F}{SP - VP}$

$$\therefore \quad \text{B.E.P.(in Units)} = \frac{\text{Fixed Cost}}{\text{Selling Price per Unit} - \text{Variable Cost per Unit}}$$

or $\dfrac{F}{SP - VP}$ or $\dfrac{F}{CP}$

स्पष्ट है कि सम–विच्छेद बिन्दु इकाइयों में तभी ज्ञात किया जा सकता है जब प्रति इकाई विक्रय मूल्य (SP) तथा प्रति इकाई परिवर्तनशील लागत (VP) की जानकारी दी हुई हो अथवा इन दोनों को प्रदत्त सूचनाओं की सहायता से ज्ञात किया जा सकता हो अन्यथा इकाइयों में सम–विच्छेद बिन्दु ज्ञात नहीं कर सकते।

**मूल्य में सम–विच्छेद बिन्दु** (B.E.P. in Value) – यहाँ पर मूल्य से अभिप्राय रूपयों से है अर्थात रूपयों में सम–विच्छेद बिन्दु ज्ञात करना ही 'मूल्य में' सम–विच्छेद बिन्दु कहलाता है। सम–विच्छेद बिन्दु की इकाईयों को यदि प्रति इकाई विक्रय मूल्य से गुणा कर दें तो प्राप्त राशि की 'मूल्य में सम–विच्छेद बिन्दु' कहा जायेगा। संक्षेप में,

B.E.P. (in Rs.) = BEP in Units × Selling Price per Unit

उपर्युक्त सूत्र की दशा में पहले इकाइयों में सम–विच्छेद बिन्दु ज्ञात करना होगा लेकिन सीधे ही रूपयों में सम–विच्छेद बिन्दु ज्ञात करने के लिए प्रदत्त सूचनाओं को ध्यान में रखते हुए निम्नलिखित में से कोई एक सूत्र प्रयोग कर लेंगे :

$$\text{B.E.P. (in Rs.)} = \frac{F \times SP}{SP - VP} \text{ या } \frac{F \times S}{S - V} \text{ या } \frac{F}{P/V \text{ Ratio}}$$

Where :
F = Fixed Cost
SP = Selling Price Per Unit
VP = Variable Cost Per Unit
S = Total Sales of Rs.
V = Total Variable Cost in Rs.
P/V Ratio = Profit Volume Ratio

**संयुक्त सम–विच्छेद बिन्दु** (Combined B.E.P.) – बहुत से उत्पादक अनेक प्रकार की वस्तुओं का उत्पादन करते है, अतः वह पूरे व्यवसाय की सभी वस्तुओं के लिए संयुक्त सम–विच्छेद बिन्दु ज्ञात करना चाहते है। ऐसी दशा में पहले संयुक्त लाभ–मात्रा अनुपात ज्ञात करना होता है, तुदपरान्त निम्नलिखित सूत्र के द्वारा सामूहिक सम–विच्छेद बिन्दु ज्ञात कर लिया जाता है :

$$\text{Combined B.E.P. in Rs.} = \frac{\text{Fixed Expenses for all Products i.e. for whole Business}}{\text{Overall P/V Ratio}}$$

**सम–विच्छेद बिन्दु के अन्य भेद** (Other Types of B.E.P.) – उपर्युक्त वर्णित सम–विच्छेद बिन्दु लाभ–हानि सम–विच्छेद बिन्दु (Profit-Loss Break-Even Point) कहलाता है क्योंकि इस सम–विच्छेद बिन्दु पर न तो कोई लाभ होता है और न कोई हानि होती है। इसके अतिरिक्त सम–विच्छेद बिन्दु के निम्नलिखित दो रूप और भी है –

(अ) **रोकड़ (नकद) सम–विच्छेद बिन्दु** (Cash Break-Even Point) – यह उत्पादन/विक्रय का वह बिन्दु होता है जहां किसी संस्था की रोकड़ प्राप्तियां एवं रोकड़ में किये गये भुगतान आपस में एक दूसरे के बराबर होते है। जैसा कि हम जानते ही है कि प्रत्येक संस्था की स्थिर लागतों में कुछ व्यय ऐसे शामिल होते है जिनका वस्तुतः रोकड़ में भुगतान नहीं किया जाता है, जैसे–ह्रास। इसके विपरीत कुछ ऐसे भुगतान भी होते है जिन्हे गैर–लागत मद होने के कारण यद्यपि स्थिर लागतों में शामिल नही किया जाता, परन्तु उनको रोकड़ में भुगतान किया जाता है जैसे ऋण भुगतान की किस्त। इसलिए प्रत्येक संस्था यह जानने की भी इच्छुक रहती है कि यदि केवल रोकड़ में भुगतान की जाने वाली स्थिर लागतों को ही ध्यान में रखा जाये तो सम–विच्छेद बिन्दु क्या होगा। इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु रोकड़ सम–विच्छेद बिन्दु की गणना की जाती है। स्पष्ट है कि रोकड़ सम–विच्छेद बिन्दु की गणना में केवल उन्ही मदों पर विचार किया जाता है जिनसे रोकड़ प्रवाह होता है। इसकी गणना के लिए निम्नलिखित सूत्रों का प्रयोग किया जाता है –

$$\text{Cash B.E.P. (Units)} = \frac{\text{Cash fixed Cost} + \text{Loan Instalment}}{\text{Contribution Per Unit}}$$

$$\text{Cash B.E.P. (Rs.)} = \frac{(\text{Cash fixed Cost} + \text{Loan Instalment}) \times \text{SP}}{\text{Contribution Per Unit}}$$

OR

$$= \frac{(\text{Cash fixed Cost} + \text{Loan Instalment})}{\text{P / V Ratio}}$$

(ब) **लागत सम–विच्छेद बिन्दु** (Cost Break-Even Point) – व्यवसाय में कभी–कभी ऐसी परिस्थितियां उत्पन्न होती है जिनमें दो या अधिक वैकल्पिक प्रस्तावों की कुल लागत समान होती है परन्तु उनकी स्थिर लागत एवं परिवर्तनशील लागत भिन्न–भिन्न होती है। ऐसी स्थिति में समस्या यह उत्पन्न होती है कि उक्त विकल्पों में से किस विकल्प को चुना जाये। इस समस्या का हल प्राप्त करने के लिए उत्पादन एवं विक्रय का एक ऐसा स्तर निर्धारित किया जाता है जिस पर दोनों विकल्पों का लाभ एक समान हो। ऐसे स्तर की गणना निम्नलिखित सूत्र की सहायता से सरलतापूर्वक की जा सकती है –

Sales level at which Profit of both

$$\text{the alternatives will be equal} = \frac{\text{Difference in Fixed Cost}}{\text{Difference in VC per Unit}}$$

उपर्युक्त सूत्र के द्वारा निर्धारित एवं विक्रय स्तर की स्थिति में किसी भी विकल्प को अपनाया जा सकता है। परन्तु यदि उत्पादन एवं विक्रय का वास्तविक स्तर उपर्युक्त निर्धारित स्तर से अधिक होने की सम्भावना है तो उस विकल्प को चुनना चाहिए जिसकी प्रति इकाई परिवर्तनशील लागत कम हो। इसके विपरीत यदि उत्पादन एवं विक्रय स्तर उपर्युक्त निर्धारित से कम होने की सम्भावना है तो उस विकल्प को चुनना चाहिए जिसकी स्थिर लागत कम हो।

**सम–विच्छेद बिन्दु स्थापित कार्यक्षमता के प्रतिशत के रूप में** (Break-even Point as a percentage of Installed Capacity) – सम–विच्छेद बिन्दु को संस्था की स्थापित कार्यक्षमता के प्रतिशत के रूप में भी व्यक्त किया जा सकता है। यह बिन्दु यह प्रदर्शित करता है कि संस्था अपनी

क्षमता का कितने प्रतिशत प्रयोग करके सम–विच्छेद की स्थिति को प्राप्त कर सकती है। इसे ज्ञात करने के लिए निम्नलिखित सूत्र का प्रयोग किया जाता है –

$$\text{B.E.P. (\% of Installed Capacity)} = \frac{\text{B.E.P. in Units}}{\text{Installed Capacity}} \times 100$$

**(iv) सुरक्षा–सीमा (Margin of Safety or M.S.)**

जैसा कि ऊपर स्पष्ट किया जा चुका है कि सम–विच्छेद बिन्दु पर न तो कोई लाभ होता है और न ही कोई हानि होती है। अतः सम–विच्छेद बिन्दु से आगे बढ़ने पर अर्थात् सम–विच्छेद बिन्दु से वास्तविक बिक्री अधिक होने पर ही उपक्रम के लिए सुरक्षा की स्थिति प्रारम्भ होती है। व्यवसाय की वास्तविक बिक्री सम–विच्छेद बिन्दु से जितनी अधिक होगी व्यवसाय की स्थिति उतनी ही सुरक्षित मानी जायेगी। अतः वास्तविक बिक्री का सम–विच्छेद बिन्दु पर आधिक्य ही 'सुरक्षा–सीमा' कहलाता है। इसलिए वास्तविक विक्रय में कम अन्तर होने पर सुरक्षा–सीमा भी कम होगी। सम–विच्छेद बिन्दु की भांति इसे भी इकाईयों तथा मूल्य में ज्ञात किया जा सकता है। सूत्र इस प्रकार है :

Margin of Safety in Units = Actual Sales in Units – B.E.P. Sales in Units

Margin of Safety in Rs. = Actual Sales in Rs. – B.E.P. in Rs.

सुरक्षा–सीमा की गणना लाभ–मात्रा अनुपात (P/V Ratio) के आधार पर भी की जा सकती है। ऐसी दशा में सूत्र इस प्रकार होगा :

$$\text{Margin of Safety} = \frac{\text{Profit}}{\text{P / V Ratio}} \times 100$$

सुरक्षा–सीमा की गणना बिक्री के प्रतिशत के रूप में भी की जा सकती है। इसका सूत्र इस प्रकार है :

$$\text{M.S. Ratio} = \frac{\text{Margin of Safety}}{\text{Actual Sales}} \times 100$$

**सुरक्षा–सीमा का महत्व** (Importance of Margin of Safety) – सुरक्षा–सीमा की जानकारी किसी भी व्यवसाय के लिए अपार महत्व रखती है। इसकी गणना से निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त होते है :

1. सुरक्षा–सीमा का अधिक होना व्यवसाय की सुदृढ़ स्थिति को प्रकट करता है अर्थात् यदि बिक्री की मात्रा में थोड़ी कमी आ जाये तो भी व्यवसाय लाभ कमाने की दशा में ही रहेगा।

2. यदि किसी व्यवसाय की सुरक्षा–सीमा कम है अर्थात् वास्तविक बिक्री लगभग सम–विच्छेद बिन्दु के पास है तो व्यवसायी को सचेत हो जाना चाहिए कि कभी भी वास्तविक विक्रय सम–विच्छेद बिन्दु से कम हो सकता है जिससे संस्था को लाभ के स्थान पर हानि हो सकती है। ऐसी स्थिति में निम्नलिखित उपायों से सुरक्षा–सीमा में सुधार किया जा सकता है :

(i) स्थिर लागतों में कमी करना; (ii) परिवर्तनशील लागतों में कमी करना; (iii) उत्पादन क्षमता खाली होने की दशा में उत्पादन में वृद्धि करना; (iv) विक्रय मूल्य में वृद्धि करना।

3. सुरक्षा–सीमा का बिक्री से प्रतिशत व्यवसायी को इस बात की जानकारी देता है कि वह प्रतिस्पर्द्धा में अधिक से अधिक कितने प्रतिशत मूल्य घटा सकता है।

**इच्छित लाभ को प्राप्त करने हेतु वांछित विक्रय का निर्धारण** (Determination of Required Sales to Obtain the Desired Profit) – प्रारम्भ में प्रत्येक व्यवसायी यही चाहता है कि यदि उसे लाभ न हो तो हानि भी नहीं हो। परन्तु धीरे–धीरे आने वाले वर्षों में हम लाभ का लक्ष्य निर्धारित करते है एवं उस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए हर सम्भव प्रयत्न भी करते है। अतः कभी–कभी इच्छित लाभ का

लक्ष्य दे दिया जाता है एवं लाभ की उस रकम को प्राप्त करने के लिए कितनी सम्भावित बिक्री करनी होगी, यह पूछा जाता है। अतः अपेक्षित अंशदान की मात्रा स्थायी व्ययों में अपेक्षित लाभ की मात्रा जोड़कर निकाला जाता है। इसके लिए वही सूत्र प्रयोग करते है जो सम–विच्छेद बिन्दु के है, केवल इतना संशोधन अवश्य करते है कि उन सूत्रों में स्थिर लागतों के साथ इच्छित लाभ की रकम और जोड़ दी जाती है। संक्षेप में, इच्छित लाभ को प्राप्त करने हेतु वांछित विक्रय का निर्धारण करने के लिए निम्नलिखित सूत्रों का प्रयोग किया जा सकता है :

Required Sales in Units to earn a Profit of Rs...........

$$= \frac{\text{Fixed Cost + Desired Profit}}{\text{Selling Price per Unit − Variable Cost per Unit}} \text{ or } \frac{F+P}{SP-VP}$$

Required Sales in Units to earn a Profit of Rs...........

$$= \frac{(F+P)\times SP}{SP-VP} \text{ या } \frac{(F+P)\times S}{S-V} \text{ या } \frac{F+P}{P/V \text{ Ratio}}$$

**यदि लाभ विक्रय पर प्रतिशत के रूप में प्राप्त करना हो तो विक्रय को x मानकर, जितना प्रतिशत विक्रय पर लाभ प्राप्त करना हो उसकी x में गुणा करके प्राप्त मूल्य इच्छित लाभ होता है जिसे स्थिर लागत में जोड़कर बीजगणितीय आधार पर x का मान ज्ञात कर लेते है। संक्षेप में, ऐसी दशा में निम्नलिखित सूत्र का प्रयोग करेगें :**

$$\text{Required Sales } (x) = \frac{\text{Fixed Cost} + [x\% \text{ of Profit on Sales}]}{P/V \text{ Ratio}}$$

**यदि लाभ विक्रय पर प्रतिशत के रूप में प्राप्त करना हो परन्तु प्रति इकाई विक्रय मूल्य तथा प्रति इकाई परिवर्तनशील लागतें दी हुई हों** – ऐसी दशा में प्रदत्त प्रति इकाई विक्रय मूल्य में प्रदत्त लाभ के प्रतिशत का गुणा कर देंगे जिससे प्रति इकाई इच्छित लाभ ज्ञात हो जायेगा तदुपरान्त निम्नलिखित सूत्र का प्रयोग करेंगे :

Required Sales in Units to earn a Profit of....% on Rs.... Selling price per Unit

$$= \frac{\text{Fixed Cost}}{\text{Selling Price per Unit} - (\text{Variable Cost Per Unit} + \text{Desired Profit per Unit}}$$

Desired Profit per Unit = Selling Price per Unit × % of Profit on Sales.

**बिक्री दी हुई होने पर लाभ ज्ञात करना** – कभी–कभी बिक्री दे दी जाती है एवं उस पर कितना लाभ होगा, यह पूछा जाता है इसको ज्ञात करने के लिए निम्नलिखित सूत्रों का प्रयोग किया जाता है :

**(A) यदि बिक्री इकाइयों में दी हुई है तो –**

Profit = (Sales in Units × Contribution per Unit) – Fixed Cost

**(B) यदि बिक्री धनराशि में दी हुई है तो –**

Profit = (Sales in Rs. × P/V Ratio) – Fixed Cost

उपर्युक्त सूत्र के आधार पर स्थिर लागत ज्ञात करने हेतु निम्नलिखित सूत्र प्रयोग किया जा सकता है :

Fixed Cost = (Sales in Rs. × P/V Ratio) – Profit

**विशेष** – ऐसे प्रश्न जिनमें दो अलग–अलग अवधियों की बिक्री तथा लाभ अथवा कुल लागत सम्बन्धी जानकारी दी हुई हो, वहां पर स्थिर लागत (Fixed Cost) तथा लाभ–मात्रा अनुपात (P/V Ratio) अवश्य ज्ञात करें भले ही प्रश्न में इन्हे ज्ञात करने के लिए न कहा गया हो क्योंकि सम–विच्छेद विश्लेषण में इन दोनों के बिना कुछ भी ज्ञात नहीं किया जा सकता है।

**आधार, परिसीमन या मुख्य कारक की समस्या** (Problem of Key or Limiting Factor) – प्रत्येक व्यवसाय को किसी न किसी सीमा के अर्न्तगत कार्य करना होता है। व्यवसाय के आर्थिक निर्णयों पर इन कारकों का महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। आधार, परिसीमन या मुख्य कारक वह कारक है जो उत्पादन या बिक्री को सीमित अथवा प्रतिबन्धित कर देता है और इस प्रकार एक संस्था को असीमित लाभ कमाने से रोकता है। यह परिसीमन घटक उत्पादन का कोई तत्व हो सकता है जैसे– कच्ची सामग्री या श्रम का सीमित मात्रा में उपलब्ध होना, उत्पादन क्षमता का सीमित होना अथवा विक्रय भी हो सकता है। जब परिचालन में परिसीमन घटक विद्यमान हो तो ऐसी दशा में परिसीमन घटक के प्रति इकाई अंशदान को ही किसी उत्पादन की लाभप्रदत्ता के मूल्यांकन की कसौटी माना जाता है। परिसीमन घटक की प्रति इकाई नीचा अंशदान प्रदान करने वाले उत्पादन की तुलना में उस उत्पाद को प्राथमिकता दी जानी चाहिए जिस उत्पादन के परिसीमन घटक का प्रति इकाई अंशदान सबसे अधिक हो। जब दो या अधिक परिसीमन घटक क्रियाशील हो तो यह आवश्यक है कि उन सभी घटकों पर विचार किया जाये। स्पष्ट है ऐसी स्थिति में प्रत्येक उत्पाद का प्रति इकाई अंशदान ज्ञात करके उसे मुख्य कारक की एक इकाई से भाग दे दिया जाता है और इस प्रकार प्राप्त परिणाम के आधार पर ही निर्णय किये जाते है। संक्षेप में, परिसीमन या मुख्य कारक की दशा में विभिन्न उत्पादों या प्रक्रियाओं की तुलनात्मक लाभप्रदत्ता के मूल्यांकन हेतु निम्नलिखित सूत्र का प्रयोग किया जाता है –

$$\text{Contribution per unit of key Factor} = \frac{\text{Contribution per product unit}}{\text{Units of key factor per product unit}}$$

## सम–विच्छेद विश्लेषण की लेखाचित्रीय विधियाँ
## (Graphic Methods of Break-even Analysis)

लागत–लाभ–मात्रा सम्बन्धी सूचनाओं को ग्राफ पर भी प्रस्तुत किया जा सकता है। ग्राफ से प्रबन्ध एक नजर में ही व्यवसाय की स्थिति का मल्यांकन कर लेता है क्योंकि समस्त सूचनाएं तुरन्त स्पष्ट रूप से सामने आ जाती है और विश्लेषण आसान हो जाता है। ऐसे लेखाचित्र (Graphs) दो प्रकार के होते है –

(i) सम–विच्छेद चार्ट (Break-even Chart); तथा
(ii) लागत–मात्रा रेखाचित्र (Profit-Volume Graph)।

## सम–विच्छेद चार्ट
## (Break-Even Chart)

उत्पादन, विक्रय तथा लाभ सम्बन्धी सूचनाओं को ग्राफ पर प्रस्तुत करने से तैयार होने वाला चार्ट सम–विच्छेद चार्ट' कहलाता है। इसमें उत्पादन के विभिन्न स्तरों पर होने वाले लाभ–हानि के अतिरिक्त वह बिन्दु भी दर्शाया जाता है जिस पर न कोई लाभ होता है और न ही कोई हानि, अर्थात कुल लागत (Total Cost) एवं कुल आगम (Total Revenue) बराबर होती है इसे 'सम–विच्छेद बिन्दु' कहते है। कुछ लोग यही समझते है कि सम–विच्छेद चार्ट पर केवल B.E.P. ही दर्शाया जाता है। वस्तुतः ऐसा सोचना गलत है क्योंकि सम–विच्छेद चार्ट से B.E.P. के अतिरिक्त अन्य सूचनाएं भी प्रकट होती है। जैसे – (i) विभिन्न उत्पादन स्तरों पर सम्भावित लाभ या हानियाँ; (ii) परिवर्तनशील लागतों एवं स्थिर लागतों के बीच सम्बन्ध; (iii) सुरक्षा–सीमा; (iv) उत्पादन की एक निश्चित इकाई पर लाभार्जन वृद्धि दर; (v) अंशदान व लाभ–मात्रा सम्बन्ध।

उपर्युक्त समस्त सूचनाओं में सबसे महत्वपूर्ण सूचना 'सम–विच्छेद बिन्दु' (B.E.P.) ही है। इसीलिए इस चार्ट का नाम सम–विच्छेद चार्ट पड़ा है।

इस प्रकार एक सम–विच्छेद चार्ट में कुल लागत रेखा (Total Cost Line), कुल विक्रय रेखा (Total Sales Line), स्थायी लागत रेखा (Fixed Cost Line) तथा सम–विच्छेद बिन्दु, आदि को दर्शाया जाता है।

**सम–विच्छेद चार्ट बनाने की विधि**

सम–विच्छेद चार्ट बनाने के लिए संस्था को उत्पादन क्षमता (इकाइयों अथवा विक्रय मूल्य में), परिवर्तनशील लागत तथा स्थिर लागत सम्बन्धी सूचना की आवश्यकता होती है। इन सूचनाओं की सहायता से सम–विच्छेद चार्ट को निम्न प्रकार से तैयार किया जाता है ;

(i) सम–विच्छेद चार्ट बनाने के लिए सर्वप्रथम एक तालिका बनाई जाती है जिसमें विभिन्न उत्पादन स्तरों को लेकर प्रत्येक उत्पादन स्तर पर स्थिर लागत, परिवर्तनशील लागत, कुल लागत व कुल विक्रय मूल्य को प्रदर्शित किया जाता है। प्रायः चार उत्पादन स्तर ले लेते है। पहला उत्पादन शून्य, दूसरा सम–विच्छेद से पूर्व का उत्पादन स्तर, तीसरा सम–विच्छेद से आगे का स्तर एवं अन्तिम स्तर प्रदत्त अधिकतम उत्पादन क्षमता के बराबर लेते है।

(ii) ग्राफ के X–अक्ष (क्षैतिज रेखा) पर उत्पादन क्षमता व विक्रय (इकाइयों में लेकिन इकाइयों सम्बन्धी जानकारी न होने पर रूपयों में) को दर्शाते है जबकि Y–अक्ष (लम्बवत् रेखा) पर लागतों तथा विक्रय आगम (Sales Revenue) को प्रदर्शित किया जाता है।

(iii) Y–अक्ष पर उत्पादन लागतों को प्रदर्शित करने हेतु सर्वप्रथम स्थायी लागतों को प्रदर्शित किया जाता है, इसके उपरान्त कुल लागत रेखा दिखाई जाती है। कुल लागत रेखा व स्थिर लागत रेखा के बीच की लम्बवत् दूरी (Vertical distance) परिवर्तनशील लागत को प्रकट करती है। अर्थात् परिवर्तनशील लागत रेखा को सम–विच्छेद चार्ट में अलग से नहीं दिखाया जाता है।

स्थिर व्ययों को प्रदर्शित करने हेतु X–अक्ष के समानान्तर 'स्थिर लागत रेखा' खींची जाती है क्योंकि उत्पादन के प्रत्येक स्तर पर (शून्य उत्पादन पर भी) स्थिर लागतें उतनी ही रहेंगी। इसके बाद कुल लागत की रेखा बनायी जाती है, जोकि स्थिर लागतों के प्रारम्भिक बिन्दु से ऊपर की ओर बनती है। इस रेखा को खींचने के लिए तालिका के प्रत्येक उत्पादन स्तर के ऊपर उसकी कुल लागत के बिन्दु को अंकित कर लेते है एवं तदुपरान्त सभी बिन्दुओं को मिलाते हुए पैमाने की सहायता से रेखा खींच दी जाती है। यह रेखा ही 'कुल लागत रेखा' कहलाती है।

(iv) लागत रेखाओं को खींचने के पश्चात् कुल विक्रय रेखा खींचते है। इसे 'आगम रेखा' (Revenue Line) भी कह सकते है। यह रेखा उत्पादन के प्रत्येक स्तर पर तथा उसके विक्रय मूल्य के आधार पर खींची जाती है। यह रेखा शून्य (Origin) से प्रारम्भ होती है।

(v) कुल लागत रेखा एवं आगम रेखा जिस बिन्दु पर एक दूसरे को काटती है वह 'प्रतिच्छेदन बिन्दु' (Point of Intersection) या 'सम–विच्छेद बिन्दु' कहलाता है। इस बिन्दु से X–अक्ष पर लम्ब डालकर सम–विच्छेद उत्पादन स्तर या विक्रय की इकाइयों की संख्या ज्ञात हो जाती है तथा Y–अक्ष पर लम्ब डालने से सम–विच्छेद विक्रय की राशि ज्ञात हो जाती है।

सम–विच्छेद बिन्दु के दायीं ओर कुल लागत रेखा तथा कुल विक्रय रेखा के बीच का क्षेत्र 'लाभ–क्षेत्र' (Profit Area) कहलाता है। लाभ–क्षेत्र का जो कोण (Angle) बनता है उसे 'प्रभाव क्षेत्र का कोण' (Angle of Incidence) कहते है। यदि यह कोण बड़ा है तो लाभ ज्यादा व कोण छोटा है तो लाभ कम होगा।

सम–विच्छेद बिन्दु के बायीं ओर कुल लागत रेखा व कुल विक्रय रेखा के बीच का क्षेत्र 'हानि–क्षेत्र' (Loss-Area) होता है जो सम–विच्छेद से कम विक्रय होने पर सम्भावित हानि को दर्शाता है।

(vi) इस रेखाचित्र में विभिन्न विक्रय स्तरों पर सुरक्षा–सीमा अपने आप ज्ञात हो जाती है। सम–विच्छेद बिन्दु से वास्तविक बिक्री के स्थान तक का अन्तर 'सुरक्षा–सीमा' कहलाता है।

***Illustration :*** निम्नलिखित सूचना से सम–विच्छेद चार्ट बनाइए :

Draw a break-even chart from the following informations :

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| Output (Units) | 4,000 | 8,000 | 12,000 | 16,000 | 20,000 |
| Fixed Cost (Rs.) | 20,000 | 20,000 | 20,000 | 20,000 | 20,000 |
| Variable Cost Rs. 3 per Unit (Rs.) | 12,000 | 24,000 | 36,000 | 48,000 | 60,000 |
| Sales Rs. 5 per Unit (Rs.) | 20,000 | 40,000 | 60,000 | 80,000 | 1,00,000 |

सम–विच्छेद बिन्दु तथा सुरक्षा–सीमा की गणितीय सूत्र द्वारा भी जाँच कीजिए।

Also Check the B.E.P. and Margin of Safety by arithmetic formula.

***Solution :***

तालिका बनाने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि स्वयं ही उत्पादन के विभिन्न स्तरों पर वांछित सूचनाएँ दी हुई हैं। प्रदत्त सूचनाओं के आधार पर सम–विच्छेद चार्ट निम्नवत् तैयार होगाः

**Break-Even Chart**

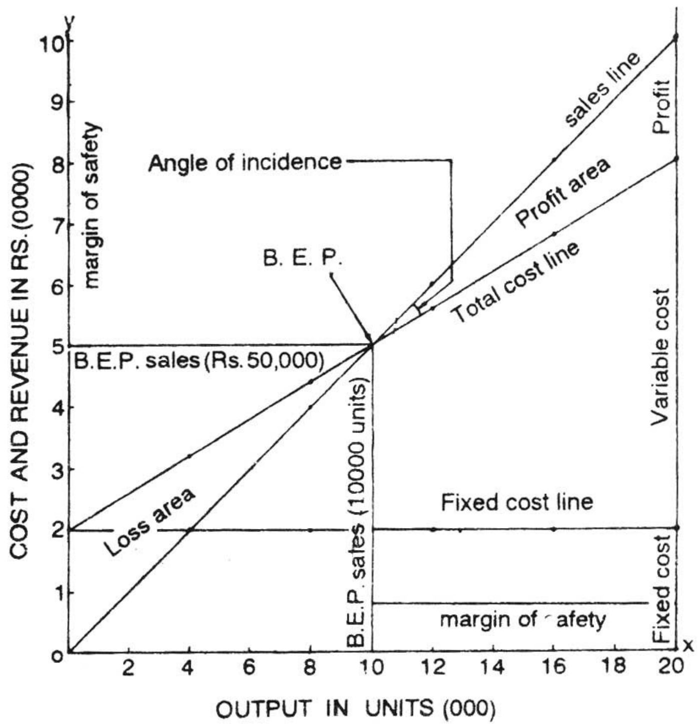


गणितीय सूत्र द्वारा जाँच :

$$\text{B.E.P. in Units} = \frac{F}{SP - VP} = \frac{\text{Rs. } 20{,}000}{\text{Rs. } 5 - \text{Rs. } 3} = 10{,}000 \text{ Units}$$

B.E.P. in Rupees = 10,000 Units × Rs. 5 per Unit = Rs. 50,000

Margin of Safety = Actual Sales – B.E.P.

in Units = 20,000 Units – 10,000 Units = 10,000 Units

in Rs. = Rs. 1,00,000 – Rs. 50,000 = Rs. 50,000

## लागत–मात्रा रेखाचित्र
## (Profit-Volume Graph)

यह रेखाचित्र सम–विच्छेद चार्ट का ही सुधरा हुआ रूप है। इस रेखाचित्र में बिक्री व लाभों के सम्बन्ध को दर्शाते है। इस चार्ट की सहायता से बिक्री के विभिन्न स्तरों पर सम्भावित लाभ व हानि की स्थिति को एक ही नजर में (at a glance) देखा जा सकता है। विभिन्न विक्रय मूल्यों पर सुरक्षा–सीमा का निर्धारण भी इस चार्ट के द्वारा आसानी से कर सकते है। वास्तविक विक्रय मात्रा तथा सम–विच्छेद बिन्दु का अन्तर सुरक्षा–सीमा दर्शाता है। लाभ–मात्रा चार्ट को तैयार करने की विधि निम्नलिखित है :

(1) सर्वप्रथम विक्रय के विभिन्न स्तरों पर लाभ या हानि ज्ञात करते हुए एक तालिका बनाते है।

(2) X–अक्ष पर विक्रय मात्रा को प्रदर्शित किया जाता है। विक्रय मात्रा को मौद्रिक रूप में या पूर्ण क्षमता के प्रतिशत के रूप में दर्शाया जाता है।

(3) X–अक्ष पर लाभ व हानि को प्रदर्शित करते है। Y–अक्ष पर शून्य अथवा मूल बिन्दु से ऊपर लाभ तथा नीचे हानि (स्थिर लागतों) को प्रदर्शित करते है।

(4) विक्रय के विभिन्न स्तरों पर लाभ–हानि की स्थिति को दर्शाने के लिए अंशदान रेखा (Contribution Line) खींची जाती है। शून्य विक्रय मात्रा की दशा में अधिकतम हानि स्थिर लागतों के बराबर होती है तथा पूर्ण उत्पादन क्षमता पर विक्रय की दशा में अधिकतम लाभ होता है। अतः अधिकतम हानि (स्थिर लागतों) तथा अधिकतम लाभ दोनों बिन्दुओं को मिलाते हुए एक सीधी रेखा खींच दी जाती है जिसे 'लाभ रेखा' या 'अंशदान रेखा' कहते है।

(5) लाभ या अंशदान रेखा X–अक्ष को जिस बिन्दु पर काटती है, उसे 'सम–विच्छेद बिन्दु' कहते है।

(6) X–अक्ष पर लाभ रेखा के दाई ओर ऊपर का क्षेत्र 'लाभ–क्षेत्र' (Profit Area) कहलाता है जबकि X–अक्ष के नीचे व लाभ रेखा के बायीं ओर का क्षेत्र 'हानि क्षेत्र' (Loss Area) कहा जाता है।

(7) जिस भी विक्रय स्तर पर लाभ ज्ञात करना हो उस विक्रय स्तर के बिन्दु से लाभ रेखा पर लम्ब गिरा देंगे एवं लाभ रेखा पर पड़े लम्ब बिन्दु से Y–अक्ष पर प्रकट लाभ या हानि की ओर लम्ब गिरा देते है। जहां भी यह लम्ब पड़ता है, वही उस विक्रय स्तर का लाभ या हानि होता है। इसके विपरीत यदि इच्छित लाभ दिया हो एवं उसे प्राप्त करने के लिए वांछित विक्रय राशि पूछी गई हो तो इच्छित लाभ से लाभ रेखा पर लम्ब डाल देते है एवं फिर लाभ रेखा के उस बिन्दु से X–अक्ष पर लम्ब गिरा देते है। X–अक्ष पर जहां लम्ब पड़ता है वहीं वांछित विक्रय राशि होती है।

(8) वास्तविक विक्रय राशि एवं सम–विच्छेद विक्रय राशि का अन्तर सरुक्षा–सीमा को दर्शाता है।

***Illustration :*** निम्नलिखित सूचनाओं से लाभ–रेखा चित्र बनाइए तथा सम–विच्छेद बिन्दु व सीमा को दर्शाइए :

From the following informations, draw a profit graph and show Break-even point and Margin of Safety :

| | | |
|---|---|---|
| Sales (30,000 Units) | Rs. | 18 per Unit |
| Fixed Costs | Rs. | 60,000 |
| Variable Cost per Unit | Rs. | 12 |
| Net Profit | Rs. | 1,20,000 |

***Solution :***

सर्वप्रथम विक्रय के विभिन्न स्तरों पर लाभ–हानि ज्ञात करते हुए निम्नवत् एक तालिका बनायेंगे :

**Profit or Loss Table At Different Levels of Sales**

| Sales in Units | Sales in Rs. @ Rs. 18 per Unit | Fixed Costs | Variable Costs @ Rs. 12 per Unit | Total Cost | Profit (+) or Loss ( - ) |
|---|---|---|---|---|---|
| Rs. | Rs. | Rs. | Rs. | Rs. | Rs. |
| 0 | 0 | 60,000 | - | 60,000 | - 60,000 |
| 10,000 | 1,80,000 | 60,000 | 1,20,000 | 1,80,000 | - |
| 20,000 | 3,60,000 | 60,000 | 2,40,000 | 3,00,000 | + 60,000 |
| 30,000 | 5,40,000 | 60,000 | 3,60,000 | 4,20,000 | + 1,20,000 |

**Profit-Volume Graph**

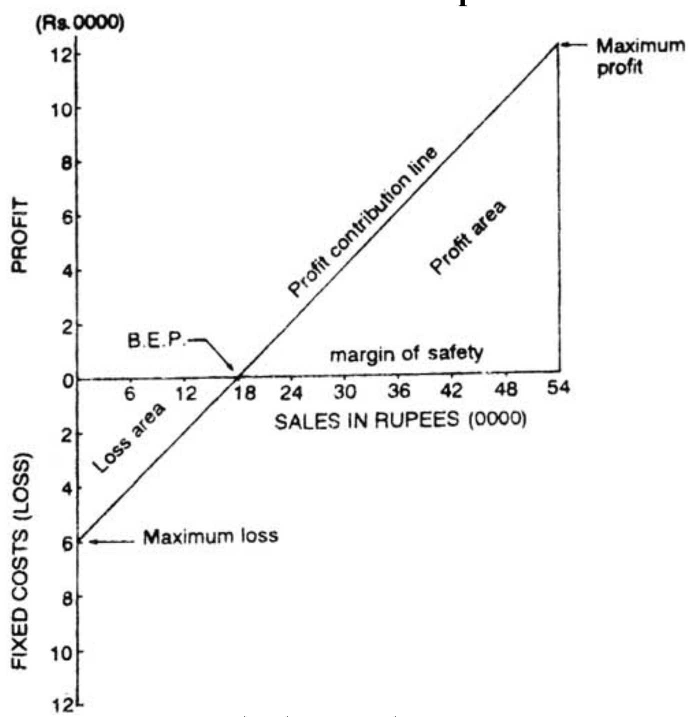


***Illustration :*** निम्नलिखित समंकों से लाभ–रेखाचित्र बनाइए तथा उस पर सम्भाव्य बिक्री ज्ञात कीजिए यदि 10,000 रुपये का लाभ अर्जित करना हो। 1,20,000 रुपये की बिक्री पर लाभ भी ज्ञात कीजिए।

From the following data draw a profit graph and show the expected sales on the graph when the profit to be earned is Rs. 10,000. Show the profit at the sales of Rs. 1,20,000.

| | | |
|---|---|---|
| विक्रय मूल्य प्रति इकाई (Selling Price per Unit) | Rs. | 15 |
| परिवर्तनशील लागत प्रति इकाई (Variable Cost per Unit) | Rs. | 10 |
| स्थिर लागत (Fixed Costs) | Rs. | 20,000 |

***Solution :***

Fixed Costs (F) = Rs. 20,000; Selling Price per Unit (SP) = Rs. 15; Variable cost per Unit (VP) = Rs. 10

$$\text{P/V Ratio} = \frac{SP - VP}{SP} \times 100$$

$$= \frac{15-10}{15} \times 100 = \frac{5}{15} \times 100 = 33\frac{1}{3}\%$$

$$\text{B.E.P. in Rs.} = \frac{F}{P/V \text{ Ratio}} = \frac{\text{Rs. } 20{,}000}{33\frac{1}{3}\%}$$

$$= \frac{20{,}000 \times 300}{100} = \text{Rs. } 60{,}000$$

Required Sales to earn a Profit of Rs. 10,000

$$= \frac{F+P}{P/V\ R}$$

$$= \frac{20{,}000 + 10{,}000}{33\frac{1}{3}\%} = \frac{30{,}000 \times 300}{100} = \text{Rs. } 90{,}000$$

Profit = (Sales × P/V R) – Fixed Costs

$$= \left(1{,}20{,}000 \times 33\frac{1}{3}\%\right) - \text{Rs. } 20{,}000$$

$$= \text{Rs. } 40{,}000 - \text{Rs. } 20{,}000 = \text{Rs. } 20{,}000$$

**Profit Graph**

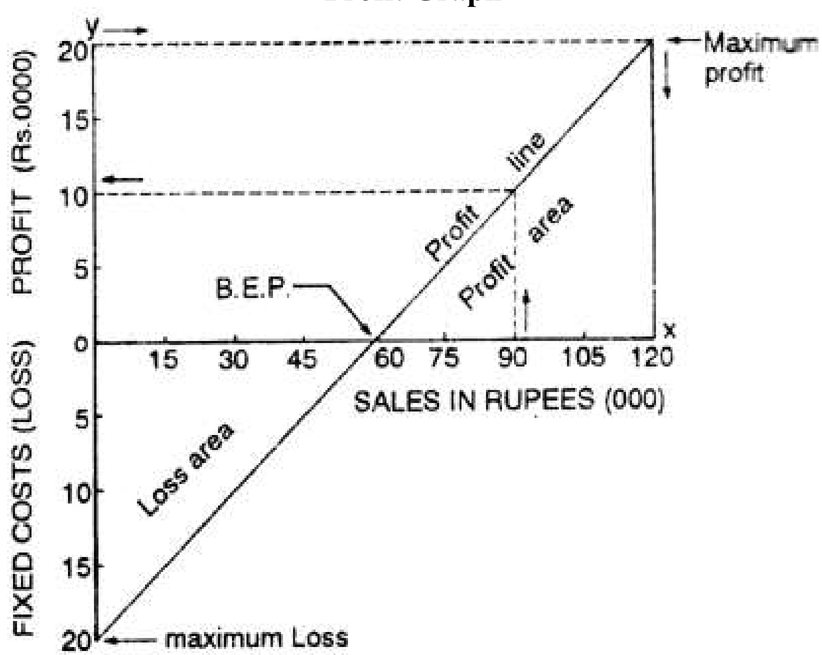


## सम–विच्छेद विश्लेषण अथवा सम–विच्छेद चार्ट की मान्यताएं
## (Assumptions of Break-Even Analysis or Break-Even Chart)

सम–विच्छेद विश्लेषण अथवा सम–विच्छेद चार्ट की रचना कुछ मान्यताओं के आधार पर की जाती है। ये मान्यताएं निम्नलिखित है :

(1) प्रत्येक विक्रय स्तर पर विक्रय मूल्य समान रहता है।

(2) कुल स्थिर लागतों पर उत्पादन की मात्रा का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। अर्थात् उत्पादन विक्रय के प्रत्येक स्तर पर कुल स्थिर लागतें समान रहती है।

(3) प्रत्येक उत्पादन स्तर या विक्रय मात्रा पर परिवर्तनशील लागत प्रति इकाई में कोई परिवर्तन नही होता अर्थात् प्रति इकाई परिवर्तनशील लागत प्रत्येक स्तर पर समान रहती है।

(4) सभी लागतों को स्थिर एवं परिवर्तनशील लागतों में विभक्त किया जा सकता है।

(5) उत्पादन तथा विक्रय बराबर होता है अर्थात् प्रारम्भिक एवं अन्तिम स्टॉक नही होगा।

(6) विक्रय मूल्य सदैव परिवर्तनशील लागत से अधिक होगा।

(7) एक से अधिक वस्तुओं का उत्पादन एवं विक्रय होने की दशा में विक्रय–मिश्रण में कोई परिवर्तन नहीं होता। अर्थात् विक्रय–मिश्रण अपरिवर्तित रहता है अथवा एक ही वस्तु का उत्पादन किया जाता है।

उपर्युक्त में से किसी में भी परिवर्तन हो जाने पर सम–विच्छेद बिन्दु में परिवर्तन हो जाता है। संक्षेप में निम्नलिखित परिस्थितियों में सम–विच्छेद बिन्दु में परिवर्तन हो जाता है :

(i) प्रति इकाई विक्रय मूल्य में कमी या वृद्धि होने पर।

(ii) स्थिर लागतों में कमी या वृद्धि होने पर।

(iii) परिवर्तनशील व्ययों में कमी या वृद्धि होन पर।

विक्रय मात्रा (Sales Volume) में परिवर्तन होने का अंशदान तथा सम–विच्छेद बिन्दु में कोई परिवर्तन नहीं होता।

## सम–विच्छेद विश्लेषण की सीमाएं
## (Limitations of Break-even Analysis)

सम–विच्छेद विश्लेषण की मुख्य सीमाएं निम्नलिखित है –

(1) **स्थिर एवं परिवर्तनशील लागतों के विभाजन में कठिनाई** (Difficulties in the Classification of Fixed and Variable Costs) – यह विश्लेषण इस मान्यता पर आधारित है कि उत्पादन लागतों को स्थिर एवं परिवर्तनशील दो प्रकार की लागतों में विभाजित किया जा सकता है, परन्तु व्यावहारिक जीवन में न तो कोई लागत पूर्णतः स्थायी होती है ओर न ही पूर्णतः परिवर्तनशील।

(2) **स्थायी एवं परिवर्तनशील व्यय का अनुपात** (Ratio of Fixed and Variable Expenses) – सम–विच्छेद विश्लेषण उसी परिस्थिति में उपयोगी सिद्ध हो सकता है जब स्थिर एवं परिवर्तनशील व्ययों का अनुपात स्थिर रहे।

(3) **विक्रय मूल्य** (Selling Price) – यह विश्लेषण इस मान्यता पर आधारित है कि उत्पादन एवं विक्रय के सभी स्तरों पर विक्रय मूल्य मे किसी प्रकार का कोई परिवर्तन नही होता अर्थात सभी स्तरों पर विक्रय मूल्य पूर्ववत् ही बना रहता है, जबकि वास्तविकता यह है कि उत्पादन मात्रा में वृद्धि के साथ–साथ विक्रय मूल्य में कमी करनी पड़ती है।

(4) **उत्पादन लागत को प्रभावित करने वाले तत्व** (Factor affecting Production Costs) – इस विश्लेषण के अन्तर्गत उत्पादन लागत में होने वाले परिवर्तनों का एक मात्र कारण स्थायी एवं परिवर्तनशील व्ययों की प्रकृति माना जाता है जबकि वास्तविकता यह है कि उत्पादन लागत पर अन्य कारकों का भी प्रभाव पड़ता है जैसे– श्रम एवं मशीनों की कुशलता, संयन्त्र क्षमता, तकनीकी योग्यता आदि।

(5) **विक्रय मिश्रण में स्थिरता** (Stability in Sales Mix) – यह विश्लेषण इस मान्यता पर आधारित है कि विक्रय मिश्रण में कोई परिवर्तन नही होता है जो कि गलत है। वास्तविकता यह है कि वस्तु की मांग के अनुसार विक्रय मिश्रण में परिवर्तन करना आवश्यक हो जाता है।

(6) **विनियोजित पूंजी पर कोई ध्यान नहीं** (No Attention on Capital Employed) – यह विश्लेषण विनियोजित पूंजी पर भी कोई ध्यान नही देता है जो कि प्रबन्धकीय निर्णय में एक महत्वपूर्ण कारक होता है।

(7) **अधिकतम उत्पादन स्तर पर अधिकतम लाभ** (Maximum Profit on Maximum Production Level) – इस विश्लेषण की यह मान्यता भी सत्य नही है कि अधिकतम उत्पादन स्तर पर ही अधिकतम लाभ होंगे। वास्तविकता यह है कि अधिकतम लाभ अधिकतम उत्पादन स्तर पर नही होता बल्कि अनुकूलतम उत्पादन स्तर (Optimum Production Level) पर होता है।

# वित्तीय स्थिति में परिवर्तनों का विवरण : रोकड़–प्रवाह विवरण
# (Statement of Changes in Financial Position : Cash-Flow Statement)

## रोकड़–प्रवाह विवरण का अर्थ एवं परिभाषा
## (Meaning and Definition of Cash-Flow Statment)

रोकड़–प्रवाह विवरण एक निश्चित अवधि के दौरान रोकड़ के विभिन्न स्रोतों एवं उपयोगों को प्रदर्शित करता है अर्थात् यह विवरण यह बताता है कि व्यवसाय में कहाँ–कहाँ से कितनी रोकड़ प्राप्त हुई तथा उसे कहाँ–कहाँ कितनी मात्रा में उपयोग किया गया। सरल शब्दों में, यह विवरण किन्हीं दो अवधियों के बीच व्यवसाय के रोकड़ शेषों में हुये परिवर्तनों के कारणों की व्याख्या करता है।

भारत के **इन्स्टीट्यूट आफ कास्ट एण्ड वर्क्स एकाउण्टेन्ट्स** के अनुसार, "रोकड़–प्रवाह विवरण किसी दी हुई अवधि में रोकड़ आवश्यकताओं के निर्धारण एवं उनकी पर्याप्त व्यवस्था करने के उद्देश्य से विभिन्न शीर्षकों के अन्तर्गत रोकड़ के स्रोतों एवं उनके उपयोगों से बनाया गया रोकड़ के प्रवाह का विवरण है।"

कोष–प्रवाह विश्लेषण में शुद्ध कार्यशील पूँजी की विभिन्न मदों तथा उनमें होने वाले परिवर्तनों को शामिल किया जाता है, जबकि कार्यशील पूँजी में रोकड़ के अतिरिक्त अन्य चालू सम्पत्तियाँ एवं चालू दायित्त्व भी शामिल होते हैं। इसलिये कोष–प्रवाह विवरण से इस बात की जानकारी नहीं हो पाती कि किन–किन मदों से कितनी रोकड़ व्यवसाय में आई है अतः उसका अन्तर्वाह (Inflow) किस प्रकार हुआ है तथा किन–किन मदों में कितनी रोकड़ व्यवसाय से गई है अर्थात् रोकड़ का बहिर्गमन (Outflow) किस प्रकार हुआ है। परन्तु वर्तमान समय में किसी भी व्यवसाय में प्रबन्धकों के लिये यह जानकारी अत्यन्त आवश्यक है कि एक निश्चित अवधि में व्यवसाय में रोकड़ (Cash) की कहाँ–कहाँ से कितनी प्राप्ति हुई है तथा किन–किन साधनों में रोकड़ प्रयोग किया गया है। किसी भी व्यवसाय के लिये विभिन्न व्यावसायिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु पर्याप्त रोकड़ की व्यवस्था करना आवश्यक ही नहीं अनिवार्य भी है। अतः रोकड़ के आगमन एवं बहिर्गमन की जानकारी प्राप्त करने के लिये वित्तीय स्थिति में परिवर्तनों का एक अन्य विवरण तैयार किया

जाता है जिसे रोकड़–प्रवाह (Cash-Flow Statement) विवरण कहा जाता है। यह विवरण कोषों की रोकड़ अवधारणा पर आधारित है।

## कोष–प्रवाह विवरण और रोक–प्रवाह विवरण में अन्तर
## (Difference between Funds Flow Statement and Cash Flow Statment)

(1) **अवधारणा** (Concept) – कोष प्रवाह विवरण कोषों की 'कार्यशील पूँजी' की अवधारणा पर आधारित है, जबकि रोक–प्रवाह विवरण कोषों की 'नकदी' की अवधारणा पर आधारित है।

(2) **रोकड़ शेष** (Cash Balances) – रोक–प्रवाह विवरण के प्रारम्भिक व अन्तिम रोकड़ शेषों को भी दिखलाया जाता है जबकि कोष–विवरण में इन्हें कार्यशील पूँजी के विवरण में दिखलाया जाता है।

(3) **आधार** (Basis) – कोष–प्रवाह विवरण लेखांकन के उपार्जन आधार (Accrual Basis of Accounting) से मेल खाता है जबकि रोक–प्रवाह विवरण लेखांकन के रोकड़ आधार (Cash Basis of Accounting) से मेल खाता है। इसमें उपार्जन आधार पर प्राप्त समंकों को रोकड़ आधार पर बदल कर दर्शाया जाता है।

(4) **चालू मदों का समायोजन** (Adjustment of Current Items) – कोष–प्रवाह विवरण में चालू सम्पत्तियों व चालू दायित्त्वों को कार्यशील पूँजी के विवरण में पृथक से दिखलाया जाता है जबकि रोक–प्रवाह विवरण में परिचालन से रोकड़ की गणना में सभी चालू मदों की वृद्धि व कमियों को समायोजित कर दिया जाता है।

(5) **कार्यशील पूँजी में परिवर्तनों के विवरण की आवश्यकता** (Need for Statement of Changes in Working Capital) – कोष–विवरण के साथ कार्यशील पूँजी में परिवर्तनों का विवरण भी तैयार किया जाता है जबकि रोक प्रवाह विवरण के साथ कोई भी अन्य विवरण नहीं तैयार किया जाता है।

(6) **दृष्टिकोण** (Viewpoint) – कोष–प्रवाह विवरण का दृष्टिकोण व्यापक है। इसमें संस्था की शुद्ध कार्यशील पूँजी को प्रभावित करने वाले कारकों को दिखलाया जाता है, जबकि रोक–प्रवाह विवरण में कुछ संकीर्ण दृष्टिकोण अपनाया जाता है। इसमें उन व्यवहारों को दिखलाया जाता है जिनका प्रत्यक्ष प्रभाव संस्था के रोकड़ शेष पर पड़ता है।

(7) **दीर्घकालीन एवं अल्पकालीन विश्लेषण** (Long-term and Short-term Analysis) – कोष–विश्लेषण दीर्घकालीन वित्तीय विश्लेषण और नियोजन की युक्ति है जबकि रोक प्रवाह विश्लेषण एक अल्पकालिक वित्तीय विश्लेषण की युक्ति है। इसमें व्यवसाय की तरलता को प्रभावित करने वाले तत्वों की जानकारी प्राप्त होती है।

(8) **परिचालन लाभ** (Operating Profit) – कोष–विवरण में परिचालन या शुद्ध लाभ को स्रोत माना जाता है, जबकि रोक–प्रवाह विवरण में इसका कोई भी स्थान नहीं होता है।

(9) **उपयोगिता** (Usefulness) – वित्तीय लेखांकन प्रमाप बोर्ड अमरीका (FASB, America), इन्स्टीट्यूट ऑफ चार्टर्ड एकाउन्टैन्ट्स ऑफ इन्डिया और सेबी सभी ने रोक–प्रवाह विश्लेषण से अधिक उपयोगी माना है। रोक–विश्लेषण व्यवसाय की तरलता के विश्लेषण की अधिक अच्छी तकनीक है।

## रोकड़–प्रवाह विवरण–संशोधित लेखांकन प्रमाप–3
## (Cash Flow Statement-Revised Accounting Standard-3)

रोकड़–प्रवाह विवरण के सम्बन्ध में इन्स्टीट्यूट ऑफ चार्टर्ड एकाउन्टैन्ट्स ऑफ इण्डिया ने जून 1981 में निर्गत लेखांकन प्रमाप–3 (AS-3) के स्थान पर मार्च 1997 में संशोधित लेखांकन प्रमाप–3

(Revised AS-3) निर्गमित किया है। 1 अप्रैल 2001 से निम्नलिखित उपक्रमों के लिऐ संशोधित लेखांकन प्रमाप–3 के अनुसार रोकड़–प्रवाह विवरण तैयार करना अनिवार्य कर दिया गया है –

(अ) ऐसे उपक्रम जिनके समता अंश या ऋण–पत्र भारत में किसी मान्यता प्राप्त स्कन्ध विपणि (Stock exchange) पर सूचीबद्ध हैं।

(ब) ऐसे उपक्रम जो अपने समता अंशों या ऋण–पत्रों को भारत में किसी स्कन्ध विपणि (Stock exchange) पर सूचीबद्ध कराना चाहते हैं या जिनके सूचीबद्ध करने की कार्यवाही चल रही है तथा इस आशय का प्रस्ताव संचालकों द्वारा संचालक मण्डल की बैठक में पारित कर लिया गया है।

(स) वे सभी औद्योगिक उपक्रम जिनकी बिक्री लेखांकन अवधि में 50 करोड़ रूपये से अधिक है।

संशोधित प्रमाप के अनुसार रोकड़–प्रवाहों को निम्नलिखित तीन श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया है–

(1) परिचालन क्रियाओं से रोकड़ प्रवाह (Cash flows from operating activities)।

(2) विनियोजन क्रियाओं से रोकड़ प्रवाह (Cash flows from invsting ctivities)।

(3) वित्तीय क्रियाओंसे रोकड़ प्रवाह (Cash flows from financial activities)।

**(1) परिचालन क्रियाओं से रोकड़ प्रवाह** (Cash flows from operating activities) – परिचालन क्रियाएँ उपक्रम की प्रमुख आगम देने वाली क्रियाएँ होती हैं एवं ऐसे व्यवहारों एवं घटनाओं से होने वाले रोकड़ प्रवाहों को शामिल करती हैं जिनसे शुद्ध लाभ या हानि का निर्धारण होता है। परिचालन क्रियाओं से रोकड़ प्रवाहों के मुख्य उदाहरण हैं –

(अ) माल के विक्रय और सेवा प्रदान करने से रोकड़ प्राप्तियाँ।

(ब) अधिकार शुल्क, फीस, कमीशन से रोकड़ प्राप्तियाँ एवं अन्य आगम।

(स) माल और सेवाओं हेतु आपूर्तिकर्त्ताओं को भुगतान

(ट) कर्मचारियों को अथवा उनकी ओर से रोकड़ भुगतान।

(य) आय–कर के लिये रोकड़ भुगतान और वापसियाँ जब तक कि इन्हें विशिष्ट रूप से वित्तीयन एवं विनियोजन क्रियाओं के रूप में न मान लिया जाये।

(र) अनुबन्धों से सम्बन्धित रोकड़ प्राप्तियाँ एवं भुगतान जब व्यापार के उद्देश्य हेतु अनुबन्ध किये गये हों। परिचालन क्रियाओं से रोकड़ प्रवाह ज्ञात करने की निम्नलिखित दो रीतियाँ हैं –

(1) प्रत्यक्ष रीति (Direct Mothod) (2) अप्रत्यक्ष रीति (Indirect Method)

**(1) प्रत्यक्ष रीति (Direct Mothod)** – इस विधि के अन्तर्गत परिचालन क्रियाओं से रोकड़ प्राप्तियों जैसे नकद बिक्री, ग्राहकों एवं देनदारों से वसूल की गई रकम, ब्याज अथवा लाभांश से रोकड़ की प्राप्ति आदि एवं परिचालन क्रियाओं के लिये रोकड़ भुगतानों जैसे माल एवं सेवाओं हेतु लेनदारों को भुगतान, कर्मचारियों को उनकी सेवाओं हेतु भुगतान, ब्याज का भुगतान एवं सरकार को करों हेतु भुगतान को प्रदर्शित किया जाता है। रोकड़ प्राप्तियों एवं रोकड़ भुगतानों के मध्य का अन्तर परिचालन क्रियाओं से शुद्ध रोकड़ प्रवाह कहलाता है। संक्षेप में इस विधि के अन्तर्गत परिचालन क्रियाओं से रोकड़ प्रवाह ज्ञात करने का प्रारूप निम्नलिखित है –

Calculation of Cash Flows from Operating Activities (Direct Method)

| | Particulars | Amount Rs. | Amount Rs. |
|---|---|---|---|
| | Cash Sale | | ………. |
| | Cash received from customers/Debtors | | ………. |
| ***Less :*** | Cash Purchases | ………. | ………. |
| | Cash paid to suppliers/creditors | ………. | |
| | Cash Expenses (Operating Exp.-Wages, salaries | | |

| | | | |
|---|---|---|---|
| | Rent, rates etc.) | .......... | .......... |
| | Cash gernerated from operating activities | | .......... |
| ***Less :*** | Income tax paid | | |
| | Cash flow before extra-ordinary items | | .......... |
| | (+) or (-) Extra ordinary items | | .......... |
| | Cash from (used in) operating, activities | | .......... |

**नोट** – स्पष्ट है कि प्रत्यक्ष रीति द्वारा 'परिचालन क्रियाओं से रोकड़ प्रवाह' का परिकलन करने हेतु गैर–रोकड़ मदों (ह्रास, ख्याति का अपलेखन, प्रारम्भिक व्यय का अपलेखन आदि) एवं गैर–परिचालन मदों (स्थायी सम्पत्ति अथवा विनियोगों के विक्रय पर लाभ या हानि) पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता है।

## रोकड़ प्राप्तियों एवं भुगतानों की गणना विधि
(Method of Calculating Cash Receipts and Payments)

प्रत्यक्ष विधि के अन्तर्गत हमें अर्जित आधार के आगम एवं व्ययों को नकद प्राप्तियों एवं भुगतानों के समतुल्य परिवर्तित करना पड़ता है। यह अग्रलिखित प्रकार से किया जा सकता है –

| | | |
|---|---|---|
| **(i)** | Cash receipts from debtors/customers : | Rs. |
| | Credit Sales | ............... |
| | (+) Opening balance of debtors and bills receivable | ............... |
| | (-) Closing balance of debtors and bills receivable | ............... |
| | *Cash receipts from debtors* | ............... |
| **(ii)** | **Cash paid to suppliers :** | **Rs.** |
| | Credit Purchases | ............... |
| (+) | Creditors and B/P at the beginning | ............... |
| (-) | Creditors and B/P at the end | ............... |
| | *Cash paid to suppliers* | ............... |
| **(iii)** | **Cash paid to employees :** | **Rs.** |
| | Wages and Salaries on accrual basis | ............... |
| | Add outstanding at the end | ............... |
| (-) | Outstanding at the end | ............... |
| (+) | Prepaid at the beginning | ............... |
| | *Cash paid to employees* | ............... |

**नोट** – (1) देनदारों/ग्राहकों से नकद प्राप्ति की गणना करते समय देनदारों का सकल (Gross) प्रारम्भिक तथा अन्तिम शेष लिया जायेगा अर्थात् Opening Debtors + Opening Balance of Provision for Bad and Doubtful Debts; Closing Debtors + Closing Balance of Provision for Bad and Doubtful Debts, डूबत ऋण की रकम को देनदारों की राशि में से घटा दिया जाता है।

(2) विक्रय की राशि विक्रय वापसी एवं दी गई छूट को घटाकर तथा क्रय की राशि क्रय वापसी एवं प्राप्त छूट घटाकर लिखी जाती है।

(3) यदि प्रश्न में क्रय सम्बन्धी सूचना न दी हुई को और उसके स्थान पर विक्रय की लागत (Cost of Goods Sold) की राशि दी हुई हो तो क्रय की राशि निम्नलिखित सूत्र की सहायता से ज्ञात कर ली जायेगी –

Purchase = Cost of Goods Sold + Closing Stock – Opening Stock

(2) **अप्रत्यक्ष रीति** (Indirect Method) – इस विधि के अन्तर्गत गैर–रोकड़ प्रकृति के व्यवहारों एवं चालू सम्पत्तियों तथा चालू दायित्वों के प्रभाव हेतु शुद्ध लाभ (हानि) को समायोजित किया जाता है। ऐसी मदें, जिनसे शुद्ध लाभ तो प्रभावित हुआ है परन्तु उनसे रोकड़ प्रवाह नहीं होता है, उनकी रकमों को लाभ–हानि खाते द्वारा प्रदर्शित शुद्ध लाभ में जोड़ा जाता है। ऐसी मदों में ह्रास, अमूर्त सम्पत्तियों का अपलेखन, विनियोग या स्थायी सम्पत्तियों की बिक्री से हानि आदिको सम्मिलित किया जाता है। इसके विपरीत गैर–रोकड़ और गैर–परिचालन आगमों (जैसे ब्याज एवं लाभांश से आय, विनियोगों और स्थायी सम्पत्तियों के विक्रय से लाभ आदि को) घटाया जाता है। इस प्रकार समायोजित लाभ/कार्यशील पूँजी के परिवर्तनों से पूर्व परिचालन लाभ (Operating profit before working capital changes) कहलाता है। इसके बाद चालू परिचालन सम्पत्तियों (रोकड़ और रोकड़ तुल्यों को छोड़कर सभी चालू सम्पत्तियाँ जैसे देनदार, प्राप्य बिल, स्कन्ध, पूर्वदत्त व्यय आदि) एवं चालू परिचालन दायित्वों (बैंक अधिविकर्ष को छोड़कर सभी चालू दायित्व, जैसे व्यापारिक लेनदार, देय बिल, अदत्त व्यय आदि) में हुई कमी या वृद्धि के लिये समायोजन किये जाते हैं। चालू सम्पत्तियों की कमी तथा चालू दायित्वों की वृद्धि को शुद्ध लाभ से जोड़ा जाता है एवं चालू सम्पत्तियों की वृद्धि तथा चालू दायित्वों की कमी को घटाया जाता है।

संक्षेप में इस विधि के द्वारा परिचालन क्रियाओं से रोकड़ प्रवाह ज्ञात करने का प्रारूप निम्नवत् होगा–

**Calculation of Cash from Operating Activities (Indirect Method)**

| | | Rs. | |
|---|---|---|---|
| Net profit before tax and extra-ordinary items | | | …….. |
| *Add :* | Non-cash and non-operating charges : | | …….. |
| | Depreciation | | …….. |
| | Goodwill written off | | …….. |
| | Preliminary expenses written off | | …….. |
| | Discount on issue of shares or debentures written off | | …….. |
| | Transfer to Reserves | | …….. |
| | Loss on sale of fixed assets and investments | | …….. |
| *Less* : | Non-cash and non operating Credits : | | …….. |
| | Profit on sale of fixed assets and investments | …….. | |
| | Provision for bad-debts written back | …….. | |
| | Interest and dividend received | …….. | |
| | Operating profit before working capital changes | | |
| *Add* : | Increase in operating current liabilities | …….. | |
| | Decrease in operating current assets | …….. | …….. |
| *Less* : | Increase in operating current assets | …….. | …….. |
| | Decrease in current liabilities | | |
| | Cash generated from operating activities | | …….. |
| *Less* : | Incom-tax paid | | …….. |
| *Add* : | Extra-ordinary items | | …….. |
| | Net cash flow from operating activities | | …….. |

**नोट** : प्रत्यक्ष विधि और अप्रत्यक्ष विधि दोनों से समान परिणाम प्राप्त होते हैं। प्रश्न में दी हुई सूचनाओं के आधार पर ही यह निश्चित करेंगे कि परिचालन क्रियाओं से रोकड़ प्रवाह ज्ञात करने के लिए किस विधि को प्रयोग करना उपयुक्त रहेगा।

***Illustration :*** निम्नलिखित मदों को समायोजित करने के बाद मोनिका लि. का शुद्ध लाभ 3,00,000 रुपये था –

Net Profit of Monika Ltd. was Rs. 3,00,000 after adjusting the following items :

प्रारम्भिक व्यय अपलिखित (Preliminary Expenses written off) Rs. 3,000 ; ह्रास (Depreciation) Rs. 30,000 ; भवन की बिक्री पर हानि (Loss on sale of building) Rs. 12,000 ; संदिग्ध ऋणों के लिए आयोजन (Provision for doubtful debts) Rs. 6,000 ; उपस्कर की बिक्री पर लाभ (Profit on sale of furniture) Rs. 4,500 ।

चालू सम्पत्तियों तथा चालू दायित्वों की स्थिति निम्न प्रकार है –

Following is the position of Current Assets and Current Liabilities :

| | **31.03.2006**<br>रुपये **(Rs.)** | **31.03.2007**<br>रुपये **(Rs.)** |
|---|---|---|
| देनदार (Debtors) | 31,200 | 46,800 |
| प्राप्य विपत्र (Bills Receivable) | 9,000 | 7,200 |
| पूर्वदत्त व्यय (Prepaid Expenses) | 1,200 | 1,800 |
| स्कन्ध (Stock) | 43,200 | 35,400 |
| लेनदार (Creditors) | 24,000 | 30,600 |
| देय विपत्र (Bills Payable) | 31,800 | 19,200 |
| देय आयकर (Income tax payable) | 11,400 | 7,800 |

गत वर्ष का आयकर चालू वर्ष में चुकाया गया।

Income tax payable last year has been paid in current year.

संचालन क्रियाओं से रोकड़ की गणना कीजिए।

Calculate cash from operating Activities.

***Solution :*** **Indirect Method**

**Calculation of Cash Flows from Operating Activities (Indirect Method)**

| | | **Rs.** | **Rs.** |
|---|---|---|---|
| Net Profit before tax [Rs. 3,00,000 + 7,800 (IT)] | | | 3,07,800 |
| ***Add :*** | Preliminary Expenses | 3,000 | |
| | Depreciation | 30,000 | |
| | Loss on Sale of Building | 12,000 | |
| | Provision for Doubtful Debts | 6,000 | 51,000 |
| | | | 3,58,800 |
| ***Less :*** | Profit on Sale of Furniture | | 4,500 |
| | Operating Profit before working capital changes | | 3,54,300 |
| ***Add :*** | Decrease in Current Assets : | | |
| | Bills Receivable (9,000 – 7,200) | 1,800 | |
| | Inventory (Rs. 43,200 – 35,400) | | |
| | Increase in Current Liabilities : | | |
| | Creditors (Rs. 30,600 – 24,000) | 6,600 | 16,200 |
| | | | 3,70,500 |
| ***Less :*** | **Increase in Current Assets :** | | |

| | | |
|---|---|---|
| Debtors (Rs. 46,800 – 31,200) | 15,600 | |
| Prepaid Exp. (Rs. 1,800 – 1,200) | 600 | |
| **Decrease in Current Liabilities :** | | |
| Bills Payable (Rs. 31,800 – 19,200) | 12,600 | 28,800 |
| **Cash Generated from Operations** | | 3,41,700 |
| ***Less :*** Income tax paid | | 11,400 |
| **Cash Flows before Extraordinary items** | | 3,30,300 |
| Extraordinary Items | | Nil |
| Net Cash from Operating Activities | | 3,30,300 |

***Illustration :*** निम्नलिखित सूचनाओं से परिचालन क्रियाओं से रोकड़ प्रवाह की गणना कीजिए –

Calculate cash flow from operating activities from the following information :

| *Particulars* | 31.03.2006 रुपये (Rs.) | 31.03.2007 रुपये (Rs.) |
|---|---|---|
| लाभ–हानि खाता (Profit & Loss A/c) | 30,000 | 1,08,000 |
| देनदार (Debtors) | 30,000 | 24,000 |
| लेनदार (Creditors) | 15,000 | 12,000 |
| प्राप्य विपत्र (Bills Receivable) | 6,000 | 7,500 |
| देय बिल (Bills Payables) | 24,000 | 15,000 |
| अदत्त व्यय (Outstanding Expenses) | 480 | 600 |
| उपार्जित आय (Accrued Income) | 3,600 | 4,200 |

***Solution :***

**Calculation of Cash Flows from Operating Activities**

| *Particulars* | **Rs.** | **Rs.** |
|---|---|---|
| Balance of Profit & Loss A/c as on 31.03.07 | 1,08,000 | |
| ***Add :*** Balance of Profit & Loss A/c as on 31.03.06 | 30,000 | |
| Profit for the year 2006-07 | | 78,000 |
| ***Add :*** (i) Decrease in Current Assets | | |
| Debtors (30,000 – 24,000) | 6,000 | |
| (ii) Increase in Current Liabilities | | |
| Outstanding expenses (600 – 480) | 120 | 6,120 |
| | | 84,120 |
| ***Less :*** (i) Increase in Current Assets : | | |
| B/R (7,500 – 6,000) | 1,500 | |
| Accrued Income (4,200 – 3,600) | 600 | |
| (ii) Decrease in Current Liabilities | | |
| Creditors (15,000 – 12,000) | 3,000 | |
| Bills Payables (24,000 – 15,000) | 9,000 | 14,100 |
| Cash flow from Operating Activities | | 70,020 |

**(2) विनियोजन क्रियाओं से रोकड़ प्रवाह** (Cash flow from investing activities) – विनियोजन क्रियाओं में ऐसे व्यवहार एवं घटनायें सम्मिलित होती हैं जो कि दीर्घकालीन उत्पादकीय सम्पत्तियों जैसे–भूमि, भवन, उपकरण (प्लान्ट एवं मशीनरी) जो पुनः विक्रय के लिये नहीं होती,

विनियोग जो रोकड़ तुल्य नहीं है, आदि से सम्बन्धित होती हैं। संशोधित लेखांकन प्रमाप–3 के अन्तर्गत विनियोजन क्रियाओं से रोकड़ प्रवाह के निम्नलिखित उदाहरण दिये गये हैं –

(i) अमूर्त सम्पत्तियों जैसे ख्याति, पेटेन्ट्स एवं कॉपीराइट्स सहित स्थिर सम्पत्तियों को प्राप्त करने हेतु रोकड़ भुगतान। पूँजीगत शोध एवं विकास लागतें और स्व–निर्मित स्थिर सम्पत्तियों हेतु किया गया भुगतान भी सम्मिलित है।

(ii) अमूर्त सम्पत्तियों सहित सभी स्थिर सम्पत्तियों के विक्रय से रोकड़ प्राप्तियाँ।

(iii) अन्य उपक्रमों के अंशों, वारंटों अथवा ऋण–प्रपत्रों एवं संयुक्त साहसों में हितों की प्राप्ति के लिये रोकड़ भुगतान अथवा विक्रय से रोकड़ प्राप्तियाँ।

(iv) एक वित्तीय उपक्रम के अतिरिक्त अन्य किसी उपक्रम द्वारा तृतीय पक्षों को दिये गये रोकड़ अग्रिम और ऋण।

(v) एक वित्तीय उपक्रम के अतिरिक्त अन्य किसी उपक्रम द्वारा तृतीय पक्षों को दिये गये अग्रिमों और ऋणों की वापसी से रोकड़ प्राप्तियाँ।

(vi) वित्तीयन क्रियाओं के रूप में व्यवहार अथवा व्यापारिक अनुबन्धों के अतिरिक्त भावी अनुबन्धों (Future Contracts), आगे के अनुबन्धों (Forward Contracts), विकल्प अनुबन्धों (Option Contracts) और बदले के अनुबन्धों (Swap Contracts) से रोकड़ प्राप्तियाँ एवं उनके लिये रोकड़ भुगतान।

***Illustration :*** निम्नलिखित सूचनाओं से विनियोजन क्रियाओं से रोकड़ प्रवाह की गणना कीजिए –

From the following informations calculate cash flow from Investing Activities:

| *Particulars* | 01.04.2006<br>रुपये (Rs.) | 31.03.2007<br>रुपये (Rs.) |
|---|---|---|
| विनियोग (Investments A/c) | 1,02,000 | 84,000 |
| यन्त्र [Machinery (at cost)] | 1,20,000 | 1,26,000 |
| ह्रास आयोजन खाता (Provision for Depreciation A/c) | 30,000 | 33,000 |

(1) वर्ष के दौरान कम्पनी ने अपने प्रारम्भिक विनियोग का 40% भाग 25,000 रुपये के लाभ पर बेच दिया।
During the year the company had sold 40% of its investment held in the beginning of the year at a profit of Rs. 25,000.

(2) 12,000 रुपये की लागत की मशीन (संचित ह्रास 7,000 रुपये) 6,000 रुपये में बेच दी।
A machine costing Rs. 12,000 (accumulated depreciation Rs. 7,200) was sold for Rs. 6,000.

***Solution :***

**Cash Flows from Investing Activities**

| *Particulars* | **Rs.** | **Rs.** |
|---|---|---|
| Inflows from sale of Investments<br>[(40% of 1,02,000) + (25,000)] | 65,800 | |
| Outflows on purchase of Investments | (22,800) | 43,000 |
| Inflows from sale of machine | 6,000 | |
| Outflows on Purchase of machinery | (18,000) | (12,000) |
| *Net Cash flow from Investing Activities* | | 31,000 |

**Note :** Figure in brakcets represent outflows.

*Working Note :*

**Investment A/c**

| Particulars | Rs. | Particulars | Rs. |
|---|---|---|---|
| To Balance b/d | 1,02,000 | By Bank A/c (Sale of Investment) | 65,800 |
| To P & L A/c (Profit on Sale of Investment) | 25,000 | By Balance c/d | 84,000 |
| To Bank A/c (Purchase of Investment) Balancing Figure | 22,800 | | |
| | 1,49,800 | | 1,49,800 |

**Machinery A/c**

| | | | |
|---|---|---|---|
| To Balance b/d | 1, 20,000 | By Accumulated Dep. | 7,200 |
| To P & L A/c (Profit on Sale of Machinery) | 1,200 | By Bank A/c (sale) | 6,000 |
| To Bank (Purchase) Balancing Figure | 18,000 | | |
| | 1,39,200 | | 1,39,200 |

***Illustration :*** निम्नलिखित सूचनाओं से विनियोजन क्रियाओं से शुद्ध रोकड़ प्रवाह की गणना कीजिए –

From the following informations, calculate the amount of net cash flows from the Investing Activities:

| विवरण **(Particulars)** | **31.03.2006 रुपये (Rs.)** | **31.03.2007 रुपये (Rs.)** |
|---|---|---|
| भूमि (Land) | 1,05,000 | 35,000 |
| प्लाण्ट एवं मशीनरी (Plant and Machinery) | 2,80,000 | 3,50,000 |
| दीर्घकालीन विनियोग (Long-term Investments) | 17,500 | 35,000 |

अतिरिक्त सूचनाएँ (Additional Information) :

(1) संयंत्र एवं मशीन पर 28,000 रुपये ह्रास लगाया गया है। (Plant and machinery has been charged a depreciation of Rs. 28,000).

(2) 35,000 रुपये के पुस्तकीय मूल्य के संयंत्र एवं मशीन को 42,000 रुपये में बेचा गया है। (Plant and machinery with a book value of Rs. 35,000 was sold for Rs. 42,000).

(3) भूमि 17,500 रुपये के लाभ पर बेची गई। (Land was sold at a profit of Rs. 17,500).

***Solution :***

**Calculation of Net Cash Flows from Investing Activities**

| *Particulars* | **Rs.** | **Rs.** |
|---|---|---|
| Cash payment to purchase Plant & Machinery | (1,33,000) | |
| Cash receipts from sale of Plant & Machinery | 42,000 | |
| Cash receipts from sale of land (1,05,000 – 35,000 + 17,500) | 87,500 | |
| Cash payment to acquire investment (35,000 – 17,500) | (17,500) | |
| *Net Cash flow from Investing Activities* | | (21,000) |

**Note :** Figure in brakcets represent outflows.

*Working Note :*

**Plant & Machinery A/c**

| | | | |
|---|---|---|---|
| To Balance b/d | 2,80,000 | By Bank (Sale of Plant) | 42,000 |
| To P & L A/c (Profit on Sale of | 7,000 | By Depreciation A/c | 28,000 |

| | | | |
|---|---|---|---|
| plant)<br>To Bank (Purchase of Plant)<br>Balancing Figure | 1,33,000 | By Balance c/d | 3,50,000 |
| | 4,20,000 | | 4,20,000 |

**(3) वित्तीय क्रियाओं से रोकड़ प्रवाह** (Cash flow from financing activities) – वित्तीय क्रियाओं से अभिप्राय ऐसी क्रियाओं से है जिनके परिणामस्वरूप स्वामियों की पूँजी (कम्पनी की दशा में समता अंश पूँजी एवं पूर्वाधिकार अंश पूँजी को सम्मिलित करते हुए) एवं उपक्रम के उधारों के आकार तथा संरचना में परिवर्तन होते हैं। संशोधित लेखांकन प्रमाप–3 के अन्तर्गत वित्तीय क्रियाओं से रोकड़ प्रवाह के निम्नलिखित उदाहरण दिये गये हैं–

(i) अंशों या इसी प्रकारके प्रलेखों के निर्गमन से रोकड़ प्राप्तियाँ,

(ii) ऋणपत्रों के निर्गमन, ऋणों, नोटों, बॉण्डों और अन्य अल्पकालीन या दीर्घकालीन उधारों से रोकड़ प्राप्तियाँ।

(iii) उधार रकमों का रोकड़ भुगतान अर्थात् पूर्वाधिकार अंशों, ऋणपत्रों, बॉण्डस आदि का शोधन।

**कुछ विशिष्ट मदों का उपचार** (Treatment of Certain Special Items) – उपर्युक्त तीन श्रेणियों के अतिरिक्त, '**संशोधित लेखांकन प्रमाप–3**' रोकड़–प्रवाह की निश्चित विशिष्ट मदों का उपचार भी प्रदान करता है, जिसकी विवेचना निम्नलिखित प्रकार है–

**(1) ब्याज और लाभांश** (Interest and Dividend) – (अ) वित्तीय उपक्रमों की दशा में चुकता किये गये ब्याज एवं लाभांश और ब्याज एवं लाभांश की प्राप्त रकम को 'परिचालन क्रियाओं से रोकड़–प्रवाह' में सम्मिलित किया जायेगा, (ब) गैर वित्तीय उपक्रमों की दशा में (i) चुकता किये गये ब्याज एवं लाभांश से होने वाले रोकड़ प्रवाह को 'वित्तीय क्रियाओं से रोकड़ प्रवाह' में सम्मिलित किया जायेगा एवं (ii) प्राप्त होने वाले ब्याज एवं लाभांश को 'विनियोजन क्रियाओं से रोकड़ प्रवाह' में सम्मिलित किया जायेगा।

**(2) असाधारण मदें** (Extra ordinary items) – कुछ असाधारण मदें हो सकती हैं जैसे डूबते ऋणों की वसूली (bad-debts recovered), बीमा कम्पनियों के दावे, मुकदमे की जीत आदि असाधारण मदों से होने वाले रोकड़ प्रवाह को रोकड़–प्रवाह विवरण में अलग से प्रदर्शित किया जाता है।

**(3) आयकर** (Taxes on Income) – आय पर चुकाये गये कर की रकम सामान्यतः परिचालन क्रियाओं से रोकड़ प्रवाह में सम्मिलित की जाती है। लेकिन यदि इसे 'वित्तीयन' या 'विनियोजन' क्रियाओं से विशिष्ट रूप से सम्बन्धित किया जा सके, तो ऐसी दशा में जैसी भी स्थिति हो 'वित्तीयन' अथवा 'विनियोजन' क्रियाओं से रोकड़ प्रवाह के अन्तर्गत दर्शाया जायेगा। उदाहरणार्थ, पूँजी लाभ कर 'विनियोजन क्रियाओं से रोकड़ प्रवाह' होगा।

**(4) महत्त्वपूर्ण गैर–रोकड़ी लेन–देन** (Significant Non-Cash Transactions) – कुछ वित्तीय अथवा विनियोजन लेन–देन ऐसे हो सकते हैं जिनके लिये रोकड़ या रोकड़ तुल्यों के प्रयोग की आवश्यकता नहीं होती, ऐसे लेन–देनों को गैर रोकड़ी लेन–देन कहते हैं। उदाहरणार्थ, अंशों या ऋणपत्रों के निर्गमन द्वारा सम्पत्तियों अथवा किसी उपक्रम को क्रय करना, ऋण पत्रों का अंशों में परिवर्तन आदि। ऐसे लेन–देनों को रोकड़ प्रवाह विवरण में नहीं दिखलाया जाना चाहिये बल्कि इन्हें वित्तीय विवरणों में अन्य किसी स्थान पर इस प्रकार दर्शाया जाना चाहिये ताकि ऐसे लेन–देनों के सम्बन्ध में वांछित सूचना प्राप्त हो सके। संक्षेप में, ऐसे लेन–देनों को रोकड़–प्रवाह विवरण के बाद एक पृथक् अनुसूची में प्रदर्शित करना चाहिये।

**(5) विदेशी मुद्रा के रोकड़ प्रवाह** (Foreign Currency Cash Flow) – विदेशी मुद्रा में होने वाले व्यवहारोंके कारण होने वाले रोकड़ प्रवाह को रोकड़ प्रवाह की तिथि पर उपक्रम की मुद्रा में

विनियम दर के आधार पर परिवर्तित करके रिकार्ड किया जायेगा। विदेशी मुद्रा पर होने वाला कोई लाभ या हानि रोकड़ प्रवाह नहीं है, परन्तु अवधि के प्रारम्भ एवं अन्त में रोकड़ शेषों का मिलान करने के लिये इसे रोकड़ प्रवाह विवरण में प्रदर्शित किया जाता है।

## रोकड़–प्रवाह विवरण तथा रोकड़ बजट में अन्तर
## (Distinction Between Cash-flow Statement and Cash Budget)

रोकड़–प्रवाह विवरण तथा रोकड़ बजट बनाने की प्रक्रिया लगभग समान ही है, अतः रोकड़–प्रवाह विवरण तथा रोकड़ बजट लगभग एक समान ही हैं। परन्तु इन दोनों में कुछ अन्तर भी है –

(i) रोकड़–प्रवाह विवरण का निर्माण विगत दो वर्षों के लेखों से सम्बन्धित होता है, जबकि रोकड़ बजट का निर्माण भविष्य के अनुमानित आंकड़ों के आधार पर किया जाता है।

(ii) रोकड़–प्रवाह विवरण का निर्माण सामान्यतया दो आर्थिक चिट्ठों (प्रारम्भिक तथा अन्तिम) के आधार पर किया जाता है जबकि रोकड़–बजट का निर्माण एक निश्चित अवधि हेतु (3 माह, 6 माह, 12 माह आदि) विगत आंकड़ों को आधार मानकर किया जाता है।

(iii) रोकड़–प्रवाह विवरण वास्तविक आंकड़ों के आधार पर बनाया जाता है, अतः मौसमी परिवर्तनों का इस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। रोकड़ बजट अनुमानित आंकड़ों के आधार पर बनाया जाता है, अतः मौसमी परिवर्तनों को पूर्वानुमान में सम्मिलित कर लिया जाता है।

(iv) रोकड़–प्रवाह विवरण के अन्तर्गत रोकड़ में हुये भूतकालीन परिवर्तनों का वर्णन एवं विवेचन किया जाता है, जबकि रोकड़ बजट में भविष्य में होने वाले रोकड़ सम्बन्धी परिवर्तनों का अनुमान लगाया जाता है।

(v) रोकड़–प्रवाह विवरण प्रबन्धकों के अतिरिक्त अंशधारियों, ऋणपत्रधारियों, विनियोजकों, सरकार, बैंकों आदि के लिए भी उपयोगी होता है, जबकि रोकड़ बजट का लाभ केवल प्रबन्ध वर्ग को प्राप्त होता है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि रोकड़–प्रवाह विवरण एंव रोकड़ बजट में सैद्धान्ति रूप से कोई अन्तर नहीं है। रोकड़–प्रवाह विवरण भूतकालीन आंकड़ों पर आधारित रोकड़ विश्लेषण की तकनीक है तो रोकड़ बजट पूर्वानुमानित आंकड़ों पर आधारित विश्लेषण की तकनीक है, दोनों को तैयार करने का उद्देष्य भी एक समान है।

## रोक–प्रवाह विश्लेषण के उपयोग
## (Uses of Cash Flow Analysis)

रोकड़ किसी व्यवसाय का जीवन–रक्त होता है। यह चक्रशील प्रकृति का होता है। इसके चक्र (Circulation) के रूक जाने पर और व्यवसाय में इसकी कमी आ जाने पर व्यवसाय संचालन पर रोक (Halt) लग जाती है। अतः किसी व्यवसाय में रोकड़ का सतत्–संचालन अति आवश्यक होता है। रोक–प्रवाह विश्लेषण किसी संस्था के रोकड़ के संचालन के विश्लेषण की ही एक युक्ति है। किसी व्यवसाय के अल्पकालीन वित्तीय परिवर्तनों की जाँच के लिये यह एक अति उपयोगी युक्ति मानी जाती है। विनियोक्ता, लेनदार, बैंकर्स, प्रबन्ध सभी के लिये यह एक महत्वपूर्ण युक्ति है। इसके प्रमुख लाभ निम्नलिखित हैं –

(1) रोक–प्रवाह विश्लेषण अल्पकालीन वित्तीय विश्लेषण की एक महत्वपूर्ण तकनीक है। यह वित्तीय विवरणों के प्रयोगकर्त्ताओं को रोकड़ तुल्यों के जनन (generation) और उनके जनन का समय और निश्चितता तय करने की उपक्रम की सामर्थ्य के मूल्यांकन का आधार प्रदान करता है।

यह प्रयोगकर्त्ताओं को विभिन्न उपक्रमों के भावी रोकड़ प्रवाहों के वर्तमान मूल्य के आकलन और तुलना के लिये मॉडल विकसित करने योग्य बनाता है।

(2) यह प्रबन्ध के लिये एक नियन्त्रण युक्ति भी है। रोक–प्रवाह विवरण की उसी अवधि के रोकड़ बजट के बजटीय पूर्वानुमानों से तुलना करके बजट के मौलिक पूर्वानुमानों का इस विवरण के वास्तविक परिणामों से अन्तर ज्ञात किया जा सकता है अर्थात् इस तुलना से प्रबन्ध यह निश्चित कर सकता है कि संस्था के वित्तीय साधनों को किस सीमा तक योजनानुसार उत्पन्न तथा प्रयुक्त किया गया है। इससे रोकड़ व्ययों के नियन्त्रण में सहायता मिलती है।

(3) यह संस्था की वित्तीय नीतियों और वर्तमान रोकड़ स्थिति के मूल्यांकन में सहायक होता है। यदि अगली लेखा–अवधि के अनुमानों के आधार पर रोक–प्रवाह विवरण तैयार किया जाता है तो यह विवरण प्रबन्ध को संस्था के वित्तीय कार्यकलापों के नियोजन और समन्वय में भी उपयोगी होगा। इस विवरण की सहायता से संस्था का रोकड़ बजट भी तैयार किया जा सकता है। इसमें रोकड़ के प्रयोग 'रोकड़–भुगतान' तथा अतिरिक्त वित्तीय–व्यवस्था को छोड़कर रोकड़ के स्रोत की अन्य मदें 'रोकड़–प्राप्तियाँ' कहलायेंगी। दोनों पक्षों का अन्तर रोकड़ की आवश्यकता अथवा आधिक्य प्रदर्शित करेगा।

(4) इस विवरण से संचालन से रोकड़ की राशि ज्ञात करके आन्तरिक वित्तीय प्रबन्ध दीर्घकालीन दायित्वों के चुकता करने, स्थायी सम्पत्तियों के विस्तार या पुनर्स्थापन की सम्भावनाओं और लाभांश नीति निर्धारित करने पर विचार कर सकता है।

(5) यह विवरण शुद्ध आय और परिचालन क्रियाओं से शुद्ध रोकड़ प्रवाहों के बीच अन्तर के कारणों की व्याख्या करता है। इस प्रबन्ध को उन तथ्यों से अवगत कराता है जिसके कारण व्यवसाय में लाभ होने पर भी रोकड़ शेष में कमी हुई है अथवा हानि होने पर भी रोकड़ शेष में वृद्धि हुई है।

(6) इस विवरण का अल्पकालीन वित्तीय निर्णयों में विशेष महत्व है। यदि प्रबन्ध संस्था की एक माह बाद दायित्व–शोधन क्षमता का पता लगाना चाहता है तो ऐसा रोक–प्रवाह विवरण की सहायता से ही हो सकता है, कोष–प्रवाह विवरण की सहायता से नहीं। संस्था का मासिक रोक–विवरण तैयार करके इसकी दायित्व–क्षमता का अनुमान लगाया जा सकता है। वस्तुतः वित्तीय विश्लेषण का समय जितना अल्प होता है, इस विवरण का उतना ही अधिक महत्व बढ़ जाता है।

(7) रोक–प्रवाह विश्लेषण से एक विनियोक्ता अपनी कम्पनी से लाभांश की प्राप्ति की सम्भावनाओं का अनुमान लगाता है तथा एक ऋणदाता अपनी ऋण की वापिसी में जोखिम का अनुमान लगाता है। वस्तुतः रोक–विश्लेषण से संस्था की वित्तीय सुदृढ़ता का पता लगता है।

(8) ऐतिहासिक रोकड़ प्रवाह सूचना का उपयोग बहुधा भावी रोकड़ प्रवाहों की राशि, समय और निश्चितता के सूचक के रूप में किया जाता है। यह भावी रोकड़ प्रवाहों के भूतकालीन आकलनों की जाँच करने और लाभप्रदता तथा शुद्ध रोकड़ प्रवाह के सम्बन्ध और बदलते मूल्यों के प्रभाव का परीक्षण करने में भी उपयोगी है।

(9) यह प्रयोगकर्त्ताओं को सम्पत्तियों में संसाधनों के लगाने या निकालने के स्वरूपों (patterns) के विश्लेषण और उपक्रम की शुद्ध सम्पत्तियों में परिवर्तनों के मूल्यांकन करने योग्य बनाता है।

(10) यह प्रबन्ध को रोकड़ चक्र के गत व्यवहार को समझने और भविष्य में रोकड़ के प्रयोगों को नियंत्रित करने में सहायता प्रदान करता है।

## रोकड़ प्रवाह विवरण की तैयारी
## (Preparation of Cash-Flow Statement)

रोकड़–प्रवाह विवरण की तैयारी करने हेतु निम्नलिखित प्रक्रिया अपनायी जाती है –

**(1) रोकड़ और रोकड़ तुल्य खातों में शुद्ध वृद्धि/कमी की गणना** (Calculation of Net Increase/Decrease in Cash and Cash Equivalents Accounts) – रोकड़ के अभिप्राय हस्तगत रोकड़ तथा बैंकों में जमा माँग जमाओं से है। रोकड़ तुल्य से अभिप्राय अल्पकालीन उच्चतम तरल विनियोगों से है जो कि तुरन्त रोकड़ में परिवर्तनीय हों और जो अपनी परिपक्वता के इतने निकट हों कि, उनके मूल्य में परिवर्तन की जोखिम महत्त्वहीन हो। सरकारी प्रतिभूतियाँ, ट्रेजरी बिल्स एवं पूर्वाधिकारी अंश आदि जो प्राप्ति की तिथि से तीन माह के अन्तर्गत परिपक्व हो रहे हैं, रोकड़ तुल्य के उदाहरण हैं। रोकड़ और रोकड़ तुल्य खातों में शुद्ध वृद्धि/कमी की गणना तुलनात्मक चिट्ठों में प्रदत्त इन खातों की तुलना करके की जाती है।

**(2) परिचालन क्रियाओं द्वारा उपलब्ध या उपयोग की गई शुद्ध रोकड़ की गणना** (Calculation of the Net Cash Provided (used) by Operating Activities) – इसकी गणना लाभ–हानि खाता, तुलनात्मक चिट्ठा और सम्बन्धित अतिरिक्त सूचना का विश्लेषण करके की जाती है। इसकी विस्तृत विवेचना पीछे की जा चुकी है।

**(3) विनियोजन और वित्तीयन क्रियाओं द्वारा उपलब्ध या उपयोग की गई शुद्ध रोकड़ की गणना** (Calculation of the Net Cash Provided (used) by Investing and Financing Activities) – अतिरिक्त सूचनाओं को ध्यान में रखते हुए चिट्ठों की मदों में रोकड़ पर प्रभाव निर्धारित करने के लिये सभी अन्य परिवर्तन विश्लेषित किये जाने चाहिये। रोकड़ पर प्रभाव को विनियोजन और वित्तीय क्रियाओं में वर्गीकृत किया जाना चाहिये।

**(4) रोकड़–प्रवाह विवरण की तैयारी** (Preparation of a Cash Flow Statement) – इसमें परिचालन, विनियोजन एवं वित्तीय क्रियाओं के अलग–अलग शीर्षकों के अन्तर्गत सभी रोकड़ अन्तर्वाहों और बहिर्वाहों (Cash inflows and outflows) को प्रकट किया जाता है तथा प्रत्येक क्रिया द्वारा उपलब्ध या उपयोग किया गया शुद्ध रोकड़ प्रवाह दर्शाया जाता है।

(5) इसके पश्चात यह देख लेना चाहिये कि परिचालन, विनियोजन एवं वित्तीय क्रियाओं से शुद्ध रोकड़ प्रवाहों का योग उपर्युक्त (1) के अन्तर्गत ज्ञात किये गये रोकड़ और रोकड़ तुल्य के खातों में शुद्ध वृद्धि (कमी) के बराबर होना चाहिये।

(6) गैर–रोकड़ और गैर–रोकड़ तुल्य विनियोजन एवं वित्तीयन व्यवहारों को रोकड़–प्रवाह विवरण के पश्चात् अलग अनुसूची में दिखाना चाहिये।

**नोट : संशोधित लेखांकन प्रमाप–3 (AS-3) के अनुसार रोकड़–प्रवाह विवरण के अन्तर्गत करो के लिये आयोजन को एक गैर–चालू मद मानते हुये लाभों के नियोजन के रूप में प्रदर्शित करना चाहिये।**

## रोकड़–प्रवाह विवरण का प्रारूप
## (Format of Cash-Flow Statement)

यद्यपि संशोधित लेखांकन प्रमाप–3 के अन्तर्गत रोकड़–प्रवाह विवरण का कोई निर्धारित प्रारूप नहीं दिया गया है, परन्तु उपर्युक्त विवेचना के आधार पर इसका व्यापक रूप से स्वीकृत प्रारूप निम्नलिखित है –

**Cash Flow Statement**

| | | | |
|---|---|---|---|
| (A) | Cash Flows from Operating Activities : | | Rs. |
| | (Previously explained in detail) | | |
| | Net Cash from (used in) operating activities | | …….. |
| (B) | Cash Flows from Investing Activities : | Rs. | |
| | Sale of fixed Assets | …….. | |
| | Sale of Investments | …….. | |

| | | |
|---|---|---|
| Purchase of Fixed Assets | (.......) | |
| Purchase of Investments | (.......) | |
| Interest received | ......... | |
| Dividend received | ......... | |
| Loans to subsidiaries | (.......) | |
| *Net Cash from (used in) Investing Activities* | | ......... |
| (C) Cash flows from Financing Activities : | | |
| Issue of shares and debentures | ......... | |
| Proceeds from long-term borrowings | ......... | |
| Repayment of long-term borrowings | (.......) | |
| Redemption of preference shares and debentures | (.......) | |
| Devidend paid | (.......) | |
| Interest paid | (.......) | |
| *Net Cash from (used in) Financing Activities* | | ......... |
| Net Increase (decrease) in Cash and Cash Equialents | ......... | |
| (A + B + b) | ......... | |
| Cash and cash equivalents at the beginning of the period | ......... | |
| Cash and cash equivalents at the end of the period. | ......... | |

***Illustration :*** निम्नलिखित सूचना से आपको सरिता कम्पनी लि0 का 31 मार्च, 2007 को समाप्त होने वाले वर्ष के लिये रोकड़ प्रवाह विवरण तैयार करना है –

From the following information, you are required to prepare a cash-flow statement of Sarita Ltd. for the year ended 31st March, 2007 :

| *Liabilities* | 31.03.2006 | 31.03.2007 | *Assets* | 31.03.2006 | 31.03.2007 |
|---|---|---|---|---|---|
| | Rs. | Rs. | | Rs. | Rs. |
| Share Capital | 4,00,000 | 4,80,000 | Fixed Assets | 7,20,000 | 8,80,000 |
| P. & L. A/c | 45,000 | 1,50,000 | Investments | 50,000 | 80,000 |
| Long-term Loans | 3,50,000 | 4,50,000 | Stock | 40,000 | 1,35,000 |
| Creditors | 20,000 | 16,000 | Debtors | 27,000 | 40,000 |
| Bills Payable | 30,000 | 35,000 | Cash | 20,000 | 16,000 |
| Tax Provision | 12,000 | 20,000 | Prepaid | 600 | 800 |
| Outstanding Salary | 600 | 800 | Insurance | | |
| | 8,57,600 | 11,51,800 | | 8,57,600 | 11,51,800 |

**Profit and Loss Account**

*(for the year ended 31st March, 2007)*

| | | Rs. | | Rs. |
|---|---|---|---|---|
| To Opening Stock | | 40,000 | By Sales | 4,60,000 |
| To Purchases | | 3,60,000 | By Closing Stock | 1,35,000 |
| To Gross Profit c/d | | 1,95,000 | | |
| | | 5,95,000 | | 5,95,000 |
| To Salary | 4,000 | | By Gross Profit b/d | 1,95,000 |
| (+) Outstanding | 800 | 4,800 | | |
| To Insurance | 6,000 | | | |
| ( - ) Prepaid | ( - ) 800 | 5,200 | | |

| | | | |
|---|---|---|---|
| To Depreciation | 32,000 | | |
| To Tax Provision | 20,000 | | |
| To Net Profit | 1,33,000 | | |
| | 1,95,000 | | 1,95,000 |
| To Dividend Paid | 28,000 | By Balance b/d | 45,000 |
| To Balance c/d | 1,50,000 | By Net Profit of C.Y. | 1,33,000 |
| | 1,78,000 | | 1,78,000 |

***Solution :*** **Sarita Ltd.**

**Cash Flow Statement for the year ended 31st March, 2004**

*(As per Revised AS-3)*

| | *Particulars* | **Rs.** | **Rs.** |
|---|---|---|---|
| **(A)** | **Cash Flow from Operating Activities :** | | |
| | Net Profit before Taxation | 1,53,000 | |
| | Adjustment for Depreciation | 32,000 | |
| | Operating profit before Working Capital Changes | 1,85,000 | |
| | Increase in Stock (1,35,000 – 40,000) | (95,000) | |
| | Increase in Debtors (40,000 – 27,000) | (13,000) | |
| | Increase in Prepaid Insurance (800 – 600) | (200) | |
| | Increase in Outstanding Salary (800 – 600) | 200 | |
| | Increase in Bills Payable (35,000 – 30,000) | 5,000 | |
| | Increase in Creditors (20,000 – 16,000) | (4,000) | |
| | *Cash generated from Operations* | 78,000 | |
| | ( - ) Tax Paid | 12,000 | |
| | Cash Flow from Operating Activities | | 66,000 |
| **(B)** | **Cash Flow from Investing Activities :** | | |
| | Purchase of Fixed Assets | (1,92,000) | |
| | Purchase of Investments (80,000 – 50,000) | (30,000) | |
| | Cash used in Investing Activities | | (2,22,000) |
| **(C)** | **Cash Flow from Financing Activities :** | | |
| | Issue of Shares (4,80,000 – 4,00,000) | 80,000 | |
| | Receipt of Long-term Loans (4,50,000 – 3,50,000) | 1,00,000 | |
| | Dividend Paid | (28,000) | |
| | Cash flow from Financing Activities | | 1,52,000 |
| | Net Decrease in Cash | | (4,000) |
| | Cash Balance at the Begining of the Period | | 20,000 |
| | Cash Balance at the End of the Period | | 16,000 |

*Working Note :*

**(1) Net Profit before taxation :**

| | Rs. |
|---|---|
| Net Profit after Tax Provision | 1,33,000 |
| (+) Tax Provision | 20,000 |
| Net Profit before Taxation | 1,53,000 |

**(2) Fixed Assets Account**

| | Rs. | | Rs. |
|---|---|---|---|

| | | | |
|---|---|---|---|
| To Balance b/d | 7,20,000 | By Depreciation | 32,000 |
| To Cash A/c (Balancing figure) | 1,92,000 | By Balance c/d | 8,80,000 |
| | 9,12,000 | | 9,12,000 |

**(3) Tax Provision Account**

| | Rs. | | Rs. |
|---|---|---|---|
| To Cash A/c (Balancing figure) | 12,000 | By Balance c/d | 12,000 |
| To Balance c/d | 20,000 | By Profit & Loss A/c | 20,000 |
| | 32,000 | | 32,000 |

**(4)** यह माना गया है कि सरिता कम्पनी लि0 एक गैर वित्तीय उपक्रम है।

# सम–विच्छेद बिन्दु
# (Break-even Point)

## सम–विच्छेद विश्लेषण का अर्थ एवं परिभाषा
## (Meaning and Definition of Break-even Analysis)

व्यवसाय में लाभों को संयोग पर नहीं छोड़ जा सकता, बल्कि इनका उचित नियोजन करना होगा। सम–विच्छेद विश्लेषण लाभ–नियोजन और प्राक्कलन की एक बहुत ही उपयोगी तकनीक है। इसे सीमान्त विश्लेषण अथवा लागत–मात्रा–लाभ विश्लेषण भी कहा जाता है।

सम–विच्छेद विश्लेषण में किसी व्यावसायिक संस्था अथवा उसकी किसी इकाई की विक्रय–मात्रा के सम्बन्ध में उसके आगमों और लागतों का अध्ययन किया जाता है और विभिन्न स्तरों पर लाभ की स्थिति ज्ञात की जाती है। **सर्वश्री मेट्ज, करी और फ्रेन्क** के अनुसार, '' सम–विच्छेद विश्लेषण उस स्तर को प्रकट करता है जिस पर लागत और आगम साम्यावस्था में होते हैं।''

अतः स्पष्ट है कि इस पद्धति में उस विक्रय–मात्रा का निर्धारण किया जाता है जिस पर संस्था के कुल आगम और कुल लागतें एक समान हों। यह मात्रा 'सम–विच्छेद बिन्दु' अथवा 'निर्लाभ बिन्दु' कहलाती है।

## सम–विच्छेद विश्लेषण की मान्यतायें (Assumptions of Break-even Analysis)

सम–विच्छेद विश्लेषण की क्रियाशीलता बहुत–सी मान्यताओं पर आधारित है। ये मान्यतायें निम्नलिखित हैं –

(1) लागत–विचरणता का सिद्धान्त (Principle of Cost Variability) सही है। इस सिद्धान्त के अनुसार एक निश्चित उत्पादन स्तर पर कुछ व्ययों की कुल राशि स्थिर रहती है और कुछ व्यय उत्पादन इकाई के अनुसार बदलते रहते हैं।

(2) सभी लागतें (उत्पादन, विक्रय और प्रशासन) 'स्थिर व परिवर्तनशील' दो भागों में विभाजित की जा सकती हैं।

(3) लागतों का व्यवहार रेखीय (Linear) होता है अर्थात् लागत समंकों को रेखाचित्र पर प्रदर्शित करने पर एक सीधी रेखा बनेगी।

(4) प्रत्येक उत्पादन स्तर पर स्थिर व्ययों की कुल राशि एक समान रहती है और परिवर्तनशील लागतें उत्पादन मात्रा के अनुपात में परिवर्तित होती हैं।

(5) प्रत्येक विक्रय स्तर पर वस्तु का विक्रय मूल्य एक समान रहता है अर्थात् वस्तु की पूर्ति के घटने–बढ़ने पर बाजार में विक्रय मूल्य में कोई परिवर्तन नहीं होता है।

(6) सामग्री, मजदूरी, किराया, विज्ञापन आदि आदान (Input) कारकों के मूल्य में कोई परिवर्तन नहीं होता है।

(7) तकनीकी पद्धतियों तथा मनुष्यों और मशीनों की कुशलता में कोई परिवर्तन नहीं होता है।

(8) संस्था में लागत नियन्त्रण न तो और पुष्ट किया जाता है और न उसमें कोई शिथिलता ही आती है।

(9) उत्पादन और विक्रय समसामयिक (Synchronized) होते हैं अर्थात् जो भी उत्पादन होता है वह साथ–साथ बिकता रहता है और अन्तिम स्कन्ध में कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं होते हैं।

(10) संस्था में या तो केवल एक ही वस्तु का उत्पादन व विक्रय होता है, या एक से अधिक वस्तुओं के उत्पादन होने पर उनका विक्रय मिश्रण एक समान रहता है अर्थात् सभी वस्तुओं का विक्रय एक पूर्व निर्धारित अनुपात में किया जाता है।

(11) आगम और लागतों की तुलना किसी समान क्रियाशीलता के आधार पर (जैसे उत्पादन का विक्रय मूल्य या उत्पादित इकाइयों के आधार पर) की जाती है।

(12) उत्पादन या विक्रय मात्रा को ही लागत प्रभावित करने वाला समबद्ध कारक माना जाता है।

सम–विच्छेद विश्लेषण के आधार पर निकाले गये निष्कर्षों का निर्वचन उपर्युक्त मान्यताओं को ध्यान में रखते हुये ही करना चाहिये। इनमें से किसी एक में भी परिवर्तन होने पर सम–विच्छेद बिन्दु में परिवर्तन हो सकता है।

**सम–विच्छेद विश्लेषण की सीमायें (Limitations of Break-even Analysis)**

सम–विच्छेद विश्लेषण भी बहुत–सी अवास्तविक मान्यताओं पर आधारित है जिसके कारण इसकी प्रबन्धकीय उपयोगिता सीमित हो जाती है। वास्तव में इसकी सीमायें इसकी अवास्तविक मान्यताओं के कारण हैं। इसकी प्रमुख सीमायें निम्नलिखित हैं –

(1) सम–विच्छेद विश्लेषण में विक्रय मात्रा के अतिरिक्त अन्य सभी कारकों को स्थिर और असम्बद्ध मान लिया जाता है। वास्तव में ये कारक दीर्घकाल तक स्थिर नहीं रहते हैं। सांख्यिकीय पद्धतियों के प्रयोग से भी इन कारकों के प्रभावों को पूर्णतया दूर करना कठिन है।

(2) सम–विच्छेद विश्लेषण में यह मान्यता रहती है कि सभी लागतों के स्थिर और परिवर्तनशील भागों को पृथक–पृथक किया जा सकता है, किन्तु व्यवहार में यह मान्यता सही नहीं निकलती। वास्तव में बहुत सी लागतों के स्थिर और परिवर्तनशील भागों का सूक्ष्म पृथक्करण सम्भव नहीं होता है।

(3) लागत व्यवहार के समंक क्रियाओं के एक सीमित क्षेत्र तक ही सही होते हैं। इस संकीर्ण क्षेत्र के ऊपर या नीचे लागत व्यवहार की शैलियाँ (Patterns) ही बदल जाती हैं और लागत व्यवहार रेखीय नहीं रह पाता है। जैसे किसी कारखाने को अल्पकाल के लिये बन्द कर देने पर प्रबन्ध कुछ स्थिर व्ययों में कमी करने में सफल हो सकता है। इसी तरह परिवर्तनशील लागतों को उत्पादन मात्रा के अनुपात में परिवर्तनीय माना जाता है, परन्तु व्यवहार में उत्पादन मात्रा के अनुकूलतम बिन्दु तक बढ़ाने पर प्रति इकाई परिवर्तनशील लागत घटती है और इस बिन्दु के पश्चात् यह बढ़ने लगती है। इसी तरह कुल आगम रेखा का एक सीधी रेखा के रूप में होना भी आवश्यक नहीं होता।

(4) तीसरे नम्बर के कारण यह मान्यता भी गलत सिद्ध होती है कि अधिकतम उत्पादन स्तर पर ही अधिकतम लाभ होंगे। परन्तु वास्तव में लाभों को अधिकतम करने के लिये अनुकूलतम उत्पादन का ज्ञात करना आवश्यक होता है।

(5) पूर्ण प्रतियोगिता की अवास्तविक मान्यता के अतिरिक्त व्यावहारिक जीवन में वस्तु के मूल्य का असीमित विक्रय मात्रा के क्षेत्र के लिये स्थिर मानना अवास्तविक है। व्यवहार में उत्पादन मात्रा के बढ़ने पर विक्रय मूल्य में गिरावट आती है।

(6) उत्पादन और विक्रय मात्रा के समसामयिक होने की मान्यता अव्यावहारिक है। वास्तव में एक बड़े व्यवसाय में किसी एक निश्चित समय में उत्पादन और विक्रय की मात्रा पूर्णतया समान नहीं रहती है। अतः अन्तिम स्कन्ध में उच्चावचन भी स्वाभाविक है। इससे सम–विच्छेद विश्लेषण भ्रामक परिणाम दे सकता है।

(7) इसी तरह विक्रय–मिश्रण के स्थिर रहने की मान्यता भी अव्यावहारिक है। बाजार में किसी एक वस्तु की माँग में परिवर्तन हो जाने पर विक्रय मिश्रण पूर्व निर्धारित मिश्रण से भिन्न हो जाता है।

(8) यह विश्लेषण प्रयुक्त पूँजी (Capital employed) पर ध्यान नहीं देता जो कि प्रबन्धकीय निर्णय में एक महत्वपूर्ण कारक होता है।

(9) सभी लागतों को स्थिर व परिवर्तनशील भागों में विभाजित करना कठिन होता है।

(10) सम–विच्छेद विश्लेषण का स्वरूप स्थैतिक (static) है। यह अपेक्षाकृत स्थिर दशाओं में अधिक उपयोगी रहता है। अतः लागत और आगम की परिवर्तित दशाओं में यह बहुत कम उपयोगी होता है।

(11) सम–विच्छेद विश्लेषण दीर्घकालीन उपयोग के लिये प्रभावशाली तकनीक नहीं है। अतः इसका उपयोग केवल अल्पकाल (1 वर्ष) तक ही सीमित रहना चाहिये।

(12) सम–विच्छेद विश्लेषण में विक्रय लागतों का संचालन करना (handle) विशेष कठिन होता है क्योंकि ये लागतें उत्पादन और विक्रयों में परिवर्तन का परिणाम न होकर कारण होती है। इसके अतिरिक्त उत्पादन और विक्रय लागतों के बीच सम्बन्ध लम्बे समय तक स्थिर नहीं रहता। इसलिये भूतकालीन सम्बन्धों के आधार पर इनकी भविष्यवाणी अशुद्ध साबित हो सकती है।

अतः स्पष्ट है कि सम–विच्छेद विश्लेषण की युक्ति का प्रयोग बहुत ही सावधानीपूर्वक करना चाहिये और उसमें परिवर्तित परिस्थितियों के अनुसार आवश्यक परिवर्तन करते रहना चाहिये। इस युक्ति का कुशल प्रयोग केवल वे ही व्यक्ति कर सकते हैं जो कि इसकी सीमाओं को भली प्रकार समझते हैं।

**सम–विच्छेद बिन्दु का अर्थ व परिभाषा (Break-even Point – Meaning & Definition)**

सम–विच्छेद बिन्दु की गणना सम–विच्छेद विश्लेषण की आधारशिला है।

**जी.आर. क्राउनिंगशील्ड** के शब्दों में, ''सम–विच्छेद बिन्दु वह बिन्दु होता है जिस पर विक्रय आगम वस्तु के बनाने और बेचने की लागत के बराबर हो और कोई लाभ अथवा हानि न हो।''

**सर्वश्री केलर और फरेरा** के शब्दों में, ''किसी कम्पनी या कम्पनी की किसी इकाई का सम–विच्छेद बिन्दु विक्रय आय का वह स्तर है जोकि उसकी स्थिर और परिवर्तनशील लागतों के बराबर हो।''

**चार्ल्स टी. हॉर्नग्रेन** के शब्दों में, ''सम–विच्छेद बिन्दु क्रियाशीलता (विक्रय–मात्रा) का वह बिन्दु है जहाँ कुल आगम और कुल व्यय बराबर हों, यह शून्य लाभ और शून्य–हानि का बिन्दु होता है।''

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि सम–विच्छेद बिन्दु का आशय उत्पादन व विक्रय मात्रा के उस बिन्दु से होता है जिस पर व्यवसाय के कुल आगम और कुल लागत एक समान हों और

शुद्ध लाभ शून्य हों। इस बिन्दु को "no-profit, no-loss point" भी कहा जाता है। उत्पादन व विक्रय मा़त्रा का इस बिन्दु से कम होने पर व्यवसाय को हानि होती है। व्यवसाय में लाभ तभी होंगे, जबकि यह मात्रा इस बिन्दु से अधिक हो और यह मात्रा सम–विच्छेद बिन्दु से जितनी अधिक होगी, व्यवसाय उतना ही अधिक सुदृढ़ और लाभप्रद होगा। यही कारण है कि व्यवसायी अपनी व्यवसाय के उत्पाद व विक्रय में निरन्तर वृद्धि के लिये प्रयत्नशील रहते हैं।

**सम–विच्छेद बिन्दु का निर्धारण (Determination of Break-even Point)**

सम–विच्छेद विश्लेषण के अन्तर्गत सम–विच्छेद बिन्दु की गणना की जाती है। इसकी गणना की दो तकनीकें हैं –

(1) **समीकरण तकनीक** (Equation Technique) – इसमें निम्न समीकरणों का प्रयोग किया जाता है –

(अ) **मूल्यों में सम–विच्छेद बिन्दु** (B.E.P. in Values) – जैसा कि पहले ही बतलाया जा चुका है कि सम–विच्छेद बिन्दु पर कुल विक्रय आगम और कुल लागत बराबर होते हैं। अतः सूत्र रूप में –

Sales Revenue at B.E.P. = Fixed Costs + Total Variable Costs

$$S = F + V$$

(ब) **इकाइयों में सम–विच्छेद बिन्दु** (B.E.P. in Units) – चूँकि कुल विक्रय आगम बेची गयी वस्तुओं की मात्रा और प्रति इकाई मूल्य का गुणनफल होता है, अतः उपर्युक्त समीकरण से इकाइयों में सम–विच्छेद बिन्दु की गणना के लिये निम्न सूत्र का प्रयोग किया जायेगा –

$$PQ = F + VQ$$

when, P = Selling Price per unit
Q = Quantity of goods sold
F = Fixed Cost
V = Variable Cost per unit

(2) **अंशदान तकनीक** (Contribution Technique) – वस्तु के विक्रय मूल्य और उसकी परिवर्तनशील लागत का अन्तर अंशदान कहलाता है। सूत्र रूप में –

(i) Total Contribution = Total Sales – Total Variable Cost
(ii) Total Contribution = Fixed Costs + Profit
(iii) Contribution per unit = Selling Price p.u. – Variable Cost p.u.

सम–विच्छेद विश्लेषण में अंशदान के इन अंकों का बहुत महत्व होता है। इस तकनीक के अन्तर्गत अंशदान के अंकों का प्रयोग करके सम–विच्छेद बिन्दु की गणना की जाती है। गणना के लिये प्रमुखतया निम्नलिखित सूत्रों का प्रयोग किया जाता है –

(अ) **इकाइयों में सम–विच्छेद बिन्दु** (B.E.P. in Units) – एक ही वस्तु बनाने वाली फर्मों के लिये सम–विच्छेद बिन्दु को इकाइयों में ज्ञात करना अच्छा रहता है। इसकी गणना के लिये निम्न सूत्र का प्रयोग किया जाता है –

$$B.E.P. = \frac{\text{Fixed Costs}}{\text{Selling Price p.u.} - \text{Variable Costs p.u.}} \text{ or } \frac{F}{P - V}$$

$$\text{or } \frac{\text{Fixed Costs}}{\text{Contribution per unit}} \text{ or } \frac{F}{C}$$

(ब) **मूल्यों में सम–विच्छेद बिन्दु** (B.E.P. in Values) – बुहत–सी वस्तुयें बनाने वाली फर्मों के लिये सम–विच्छेद बिन्दु को मूल्यों अर्थात् कुल रुपयों में निकालना ही अच्छा रहता है। इसकी गणना के लिये निम्न में से किसी भी सूत्र का प्रयोग किया जा सकता है –

(1) जब प्रति इकाई विक्रय मूल्य और प्रति इकाई परिवर्तनशील व्यय के अंक दिये हों–

$$\text{B.E.P.} = \frac{\text{Fixed Costs} \times \text{Selling Price per unit}}{\text{Selling Price p.u.} - \text{Variable Costs p.u.}} = \frac{F \times P}{P - V} \text{ or } \frac{F}{1 - V/P}$$

**सम–विच्छेद बिन्दु पूर्ण क्षमता के प्रतिशत के रूप में**

सम–विच्छेद बिन्दु को पूर्ण क्षमता के प्रतिशत के रूप में भी व्यक्त किया जाता है। इसके लिये निम्न सूत्र का प्रयोग किया जाता है –

$$\text{Break} - \text{even point as a percentage of full capacity (or Capicity B.E.P.)}$$

$$= \frac{\text{Break} - \text{even Sales Volume}}{\text{Full(or normal) Capacity Sales Volume}} \times 100$$

$$\text{Break} - \text{even Ratio} = \frac{\text{Break} - \text{even Sales(in Rs.)}}{\text{Actual Sales}} \times 100$$

**स्टॉक में परिवर्तन और सम–विच्छेद बिन्दु (Inventory Changes and Break-even Point)**

अधिकांश दशाओं में फर्म के स्टाक में परिवर्तन नगण्य होते हैं, अतः सम–विच्छेद बिन्दु की गणना में इन परिवर्तनों पर ध्यान नहीं दिया जाता है। किन्तु यदि ये परिवर्तन महत्वपूर्ण हों तो इनका ध्यान रखना आवश्यक हो जाता है। ध्यान रहे कि स्टाक में वृद्धि या कमी होने से स्थिर लागत में वृद्धि या कमी आती है। इस स्थिति में सम–विच्छेद बिन्दु की गणना निम्न में से किसी भी एक रूप में की जा सकती है –

(1) स्टाक परिवर्तन पर ध्यान न देकर सम–विच्छेद बिन्दु की गणना करना।

(2) स्टाक परिवर्तन के आधार पर स्थिर लागत की राशि में समायोजन करके सम–विच्छेद बिन्दु की गणना करना।

**अन्य प्रकार के सम–विच्छेद बिन्दु (Other Types of Break-even Point)**

उपर्युक्त जिस प्रकार के सम–विच्छेद बिन्दु का विवेचन दिया गया है वह लाभ–हानि सम–विच्छेद बिन्दु (Profit-Loss Break-even Point) कहलाता है, क्योंकि इसमें सम–विच्छेद बिन्दु पर न कोई लाभ होता है और न ही कोई हानि। सम–विच्छेद बिन्दु के इसके अलावा निम्नलिखित दो रूप और हैं :

(अ) **रोकड़ सम–विच्छेद बिन्दु (Cash Break-even Point)** – यह उत्पादन/विक्रय का वह बिन्दु होता है जिस पर फर्म की रोकड़ प्राप्तियाँ और रोकड़ लागत बराबर हों। स्पष्ट है कि इसमें केवल उन्हीं मदों पर ध्यान दिया जाता है जिनसे रोकड़ बहाव होता है। परिणामस्वरूप ह्रास, विकास छूट आदि गैर–रोकड़ व्यय लागत में नहीं सम्मिलित किये जाते हैं जबकि ऋण भुगतान की किस्त जैसी गैर–लागत मदें लागतों में सम्मिलित की जाती है। इसकी गणना के लिये निम्न सूत्रों का प्रयोग किया जाता है –

$$\text{Cash B.E.P.} = \frac{\text{Cash Fixed Costs} + \text{Loan Instalment}}{\text{Contribution per unit}}$$

(ब) **आय सम–विच्छेद बिन्दु (Income B.E.P.)** – यह वह बिन्दु होता है जिस पर सम्पूर्ण लागतों के साथ–साथ एक निश्चित लाभांश की भी वापसी हो जाये। इसकी गणना के लिये निम्न सूत्र का प्रयोग किया जाता है :

$$\text{Income B.E.P.} = \frac{\text{Cash Fixed Costs} + \text{Loan Instalment} + \text{Cash Earings required for dividend}}{\text{Contribution per unit}}$$

**सुरक्षा–सीमा अथवा सुरक्षा–उपान्त (Margin of Safety)**

सम–विच्छेद विश्लेषण में सुरक्षा–सीमा का विचार बहुत महत्वपूर्ण होता है। **चार्ल्स टी. हॉर्नग्रेन** के शब्दों में ''बजटीय या वास्तविक विक्रय का सम–विच्छेद विक्रय मात्रा पर आधिक्य सुरक्षा–सीमा कहलाता है।'' दूसरे शब्दों में, कुल विक्रय और सम–विच्छेद बिन्दु पर स्थित विक्रय का अन्तर सुरक्षा–सीमा होता है। सूत्र रूप में –

Margin of Safety = Actual Sales Volume – Break-even Sales Volume

लाभ की राशि और लाभ–मात्रा अनुपात के ज्ञात होने पर सुरक्षा–सीमा को निम्न सूत्र से भी ज्ञात किया जा सकता है –

$$\text{Margin of Safety} = \frac{\text{Profit}}{\text{P/V Ratio}} \text{ or } \frac{\text{Profit} \times \text{Sales}}{\text{Contribution}} \text{ or } \frac{\text{Profit Percentage}}{\text{P/V Ratio}} \times 100$$

सुरक्षा–सीमा को कुल विक्रय के प्रतिशत के रूप में भी व्यक्त किया जाता है। सूत्र रूप में –

$$\text{Margin of Safety} = \frac{\text{Actual Sales} - \text{Break-even Sales}}{\text{Actual Sales}} \times 100$$

सुरक्षा–सीमा को सम–विच्छेद चार्ट और लाभ–मात्रा ग्राफ पर भी दर्शाया जा सकता है।

**सुरक्षा–सीमा का महत्व –**

सुरक्षा–सीमा का आकार व्यापार की शक्ति का माप करने के लिये एक अत्यधिक महत्वपूर्ण सूचक है। यह आकार जितना अधिक होगा, व्यवसाय में हानि की सम्भावनायें उतनी ही दूर होंगी अर्थात् यदि सुरक्षा–सीमा पर्याप्त है तो इसका आशय यह होता है कि विक्रय में पर्याप्त कमी होने पर भी व्यवसाय में लाभ बने रहेंगे। दूसरी ओर यदि सुरक्षा–सीमा का आकार बहुत कम है तो विक्रय में थोड़ी सी कमी होने पर ही व्यवसाय में हानि होने लगेगी। इसके कम होने का सामान्य कारण स्थिर व्ययों की अधिकता है। अतः ऐसे व्यवसायों में क्रियाशीलता का उच्च स्तर आवश्यक होता है।

सामान्यतया जिस व्यवसाय में सुरक्षा–सीमा जितनी अधिक होगी, वह व्यवसाय उतना ही अधिक सुदृढ़ माना जाता है और व्यवसाय में लाभार्जन के अवसर भी उतने ही अधिक होते हैं। यदि किसी व्यवसाय की सुरक्षा–सीमा में कमी होती जा रही है तो व्यवसाय के लिये वह एक चिन्ताजनक विषय हो जाता है। यदि यह असन्तोषजनक है तो इसे सुधारने के लिये निम्नलिखित उपाय किये जा सकते हैं –

(1) विक्रय मूल्य में वृद्धि करना।
(2) स्थिर लागतों में कमी करना।
(3) परिवर्तनशील लागतों में कमी करना।
(4) उत्पादन मात्रा में वृद्धि करना।
(5) अलाभकारी वस्तुओं का उत्पादन बन्द करके केवल लाभकारी वस्तुओं के उत्पादन पर ही ध्यान केन्द्रित करना है।

### सम–विच्छेद चार्ट (Break-Even Chart)

सामान्यता सम–विच्छेद विश्लेषण का चित्रमय प्रदर्शन किया जाता है। इससे प्रबन्ध स्थिति का एक नजर से मूल्यांकन कर सकता है। सम–विच्छेद चार्ट विभिन्न उत्पादन या विक्रय स्तरों पर संस्था की लाभ–हानि की स्थिति पर लागतों और आगम का प्रभाव प्रदर्शित करता है। **सर्वश्री मेंट्ज, करी और फ्रेन्क** के शब्दों में, ''सम–विच्छेद चार्ट को उत्पादन और बिक्री का लाभ से सम्बन्ध का ग्राफीय रूप में विश्लेषण कहा जा सकता है।'' **J. Batty** के अनुसार सम–विच्छेद चार्ट वह चार्ट या रेखाचित्र होता है जो कि निम्नलिखित को दर्शाता है –

(1) विभिन्न उत्पादन स्तरों पर सम्भाव्य लाभ या हानियाँ।
(2) सीमान्त (या परिवर्तनशील) लागतों और स्थिर लागतों के बीच सम्बन्ध।
(3) सुरक्षा–सीमा।
(4) उत्पादन की एक निश्चित इकाई पर लाभार्जन में वृद्धि की दर, जैसे प्रति 100 रु. पर लाभ में वृद्धि की दर क्या होगी।
(5) सम–विच्छेद बिन्दु।
(6) इस चार्ट पर अंशदान और लाभ–मात्रा सम्बन्ध भी दिखलाया जा सकता है।

**सम–विच्छेद चार्ट का बनाना (Contruction of a Break-Even Chart)**

इसको तैयार करने की विधि संक्षेप में इस प्रकार है –

(1) सम–विच्छेद चार्ट में क्षैतिज रेखा (भुजाक्ष या X–अक्ष) पर विक्रय अथवा उत्पादन क्षमता प्रदर्शित की जाती है। अतः इस रेखा पर इन अंकों के दर्शाने के लिए उपयुक्त पैमाने का चयन करना चाहिये।

(2) चार्ट में लम्बवत् रेखा (कोटि–अक्ष या Y–अक्ष) पर लागतों और आगम के समंक प्रदर्शित किये जाते हैं। अतः इस प्रदर्शन के लिये उपयुक्त पैमाने का चयन करना चाहिये।

(3) क्षैतिज रेखा के समानान्तर 'स्थिर लागत रेखा' खींचनी चाहिये।

(4) लम्बवत् रेखा पर स्थिर लागतों के प्रारम्भिक बिन्दु से ऊपर की ओर परिवर्तनशील लागतें दिखलायी जाती है। यह ध्यान रखना चाहिये कि सामान्य सम–विच्छेद चार्ट पर परिवर्तनशील लागत रेखा नहीं दिखलायी जाती है। स्थिर व्ययों के ऊपर परिवर्तनशील लागतों को प्रदर्शित करने वाली रेखा 'कुल लागत रेखा' कहलाती है तथा कुल लागत रेखा और स्थिर लागत रेखा के बीच लम्बवत् दूसरी परिवर्तनशील लागत प्रदर्शित करती है।

(5) मूल बिन्दु या शून्य से प्रारम्भ कर अधिकतम विक्रय बिन्दु पर समाप्त करते हुये 'विक्रय रेखा' या 'कुल आगम रेखा' खींचनी चाहिये।

विक्रय रेखा कुल लागत रेखा को जिस बिन्दु पर काटती है, वह बिन्दु सम–विच्छेद बिन्दु कहलाता है। इस बिन्दु के बायीं ओर कुल लागत रेखा और विक्रय रेखा के बीच फैलाव (space) हानि–क्षेत्र कहलाता है। इसी तरह बिन्दु के दायीं ओर विक्रय रेखा और कुल लागत रेखा के बीच फैलाव लाभ–क्षेत्र कहलाता है। कुल विक्रय और सम–विच्छेद बिन्दु पर स्थित विक्रय का अन्तर सुरक्षा–सीमा कहलाता है।

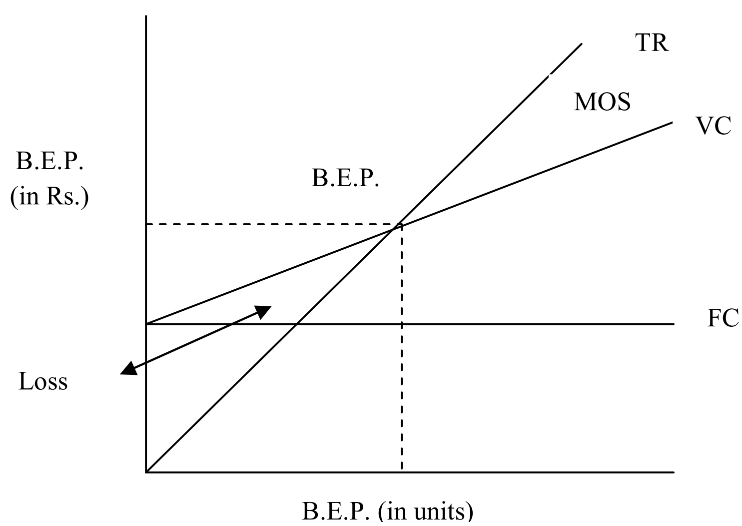


**आपतन का कोण (Angle of Incidence) -**

यह विक्रय रेखा और कुल लागत रेखा के बीच प्रतिच्छेदन का कोण होता है। वास्तव में आपतन के कोण दो होते हैं – (i) सम–विच्छेद बिन्दु के दाहिनी ओर बना कोण तथा (ii) सम–विच्छेद बिन्दु के बायीं ओर बना कोण। पहला वाला कोण सम–विच्छेद बिन्दु के बाद लाभ–क्षेत्र बतलाता है जबकि बाद वाला कोण सम–विच्छेद बिन्दु से पूर्व हानि–क्षेत्र इंगित करता है। आपतन के कोण का आकार फर्म द्वारा विभिन्न उत्पादन–मात्रा/बिक्री के स्तरों पर फर्म के लाभ अथवा हानि की दर बतलाता है। यह कोण जितना बड़ा होगा, लाभ की दर उतनी ही अधिक होगी। प्रबन्ध का लक्ष्य यथा सम्भव इस कोण को बड़ा करना होगा। यह कोण यह भी बतलाता है कि लाभ का इच्छित स्तर पर प्राप्त करने के लिये उत्पादन–मात्रा और विक्रय मूल्य में किस सीमा तक परिवर्तन किये जाने चाहिये। यह क्रियाशीलता के विभिन्न स्तरों के अन्तर्गत तथा विभिन्न उत्पाद–मिश्रणों के लिये भी लाभप्रदता की सरल एवं स्पष्ट जानकारी प्रदान करता है तथा यह बिना किसी प्रकार की

गणना किये लाभार्जन क्षमता ज्ञात करने का सरल दृश्य साधन (visual aid) है। सामान्यता फर्म की सुदृढ़ता के आकलन के लिये सुरक्षा–सीमा और आपतन के कोण पर सम्मिलित रूप से विचार किया जाता है। वृहत् आपतन कोण के साथ उच्च सुरक्षा–सीमा फर्म की सर्वाधिक अनुकूल स्थिति दर्शाता है तथा निम्न आपतन कोण के साथ निम्न सुरक्षा–सीमा फर्म की बुरी वित्तीय आकृति की ओर इंगित करता है। निम्न कोण यह भी बतलाता है कि परिवर्तनशील लागत विक्रय की लागत का एक बढ़ा भाग है। अतः विक्रय की लागत में परिवर्तनशील लागतों का भाग जितना कम होगा, आपतन का कोण उतना ही वृहत् होगा।

**सम–विच्छेद चार्ट पर उत्पादन क्षमता/विक्रय की मात्रा का प्रदर्शन**

सम–विच्छेद चार्ट पर उत्पादन क्षमता/विक्रय की मात्रा को तीन प्रकार से प्रदर्शित किया जा सकता है – (1) मूल्यों में, (2) इकाइयों में, अथवा (3) क्षमता प्रतिशत के रूप में। इनमें से कौन–सा आधार चुना जाये, यह चार्ट के उद्देश्य (समस्या के हल के लिए आवश्यक सूचना) पर निर्भर करता है। सामान्यतया विक्रय आधार चुना जाता है तथा इसे मौद्रिक रूप में व्यक्त किया जाता है।

(1) **उत्पादन/विक्रय–मात्रा के रुपयों में दिये होने पर (When production/sales volume is given in rupees)** – इस स्थिति में सम–विच्छेद चार्ट बनाते समय यह ध्यान रखना चाहिये कि X–अक्ष पर विक्रय/उत्पादन मात्रा और Y–अक्ष पर लागतों व आगम दोनों में समान पैमाने लिये जायें अर्थात् X–अक्ष पर एक इंच (अथवा 10 सेन्टीमीटर) जितने रुपयों के बराबर माना है, Y–अक्ष पर भी उसे उतने ही रुपयों के बराबर माना जाये।

(2) **उत्पादन/विक्रय–मात्रा के इकाइयों में दिये होने पर (When production/sales volume is given in units)** – इस स्थिति में X–अक्ष और Y–अक्ष पर पैमाने एक–दूसरे से पूर्णतया स्वतन्त्र रहते हैं।

(3) **उत्पादन/विक्रय–मात्रा के क्षमता प्रतिशत में दिये होने पर** – इस स्थिति में X–अक्ष पर उत्पादन/विक्रय मात्रा के क्षमता प्रतिशत दिखलाते हैं तथा Y–अक्ष पर आगम व लागत दिखलाते हैं।

**सम–विच्छेद चार्ट की सीमायें (Limitations of B.E. Chart) -**

सम–विच्छेद चार्ट प्रबन्ध के लिये लागत–मात्रा समस्याओं पर निर्णय लेने के लिये एक अच्छे निर्देशक का कार्य करता है परन्तु इसकी उपयोगिता सीमा रहित नहीं है। यद्यपि सम–विच्छेद चार्ट में विभिन्न प्रकार के सुधार कर इसकी कुछ कमियों को दूर किया जा सकता है फिर भी कुछ कमियाँ मौलिक हैं जोकि इस चार्ट में विद्यमान रहती हैं। अतः प्रबन्ध को इसकी सीमाओं को ध्यान में रखते हुए इस यन्त्र का प्रयोग करना चाहिये। सम–विच्छेद चार्ट की प्रमुख सीमायें निम्नलिखित हैं –

(1) कुल लागत रेखा एक सीधी रेखा के रूप में अंकित नहीं की जानी चाहिये क्योंकि व्यवहार में कुल लागत उत्पादन मात्रा के समान अनुपात में नहीं परिवर्तित होती है।

(2) इसी तरह कुल आगम रेखा भी एक सीधा रेखा के रूप में नहीं अंकित की जानी चाहिये क्योंकि विक्रय मात्रा के बढ़ने पर वस्तु के मूल्य में कमी करना आवश्यक हो सकता है। ऐसी स्थिति में विक्रय रेखा का व्यवहार रेखीय नहीं रह सकता।

(3) उपरोक्त (1) और (2) के कारण यह धारणा भी गलत है कि उत्पादन की अधिकतम मात्रा पर लाभ भी अधिकतम ही होंगे। उत्पादन व विक्रय में वृद्धि होने पर कुल लागत रेखा का झुकाव ऊपर की ओर हो जाता है और आगम रेखा का झुकाव नीचे

की ओर हो जाता है। ऐसी स्थिति में सम–विच्छेद चार्ट पर एक से अधिक सम–विच्छेद बिन्दु बन सकते हैं।

(4) सम–विच्छेद चार्ट व्यावसायिक क्रियाओं की स्थैतिक स्थिति को दर्शाता है। अतः व्यावसायिक क्रियाओं में परिवर्तन हो जाने पर चार्ट के अप्रचलित हो जाने का भय रहता है।

(5) यदि व्यवसाय में एक से अधिक वस्तुओं का उत्पादन व विक्रय किया जाता है तो निम्नलिखित समस्यायें और आ जाती हैं –

(अ) यदि विभिन्न वस्तुओं की लाभ–सीमा में भिन्नता है तो पूरे व्यवसाय के लिये लागत व आय की स्थिति को प्रकट करने वाला सम–विच्छेद चार्ट किसी भी वस्तु का सही प्रतिनिधित्व नहीं कर सकता। वास्तव में विक्रय मिश्रण में परिवर्तन हो जाने पर तो उस चार्ट का महत्व ही समाप्त हो जाता है। इस समस्या के निराकरण के लिये प्रत्येक वस्तु के लिये पृथक्–पृथक् चार्ट तैयार किये जा सकते हैं।

(ब) यदि विभिन्न वस्तुओं की मात्रा को प्रकट करने के लिये विभिन्न इकाइयों का प्रयोग किया जाता है तो X–अक्ष पर सभी वस्तुओं के लिये विक्रय की मात्रा इकाई के रूप में नहीं प्रदर्शित की जा सकती है। इस समस्या के निराकरण के लिये विक्रय की मात्रा को मौद्रिक रूप में व्यक्त किया जा सकता है।

(स) बहुत सी परिवर्तनशील लागतें अनेक वस्तुओं के लिये सामूहिक रूप से की जाती हैं। ऐसी स्थिति में प्रत्येक वस्तु की लागत ज्ञात करना एक जटिल कार्य हो जाता है। जब वस्तु की सीमान्त लागत ही नहीं ज्ञात की जा सकती है तो सम–विच्छेद चार्ट बनाना सम्भव नहीं होता है।

(द) सम–विच्छेद चार्ट लाभ पर विभिन्न उत्पाद मिश्रणों के प्रभाव दर्शाने में असफल हैं।

(6) सम–विच्छेद चार्ट के तैयार करने में प्रयुक्त पूँजी (capital employed) पर ध्यान नहीं रखा जाता है जो कि एक महत्वपूर्ण कारक हो सकता है। जैसे यदि परिवर्तनशील व्ययों में कमी का कारण नयी मशीन का संस्थापन हो तो ऐसी स्थिति में उस मशीन से प्राप्त आय के प्रभाव को इस चार्ट पर नहीं प्रकट किया जा सकता है।

(7) यह तर्क दिया जाता है कि लागत मात्रा लाभ सम्बन्ध के फलस्वरूप परिणामों का एक सरल सारणीयन से भी काम चलाया जा सकता है, अतः सम–विच्छेद चार्ट बनाने की कोई आवश्यकता नहीं। किन्तु यह चार्ट सही नहीं है क्योंकि बहुत बड़े आंकड़ों का बिन्दुरेखीय प्रदर्शन मानव मस्तिष्क द्वारा एक नजर में सरलता से समझ लिया जाता है।

(8) ध्यान रहे कि सम–विच्छेद चार्ट किसी संस्था को वास्तविक लागत और लाभ संरचना का सन्निकटीकरण है। इसे न लाभ, न हानि के उत्पादन के सूक्ष्म स्तर इंकित करने वाला सूक्ष्म उपकरण नहीं समझना चाहिये।

**सम–विच्छेद चार्ट के विभिन्न रूप (Different Types of B.E. Chart) -**

सम–विच्छेद चार्ट समस्या विशेष के अनुरूप उचित होना चाहिये। विभिन्न प्रकार की समस्याओं के लिये सम–विच्छेद चार्ट के निम्नलिखित रूप हो सकते हैं –

(1) **अंशदान सम–विच्छेद चार्ट (Contribution Break-even Chart)** – क्रियाशीलता के विभिन्न स्तरों पर अंशदान की मात्रा प्रदर्शित करने के लिए अंशदान चार्ट बनाया

जाता है। इस चार्ट में X–अक्ष पर पहले परिवर्तनशील लागतें दिखलाई जाती हैं और फिर परिवर्तनशील लागत रेखा के समानान्तर स्थिर लागतें दिखलाई जाती हैं। शेष विधि साधारण चार्ट की भाँति ही है।

(2) **लाभ विनियोजन सम–विच्छेद चार्ट (Break-even Chart showing profit appropriations)** – यह चार्ट लाभों के विनियोजन को रेखाचित्र पर प्रदर्शित करने के लिये बनाया जाता है। इसके बनाने की विधि साधारण सम–विच्छेद चार्ट की तरह ही है। अन्तर केवल इतना है कि इस चार्ट पर लाभों के विभिन्न मदों पर विभाजन की सूचनायें और प्रदर्शित की जाती है।

(3) **रोकड़ सम–विच्छेद चार्ट (Cash Break-even Chart)** – यह चार्ट उस बिन्दु को प्रदर्शित करता है जिस पर रोकड़ अन्तर्वाह (Cash inflow) और रोकड़ बहिर्वाह (Cash outflow) एक समान हों। यह चार्ट प्रबन्ध को विभिन्न स्तरों पर रोकड़ की आवश्यकता या बाहुल्यता प्रदर्शित करता है। इस चार्ट के बनाने के लिये सभी लागतों को दो भागों में विभाजित किया जाता है – (1) ऐसी लागतें जिनका तुरन्त नकद भुगतान करना होता है और (2) ऐसी लागतें जिनका भुगतान नहीं करना होता है (जैसे ह्रास) या जिनका भुगतान स्थगित किया जा सकता है। जिस बिन्दु पर रोकड़ भुगतान चाहने वाली लागतें (out of pocket costs) विक्रय आगम के बराबर हों, वह बिन्दु रोकड़ सम–विच्छेद बिन्दु कहलाता है।

(4) **नियन्त्रण सम–विच्छेद चार्ट (Control Break-even Chart)** – बजटीय और वास्तविक लाभों, सम–विच्छेद बिन्दुओं और विक्रयों की तुलना करने के लिये नियन्त्रण चार्ट बहुत उपयोगी होता है। इस चार्ट पर विक्रय और लागतों के बजटीय और वास्तविक अंक दिखलाये जाते हैं। इन अंकों में महत्वपूर्ण अन्तर होने पर या परिवर्तनशील लागतों के अनुपात से अधिक बढ़ने पर प्रबन्ध विश्लेषण को आदेश दे सकता है।

(5) **विश्लेषण सम–विच्छेद चार्ट (Analysis Break-even Chart)** – यह साधारण चार्ट का एक विस्तृत रूप ही है। इसमें सभी परिवर्तनशील लागतों को सम्मिलित रूप में न दिखाकर उसके विभिन्न लागत तत्वों (जैसे प्रत्यक्ष सामग्री, प्रत्यक्ष श्रम, कारखाना, प्रशासन, विक्रय और वितरण के परिवर्तनशील व्यय) को चार्ट पर अलग–अलग दिखलाया जाता है। लाभ क्षेत्र में कर, लाभांश और कोषों के लिये नियोजन को दिखलाया जा सकता है।

(6) **विभिन्न वस्तुओं के लिये सम–विच्छेद चार्ट (Break-even Chart for Various Products)** – एक से अधिक वस्तुओं का उत्पादन करने वाली संस्थाओं में प्रत्येक वस्तु के लिये एक पृथक् सम–विच्छेद चार्ट बनाना उनकी तुलनात्मक लाभप्रदता प्रदर्शित की जा सकती है। ऐसी तुलना के लिये अंशदान सम–विच्छेद चार्ट सर्वश्रेष्ठ माने जाते हैं।

(7) **अनुकूलतम उत्पादन के लिये सम–विच्छेद चार्ट (Break-even Chart of Optimum Output)** – विक्रय मात्रा के एक निश्चित बिन्दु के पश्चात् वस्तु का विक्रय मूल्य गिरने लगता है। दूसरी ओर लागत वृद्धि नियम की क्रियाशीलता के कारण एक निश्चित उत्पादन बिन्दु के पश्चात् प्रति इकाई परिवर्तनशील लागत बढ़ने लगती है। अतः अधिकतम उत्पादन ही अधिकतम लाभ नहीं प्रदान कर सकता है। इसके लिए अनुकूलतम उत्पाद ज्ञात किया जाता है। इसके लिये क्रियाशीलता के विभिन्न स्तरों

पर विक्रय और लागत का व्यवहार प्रदर्शित किया जाता है। चार्ट में विक्रय और कुल लागत रेखाओं के बीच अधिकतम लम्बवत् दूरी प्रदर्शित करने वाला बिना अनुकूलतम उत्पादन बिन्दु कहलाता है। इस बिन्दु पर सीमान्त लागत और सीमान्त आगम एक समान होते हैं।

(8) **पूँजी सम–विच्छेद चार्ट (Capital Break-even Chart)** – एक व्यवसाय के लिये दो प्रकार की पूँजी की आवश्यकता होती है – (1) स्थायी पूँजी और (2) कार्यशील पूँजी। इन दोनों का योग कुल विनियोजित पूँजी कहलाता है। स्थायी पूँजी की आवश्यकता व्यवसाय के लिये भूमि, भवन, संयंत्र, सामग्री आदि के क्रय करने के लिये होती है तथा कार्यशील पूँजी की आवश्यकता व्यवसाय के उत्पादन तथा संचालन व्ययों को पूरा करने के लिये होती है। जैसे–जैसे उत्पादन व विक्रय कार्य बढ़ता जाता है, उसमें कार्यशील पूँजी की आवश्यकता बढ़ती जाती है। पूँजी सम–विच्छेद चार्ट का प्रयोग विभिन्न उत्पादन व विक्रय स्तरों पर आवश्यक कुल विनियोजित पूँजी की मात्रा को दिखाने तथा पूँजी की अनुकूलतम उपयोग मात्रा निर्धारित करने के लिये कहा जाता है।

इस चार्ट में सामान्य चार्ट की तरह ही स्थिर व परिवर्तनशील (कार्यशील) पूँजी को अंकित किया जाता है तथा कुल विनियोजित पूँजी रेखा बना ली जाती है। यह रेखा सामान्य चार्ट पर दिखलायी गयी कुल लागत रेखा की भाँति ही होती है। इसके पश्चात् सामान्य चार्ट की तरह ही एक विक्रय रेखा खींची जाती है। कुल विनियोजित पूँजी रेखा और विक्रय रेखा एक दूसरे को जिस बिन्दु पर काटती है, वही पूँजी के सर्वोत्तम उपयोग का बिन्दु होता है। इस बिन्दु से कम उत्पादन विक्रय–मात्रा पर पूँजी बेकार पड़ी रहती है तथा उसका पूर्ण उपयोग नहीं हो पाता है। इसके विपरीत इस बिन्दु से अधिक उत्पादन/विक्रय करने पर कुल विनियोजित पूँजी की कमी की समस्या बढ़ती जाती है। इस प्रकार यह चार्ट व्यवसाय के लिये पूँजी की अनुकूलतम मात्रा निर्धारित करने में सहायक होता है।

(9) **स्वयं निर्माण या क्रय सम–विच्छेद चार्ट (Make or Buy Break-even Chart)** – बहुत बार प्रबन्धक को अपने उत्पाद के लिये आवश्यक किसी पुर्जे को अपनी ही फैक्ट्री में निर्माण करने अथवा इसे बाजार से बना बनाया क्रय करने के विकल्प के बीच निर्णय लेना होता है। इस चार्ट की सहायता से वस्तु की वह मात्रा निर्धारित की जा सकती है जिस पर वस्तु का स्वयं निर्माण लाभप्रद रहेगा।

वस्तु को अपनी फैक्ट्री में बनाने पर दो प्रकार की लागतों (1) स्थिर तथा (2) परिवर्तनशील की आवश्यकता पड़ती है। इन दोनों लागतों का योग विनियोजन एवं निर्माण की कुल लागत (Total cost of investing and making) कहलाता है। इन दोनों प्रकार की लागतों को सामान्य सम–विच्छेद चार्ट की भाँति अंकित कर दिया जाता है तथा विनियोजन एवं निर्माण की कुल लागत रेखा (Total cost of investing and making line) खींच दी जाती है। वस्तुतः यह रेखा सामान्य चार्ट पर खींची जाने वाली कुल लागत रेखा की तरह ही होती है। इसके पश्चात् वस्तु को बाजार से क्रय करने की लागत को दिखलाने के लिये क्रय की लागत रेखा खींची जाती है। यह रेखा सामान्य चार्ट पर दिखलाये जाने वाली विक्रय आगम रेखा की तरह ही होती है। ये दोनों रेखायें एक–दूसरे को जिस बिन्दु पर काटती हैं वही सम–विच्छेद बिन्दु होता है। इस बिन्दु से कम मात्रा में वस्तु की आवश्यकता होने पर उसे बाजार से क्रय

करना लाभप्रद रहता है तथा इस मात्रा से अधिक वस्तुओं की आवश्यकता होने पर इसका स्वयं निर्माण लाभप्रद रहता है।

(10) **सम–विच्छेद चार्ट (Profit Chart)** – यह एक विशेष प्रकार का सम–विच्छेद चार्ट होता है। इसे लाभ–मात्रा ग्राफ भी कहते हैं। यह चार्ट विक्रय मात्रा और लाभों के बीच सम्बन्धों को दर्शाता है।

**सम–विच्छेद विश्लेषण के प्रयोग (Uses of Application of B.E. Analysis) -**

सम–विच्छेद विश्लेषण प्रबन्ध के समक्ष व्यावसायिक संस्था के लाभों का सूक्ष्म चित्र प्रस्तुत करता है। यह संस्था में आर्थिक शक्ति और दुर्बलताओं के क्षेत्रों के अलावा यह उन युक्तियों को भी प्रकाश में लाता है। जिनसे व्यवसाय की लाभप्रदता बढ़ सकती है। सतत् परिवर्तन आधुनिक व्यापारिक जीवन की विशेषता है। सम–विच्छेद विश्लेषण द्वारा प्रबन्ध के लिये व्यावसायिक दशाओं के सम्भावित परिवर्तनों पर (जैसे विक्रय, लागत व्यवहार आदि में परिवर्तन) संस्था की लाभार्जन शक्ति की जाँच करना सम्भव होता है। इस विश्लेषण के विशिष्ट प्रबन्धकीय प्रयोग निम्नलिखित हैं :–

(1) **विभिन्न विक्रय मात्राओं पर लाभ की गणना (Calculation of profit for different sales volumes)** – निर्दिष्ट विक्रय राशि में से परिवर्तनशील और स्थिर लागतों के घटाने पर लाभ की मात्रा ज्ञात की जाती है। सूत्र रूप में –

(1) Pt. = S – (V + F)

(2) Pt. = Total Contribution – Fixed Cost

or Pt. = S (1 – V/P) – F

or Pt. = S (1 – V/S) – F

or Pt. = S (P/V Ratio) – F

(3) Pt. = Sale Units (P – V) – F

(2) **इच्छित लाभ प्राप्त करने के लिये आवश्यक विक्रय मात्रा की गणना (Calculation of sales volume to produce desired profit)** – सम–विच्छेद विश्लेषण से प्रबन्ध यह ज्ञात कर सकता है कि अमुक लाभ प्राप्त करने के लिये कितना विक्रय करना आवश्यक है। यह 'रुपयों' व 'इकाई' दोनों ही रूपों में ज्ञात किया जा सकता है। इच्छित लाभ की अभिव्यक्ति निम्न तीन प्रकार से की जा सकती है –

(अ) एक निश्चित लाभ–राशि की इच्छा।

(ब) एक निश्चित प्रति इकाई लाभ की इच्छा।

(स) एक निश्चित प्रतिशत लाभ की इच्छा।

(अ) **एक निश्चित लाभ–राशि प्राप्त करने के लिये आवश्यक विक्रय–मात्रा की गणना** (Calculation of sales volume to produce desired amount of profit) – इसकी गणना के लिये निम्न सूत्रों का प्रयोग किया जायेगा :

(1) $$\text{S (in units)} = \frac{F + Pt.}{P - V} \text{ or } \frac{F + Pt.}{C} \text{ or } \frac{\text{Desired Contribuition}}{\text{Contribution per unit}}$$

(2) $$\text{S (in Rs.)} = \frac{F + Pt.}{1 - V/P} \text{ or } \frac{F + Pt.}{1 - V/S} \text{ or } \frac{F + Pt.}{P/V \text{ Ratio}}$$

(ब) **इच्छित प्रति इकाई लाभ प्राप्त करने के लिये विक्रय–मात्रा की गणना** (Calculation of sales volume to produce desired profit per unit) – सम–विच्छेद विश्लेषण का उपयोग एक निश्चित प्रति इकाई लाभ प्राप्त करने

के लिये आवश्यक विक्रय मात्रा की गणना के लिये भी किया जा सकता है। सूत्र रूप में –

(1) S (in units) = $\frac{F}{P-(V+D.P.\ p.u.)}$

(2) S (in Rs.) = $\frac{F \times P}{P-(V+D.P.\ p.u.)}$ or $\frac{F}{1-\frac{(V+D.P.\ p.u.)}{P}}$

(स) **विक्रय पर एक निश्चित प्रतिशत से लाभ प्राप्त करने के लिये विक्रय–मात्रा की गणना** (Calculation of sales volume to produce desired percentage of profit on sales) – सम–विच्छेद विश्लेषण का उपयोग विक्रय मूल्य पर एक निश्चित प्रतिशत लाभ प्राप्त करने के लिये आवश्यक विक्रय मात्रा की गणना के लिये भी किया जा सकता है। सूत्र रूप में –

(1) S (in units) = $\frac{F}{P-(V+D.P. \times P)}$

(2) S (in Rs.) = $\frac{F \times P}{P-(V+D.P.\% \times P)}$ or $\frac{F}{1-\frac{(V+D.P.\% \times P)}{P}}$

or $= \frac{F \times S}{S-(V+D.P.\% \times S)} = \frac{F}{1-\frac{(V+D.P.\% \times S)}{S}}$

or $= \frac{F \times 100}{100-(V.C.\%+D.P.\%)} = \frac{F}{1-\frac{(V.C.\%+D.P.\%)}{100}}$

(3) **एक निश्चित सम–विच्छेद बिन्दु के लिये प्रति इकाई विक्रय मूल्य की गणना** (Calculation of selling price per unit for a particular break-even point) –

As, Contribution per unit = $\frac{\text{Fixed Cost}}{\text{Break Even Point in units}}$

And Selling Price per unit = Contribution per unit + Variable Cost per unit

Hence, $P_n = \frac{F}{\text{Desired B.E.P.}} + V$

(4) **प्रस्तावित व्ययों को पूरा करने के लिये आवश्यक विक्रय–मात्रा की गणना** (Calculation of sales volume required to meet proposed fixed expenditure) – विक्रय प्रबन्धक विक्रय व्ययों में वृद्धि करके विक्रय सम्वर्द्धन की योजनायें तैयार करते रहते हैं। ऐसी स्थिति में इन व्ययों के लिये अनुमति देने से पूर्व सर्वोच्च प्रबन्ध यह ज्ञात करना चाहेगा कि प्रस्तावित विक्रय व्ययों में वृद्धि को पूरा करने के लिये विक्रय–मात्रा में कितनी वृद्धि आवश्यक है। सम–विच्छेद विश्लेषण यह समंक प्रदान करने में समर्थ है। सूत्र रूप में –

Additional Volume Required (in units) = $\frac{\text{Proposed Expenditure}}{P-V \text{ or Contribution per unit}}$

Additional Volume Required (in Rs. ) = $\frac{P.E.}{1-V/P}$ or $\frac{P.E.}{1-V/S}$ or $\frac{P.E.}{P/V \text{ Ratio}}$

(5) **सुरक्षा–सीमा का निर्धारण** (Determination of Margin of Safety) – सम–विच्छेद विश्लेषण प्रबन्ध को सुरक्षा–सीमा के अंक भी प्रदान करता है। सुरक्षा–सीमा व्यवसाय की सुदृढ़ता का माप होती है। कुल विक्रय और सम–विच्छेद बिन्दु पर स्थित विक्रय का अन्तर सुरक्षा–सीमा कहलाता है। सूत्र रूप में –

(i) Margin of Safety (or M.S.) = Total Sales – B.E. Sales

(ii) Margin of Safety =

$$\text{Profit} \div \frac{\text{Contribution}}{\text{Sales}} \text{ or } \frac{\text{Profit}}{\text{P/V Ratio}} \text{ or } \frac{\text{Profit Percentage}}{\text{P/V Ratio}} \times 100$$

(6) **विक्रय मूल्य की कमी को पूरा करने के लिये आवश्यक विक्रय मात्रा की गणना** (Calculation of sales volume required to offset price reduction) – प्रबन्ध के समक्ष बहुधा यह समस्या आती है कि मूल्य में कटौती की जाये या नहीं। विक्रय मूल्य में कमी करने से प्रति इकाई अंशदान घट जाता है। अतः संस्था में लाभों को वर्तमान स्तर पर बनाये रखने के लिये यह आवश्यक हो जाता है कि विक्रय मात्रा में वृद्धि की जाये। यदि अन्य बातें समान रहती हैं तो सम–विच्छेद विश्लेषण द्वारा विक्रय मात्रा का वह अंक ज्ञात किया जा सकता है जिस पर प्रबन्ध लाभों के वर्तमान स्तर को बनाये रख सकता है। अपने अनुभव और ज्ञान के आधार पर विक्रय प्रबन्धक यह निश्चित कर सकता है कि नये मूल्य पर आवश्यक विक्रय सम्भव है या नहीं। नई विक्रय मात्रा को ज्ञात करने के लिये निम्न सूत्रों का प्रयोग किया जा सकता है –

(1) In Units : $Q_n = \frac{F + Pt.}{P_n - V}$ where, $Q_n$ = New Sales Quantity

and $P_n$ = New Selling Price

(2) In Rs. : $S_n = \frac{F + Pt.}{1 - V/P_n}$ where, $S_n$ = New Volume of Sales

उपर्युक्त सूत्रों से यह भी ज्ञात किया जा सकता है कि मूल्य वृद्धि की दशा में विक्रय मात्रा में कितनी कमी पर लाभों का वर्तमान स्तर बनाये रखा जा सकता है।

(7) **विक्रय मूल्य की कमी को पूरा करने के लिये विक्रय–मात्रा में प्रतिशत वृद्धि की गणना** (Calculation of percentage increase in sales volume to offset price reduction) – सम–विच्छेद विश्लेषण से मूल्य में कमी को पूरा करने के लिये विक्रय–मात्रा में आवश्यक वृद्धि का प्रतिशत भी ज्ञात किया जा सकता है। सूत्र –

(1) Percentage increase in sales volume (in units)

$$\frac{\text{Decrease in per unit contribution}}{\text{New per unit contribution)}} \times 100$$

(2) Percentage increase in sales volume (in units)

$$= \left( \frac{\text{Old Contribution} \times \text{New Sales Value}}{\text{New Contribution}} \right) - \text{Old Sales Value}$$

(8) **परिवर्तनशील और स्थिर लागतों के परिवर्तन के प्रभाव को दूर करने के लिये विक्रय मात्रा या विक्रय मूल्य में परिवर्तन** (Change in sales volume or selling price to offset the impact of change in variable costs and fixed costs) – व्यवसाय में उत्पादन की

नवीन योजनाओं अथवा उत्पादन प्रक्रिया में सुधार की योजनाओं को लागू करने पर बहुधा स्थायी और परिवर्तनशील व्ययों में परिवर्तन आ जाता है। लागतों के इन परिवर्तनों के प्रभाव को दूर करने और वर्तमान लाभ–स्तर को बनाये रखने के लिये विक्रय मूल्य अथवा विक्रय–मात्रा में परिवर्तन करना होगा। ऐसी स्थिति में नये विक्रय मूल्य अथवा नयी विक्रय–मात्रा की गणना में सम–विच्छेद विश्लेषण की तकनीक पर्याप्त सहायक होती है। इसके लिये निम्न सूत्रों का प्रयोग किया जायेगा –

**(अ) यदि परिवर्तनशील लागतों में परिवर्तन हो** – इससे अंशदान की सीमा (Contribution Margin) में परिवर्तन आ जाता है। अतः लाभों को वर्तमान स्तर पर बनाये रखने के लिये विक्रय मात्रा अथवा विक्रय मूल्य में परिवर्तन करना होगा। इसकी गणना के लिये निम्नलिखित सूत्रों का प्रयोग किया जाता है –

(i) New Sales Quantity (or $Q_n$) = $\frac{F_n + Pt.}{P - V_n}$

(ii) New Selling Price (or $P_n$) = $P + (V_n - V)$

**(ब) यदि स्थिर लागतों में परिवर्तन हो** – इससे सम–विच्छेद बिन्दु और लाभ की राशि में परिवर्तन आ जाता है। अतः लाभों को वर्तमान स्तर पर बनाये रखने के लिये विक्रय मात्रा अथवा विक्रय मूल्य में परिवर्तन करना होगा। इसकी गणना के लिये निम्नलिखित सूत्रों का प्रयोग किया जाता है –

(i) New Sales Quantity (or $Q_n$) = $Q + \frac{F_n - F}{P - V}$ or $\frac{F_n + Pt.}{P - V}$

(ii) New Selling Price (or $P_n$) = $P + \frac{F_n - F}{Q}$

**(स) यदि स्थिर व परिवर्तनशील दोनों लागतों में परिवर्तन हो** – इस स्थिति में वर्तमान लाभों को बनाये रखने की गणना के लिये निम्नलिखित सूत्रों का प्रयोग किया जाता है –

(i) New Sales Quantity (or $Q_n$) = $\frac{F_n + Pt.}{P - V_n}$

(ii) New Selling Price (or $P_n$) = $P + \left(\frac{F_n - F}{Q}\right) + (V_n - V)$

(9) **लाभ कारकों में परिवर्तन के प्रभाव का माप करना** (Measuring the effect of change in profit factors) – सम–विच्छेद विश्लेषण से लाभ कारकों में परिवर्तनों (विक्रय मूल्य में परिवर्तन, परिवर्तनशील व स्थिर लागतों में परिवर्तन, विक्रय मूल्य व लागतों में एक साथ परिवर्तन, विक्रय की मात्रा में परिवर्तन और विक्रय मिश्रण में परिवर्तन) का लाभ–मात्रा अनुपात, अंशदान सीमा, सम–विच्छेद बिन्दु और सुरक्षा–सीमा पर पड़ने वाले प्रभावों को मापा जा सकता है।

(10) **लागत सम–विच्छेद बिन्दु ज्ञात करना** (Determining Cost Break-even Point) – व्यावहारिक जीवन में अनेक बार ऐसी परिस्थिति आ सकती है जबकि दो वैकल्पिक संयंत्रों अथवा विधियों में क्रियाशीलता को किसी निश्चित स्तर पर कुल लागत समान आये, यद्यपि उनकी स्थिर लागतें और प्रति इकाई परिवर्तनशील लागतें पर्याप्त भिन्न हों। ऐसी परिस्थिति में फर्म तटस्थता की स्थिति में होती है तथा इस स्तर या बिन्दु

से कम या अधिक उत्पादन की दशा में सर्वाधिक लाभदायक या मितव्ययी संयंत्र का चयन सरल हो जाता है। अतः एक फर्म के लिए इस प्रकार के बिन्दु का निर्धारण अति महत्वपूर्ण होता है। इस बिन्दु को लागत सम–विच्छेद बिन्दु कहते हैं। इस गणना के लिये निम्न सूत्र का प्रयोग किया जा सकता है –

Cost B.E.P. or B.E.P. of more expensive alternative = $\frac{F - F_1}{V_1 - V}$

When, $F$ = Fixed Costs of more expensive alternative.
$F_1$ = Fixed Costs of less expensive alternative.
$V_1$ = Variable Costs of alternative having lesser Fixed Costs.
$V$ = Variable Costs of alternative having higher Fixed Costs.

लागत सम–विच्छेद बिन्दु के निर्धारण से एक फर्म अपने लिये सर्वाधिक लाभप्रद या मितव्ययी संयंत्र का चयन कर सकती है। इस बिन्दु से अधिक विक्रय या उत्पादन के लिये अधिक स्थिर व्यय वाला विकल्प लाभदायक या मितव्ययी रहता है। इस बिन्दु से कम उत्पादन या विक्रय की दशा में कम स्थिर व्यय वाला विकल्प चुना जायेगा, किन्तु ध्यान रहे कि इस युक्ति का प्रयोग तभी किया जाता है जबकि –

(1) विकल्पों के स्थिर व्यय असमान हों, और
(2) अधिक स्थिर व्यय वाले विकल्प की परिवर्तनशील लागत कम स्थिर व्यय वाले विकल्प की परिवर्तनशील लागत से कम हो, अन्यथा विश्लेषण की आवश्यकता ही नहीं होगी।

(11) **बनाओ या क्रय निर्णय** (Make or Buy Decision) – कभी–कभी प्रबन्ध के सामने यह प्रश्न आता है कि अपनी फर्म के उत्पाद में प्रयोग किया जा रहा कोई विशेष पुर्जा या भाग का निर्माण अपने यहाँ किया जाये अथवा इसे बाजार से क्रय किया जाये। फर्म में पुर्जे के निर्माण से स्थिर और परिवर्तनशील लागतें बढ़ेंगी। सम–विच्छेद तकनीक की सहायता से वह स्तर निश्चित किया जा सकता है जिस पर पुर्जे का स्वयं निर्माण वांछनीय होगा।

(12) **अनुकूलतम विक्रय–मिश्रण का निर्धारण** (Determining the optimum sales mix) – एक से अधिक प्रकार की वस्तुओं का उत्पादन करने वाली संस्थाओं में प्रबन्ध का उद्देश्य एक ऐसे विक्रय–मिश्रण को निश्चित करना होता है जिस पर संस्था के लाभ अधिकतम हों। इसमें सम–विच्छेद विश्लेषण पर्याप्त सहायक होता है। आधुनिक समय में इस समस्या के हल के लिए रेखीय कार्यक्रम (Linear Programming) की तकनीक का प्रयोग बढ़ता जा रहा है।

(13) **क्षमता परिवर्तन पर निर्णय** (Deciding on change in capacity) – कई बार प्रबन्ध के समक्ष यह समस्या आती है कि वस्तु की बढ़ी हुई माँग को पूरा करने के लिये उत्पादन क्षमता में विस्तार किया जाय या नहीं। यह तो सही है कि क्षमता विस्तार से संस्था की लाभ–सम्भाव्यता (Profit Potentiality) बढ़ जाती है परन्तु यह भी सही है कि इससे संस्था के स्थिर व्यय भी बढ़ जाते हैं जिससे सम–विच्छेद बिन्दु ऊँचा हो जाता है। साथ ही इससे वस्तु की पूर्ति बढ़ जाने के कारण बाजार में उसका विक्रय मूल्य भी घट जाता है। इसके अतिरिक्त बढ़े हुए उत्पादन के विक्रय के लिये बाजार में इसकी समुचित माँग भी घट जाता है। इसके अतिरिक्त बढ़े हुए उत्पादन के विक्रय के लिये बाजार में इसकी समुचित माँग भी होनी चाहिये। अतः ऐसे मामले पर

निर्णय लेने से पूर्व प्रबन्ध को समस्या की जटिलताओं की सूक्ष्मता से जाँच करनी चाहिये। इसके लिए प्रबन्ध को निम्न चार बातों पर ध्यान देना चाहिये –

(i) अतिरिक्त स्थिर व्यय,

(ii) उत्पादन में वृद्धि से विक्रय मूल्य में सम्भावित गिरावट,

(iii) बढ़े हुए उत्पादन की माँग की पर्याप्तता, और

(iv) सुरक्षा–सीमा में गिरावट।

## लाभ–मात्रा विश्लेषण
## (Profit-Volume Analysis)

यह सम–विच्छेद विश्लेषण के समान ही होता है और उन्हीं मान्यताओं और सीमाओं से जकड़ा हुआ है जिन समंकों से सम–विच्छेद विश्लेषण किया जाता है, उन्हीं समंकों से ही लाभ–मात्रा विश्लेषण किया जाता है जैसा कि नाम से स्पष्ट है कि लाभ–मात्रा विश्लेषण विक्रय मात्रा और लाभों के बीच सम्बन्ध का विश्लेषण प्रस्तुत करता है। इसमें लागतों, मूल्य और मात्रा के परिवर्तन का लाभ पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन किया जाता है कि लाभ–मात्रा विश्लेषण के लिये लाभ–मात्रा अनुपात ज्ञात किया जाता है।

**लाभ–मात्रा अनुपात (Profit Volume Ratio or P/V Ratio)**

लाभ–मात्रा अनुपात व्यवसाय की लाभप्रदता का सूचक होता है। लाभ–मात्रा अनुपात शब्द का प्रयोग कुछ भ्रामक है क्योंकि यह अनुपात लाभों को विक्रय से भाग देकर नहीं ज्ञात किया जाता है और न इसे लाभ–हानि का अनुमान लगाने के लिए विक्रय पर क्रियाशील ही किया जा सकता है। वास्तव में, यह अनुपात लाभों और विक्रय मात्रा के बीच सम्बन्ध स्थिर लागतों की वसूली तथा सम–विच्छेद बिन्दु के प्राप्त करने के पश्चात् ही करता है। यह प्रतिशत के रूप में व्यक्त किया जाता है।

सरल शब्दों में, लाभ–मात्रा अनुपात अंशदान और विक्रय राशि के बीच प्रतिशत–सम्बन्ध प्रदर्शित करता है। यह स्थिर व्ययों को पूरा करने और लाभ–प्राप्ति के लिये उपलब्ध राशि और विक्रय राशि का अनुपात होता है। वास्तव में लाभ–मात्रा अनुपात के स्थान पर ''अंशदान/विक्रय अनुपात'' (Contribution/Sales Ratio) शब्द का प्रयोग अधिक संगत लगता है। इसको ज्ञात करने के लिए निम्न सूत्रों का प्रयोग किया जाता है –

**(1) अंशदान और बिक्री के अंकों से लाभ–मात्रा अनुपात ज्ञात करना –**

$$\text{P/V Ratio} = \frac{\text{Sales} - \text{Total Variable Costs}}{\text{Sales}} \times 100$$

$$= \frac{\text{Total Contribution}}{\text{Sales}} \times 100 \text{ or } \frac{\text{Fixed Costs} + \text{Profit}}{\text{Sales}} \times 100$$

$$\text{or } \frac{\text{Selling Price p.u.} - \text{Variable Cost p.u.}}{\text{Selling Price p.u.}} \times 100$$

**(2) दो अवधियों की बिक्री और लाभ के अंकों से लाभ–मात्रा अनुपात ज्ञात करना –**

$$\text{P/V Ratio} = \frac{\text{Change in Profits}}{\text{Change in Sales}} \times 100$$

**(3) शुद्ध लाभ और सुरक्षा–सीमा के अंकों से लाभ–मात्रा अनुपात ज्ञात करना –**

$$\text{P/V Ratio} = \frac{\text{Net Profit}}{\text{Margin of Safety}} \times 100$$

(4) स्थिर लागत और सम–विच्छेद राशि से लाभ–मात्रा अनुपात ज्ञात करना –

$$P/V\ Ratio = \frac{Fixed\ Costs}{B.E.P.\ in\ value} \times 100$$

(5) परिवर्तनशील लागत के प्रतिशत से लाभ–मात्रा अनुपात ज्ञात करना –

P/V Ratio = 100 – Variable Cost Percentage to Sales

लाभ–मात्रा अनुपात के प्रयोग **(Applications of P/V Ratio)**

यह अनुपात सम–विच्छेद विश्लेषण में बहुत सहायक होता है। इसकी सहायता से निम्नलिखित गणनायें की जा सकती हैं –

(1) सम–विच्छेद बिन्दु का निर्धारण (Determination of B.E.P.) –

सूत्र – $$B.E.P. = \frac{Fixed\ Costs}{P/V\ Ratio}$$

(2) अंशदान का निर्धारण (Determination of Contribution) –

सूत्र – Contribution = Sales Volume × P/V Ratio

(3) सुरक्षा–सीमा का निर्धारण (Determination of Margin of Safety) –

सूत्र – $$Margin\ of\ Safety = \frac{Profit}{P/V\ Ratio}$$

(4) विक्रय की किसी भी मात्रा पर परिवर्तनशील लागतों का निर्धारण (Determination of variable costs for any volume of sales) –

सूत्र – Variable Cost = S (1 – P/V Ratio)

(5) विक्रय की किसी मात्रा पर स्थिर लागतें ज्ञात करना (Determination of fixed costs for any volume of sales) –

सूत्र – Fixed Costs = Sales in Rs. × P/V Ratio – Profit

or Fixed Costs = B.E. Sales in Rs. × P/V Ratio

(6) निर्दिष्ट विक्रय–मात्राओं पर लाभ–हानि का निर्धारण (Determination of Profit or Loss on Given Sales Volumes) –

(अ) विक्रय, स्थिर लागतों और लाभ–मात्रा अनुपात के अंकों से लाभ का निर्धारण–

सूत्र – Profits (Sales × P/V Ratio) – Fixed Cost

(ब) लाभ–मात्रा अनुपात और सुरक्षा–सीमा के अंकों से लाभ का निर्धारण –

सूत्र – Profit = P/V Ratio (Sales – Break-even Sales)

or Profit = P/V Ratio × Margin of Safety

(स) लाभ–मात्रा अनुपात और सुरक्षा–सीमा के प्रतिशत के अंकों से लाभ का प्रतिशत ज्ञात करना –

सूत्र – % Profit = P/V Ratio × Margin of Safety Percentage × 100

(7) स्थिर व्ययों में वृद्धि को पूरा करने के लिये आवश्यक विक्रय वृद्धि का निर्धारण (Determination of increase in sales to meet increase in fixed expenditure) –

सूत्र – $$Additional\ Sales\ Required = \frac{Change\ in\ Non-variable\ Costs}{P/V\ Ratio}$$

(8) **स्थिर व्ययों के बढ़ने या घटने से सम–विच्छेद बिन्दु में परिवर्तन की गणना** (Calculation of change in the break-even point, if non-variable costs are increased or decreased) –

सूत्र – $\text{Chagne in B.E.P.} = \dfrac{\text{Change in Non-variable Costs}}{\text{P/V Ratio}}$

यदि स्थिर लागतें बढ़ती हैं तो सम–विच्छेद बिन्दु ऊपर चढ़ जाता है और यदि स्थिर लागतें घटती हैं तो सम–विच्छेद बिन्दु गिर जाता है।

(9) **इच्छित लाभ की प्राप्ति के लिये विक्रय मात्रा का निर्धारण** (Determination of sales volume to produce desired profit) –

(अ) **एक निश्चित लाभ–राशि प्राप्ति की इच्छा की स्थिति में –**

सूत्र –

$$\text{Sales Volume} = \frac{\text{F + Desired Profit}}{\text{P/V Ratio}} \text{ or } \frac{\text{Desired Total Contribution}}{\text{P/V Ratio}}$$

(ब) **एक निश्चित प्रतिशत से लाभ–राशि की इच्छा की स्थिति में –**

सूत्र – $\text{Sales Volume or S} = \dfrac{\text{F} + (\text{Profit \% on Sales} \times \text{S})}{\text{P/V Ratio}}$

(10) **मूल्यों में कमी को पूरा करने के लिये आवश्यक विक्रय मात्रा का निर्धारण** (Determination of sales volume required to offset price reduction) –

सूत्र – $\text{New Sales Volume} = \dfrac{\text{Fixed Costs + Present Profit}}{\text{New P/V Ratio}} = \dfrac{\text{Old Contribution}}{\text{New P/V Ratio}}$

(11) **लाभ–मात्रा अनुपात का प्रयोग प्रत्येक कारक की आपस में तुलना हेतु किया जाता है।** तुलना के कुछ प्रमुख क्षेत्र निम्नलिखित हैं –

(अ) विभिन्न प्रकार की वस्तुओं के लाभ–मात्रा अनुपात की तुलना।

(ब) विभिन्न विक्रय क्षेत्रों के लाभ–मात्रा अनुपात की तुलना।

(स) विभिन्न विक्रय पद्धतियों (जैसे थोक और खुदरा विक्रय पद्धतियाँ) के लाभ–मात्रा अनुपात की तुलना।

(द) एक ही कम्पनी के विभिन्न कारखानों के लाभ–मात्रा अनुपात की तुलना।

(इ) विभिन्न कम्पनियों के लाभ–मात्रा अनुपात की तुलना।

**लाभ–मात्रा अनुपात में सुधार करना (Improving the P/V Ratio)**

लाभ–मात्रा अनुपात में वृद्धि सदैव अच्छी होती है। अतः प्रत्येक कम्पनी का उद्देश्य इस अनुपात को बनाये रखना या सम्भव हो तो इसमें वृद्धि करना होता है। यदि किसी कम्पनी में लाभ–मात्रा अनुपात नीचा है तो इसमें सुधार के लिये निम्नलिखित उपाय किये जा सकते हैं –

(1) विक्रय मूल्य में वृद्धि करना।

(2) परिवर्तनशील लागतों में कमी करना।

(3) विक्रय मिश्रण में परिवर्तन करना। जिन वस्तुओं पर लाभ–मात्रा अनुपात असंतोषजनक हो, उनके स्थान पर ऐसी वस्तुओं का विक्रय बढ़ाया जाये जिसका लाभ–मात्रा अनुपात संतोषजनक हो।

## बहु–उत्पाद फर्मों के लिये संयुक्त लाभ–मात्रा अनुपात ज्ञात करना
**(Calculating Overall P/V Ratio for Multi-product Firms)**

एक से अधिक उत्पादों के उत्पादन में लगी कोई फर्म यदि अपने सभी उत्पादों का संयुक्त लाभ–मात्रा अनुपात ज्ञात करना चाहती है तो इसके लिये निम्न प्रक्रिया अपनायी जायेगी :–

(1) प्रत्येक उत्पाद का पृथक–पृथक लाभ–मात्रा अनुपात ज्ञात करो।

(2) प्रत्येक उत्पाद की बिक्री का सभी उत्पादों की कुल बिक्री से प्रतिशत ज्ञात करो।

(3) प्रत्येक उत्पाद के लाभ–मात्रा अनुपात को उसके विक्रय प्रतिशत से गुणा करो और गुणनफलों का योग करो। यह योग ही संयुक्त लाभ–मात्रा अनुपात होगा।

संयुक्त लाभ–मात्रा अनुपात से पूरी फर्म का संयुक्त सम–विच्छेद बिन्दु ज्ञात किया जा सकता है। सूत्र रूप में :

$$\text{Overall B.E.P.} = \frac{\text{Total Fixed Cost}}{\text{Overall P/V Ratio}}$$

## लाभ कारकों में परिवर्तनों का प्रभाव (Effect of Changes in Profit Factors)

(1) **विक्रय मूल्य में परिवर्तन** – इससे अंशदान सीमा और लाभ–मात्रा अनुपात प्रभावित होते हैं जिससे सम–विच्छेद बिन्दु और लाभ–शैलियाँ (profit patterns) परिवर्तित होते हैं। विक्रय मूल्य में परिवर्तन दो प्रकार के हो सकते हैं –

(अ) **विक्रय मूल्य में वृद्धि** – विक्रय मूल्य के बढ़ा देने से अंशदान (और लाभ–मात्रा अनुपात) बढ़ जाता है और स्थिर लागतों की वसूली की दर तेज हो जाती है। इसके परिणामस्वरूप सम–विच्छेद बिन्दु गिर जाता है, सुरक्षा–सीमा बढ़ जाती है और सम–विच्छेद बिन्दु के बाद लाभ अधिक हो जाते हैं तथा इस बिन्दु के नीचे हानियाँ घट जाती है।

(ब) **विक्रय मूल्य में कमी** – इससे अंशदान (और लाभ–मात्रा अनुपात) कम हो जाता है और स्थिर लागतों की वसूली की दर धीमी पड़ जाती है। इसके फलस्वरूप सम–विच्छेद बिन्दु ऊपर चढ़ जाता है, सुरक्षा–सीमा घट जाती है तथा इस बिन्दु के पश्चात् लाभ कम हो जाते हैं तथा इस बिन्दु के नीचे हानियाँ बढ़ जाती है।

**नोट** – विक्रय मूल्य में परिवर्तन के कारण व्यवसाय के लाभों और हानियों में प्रतिशत परिवर्तन विक्रय–मूल्य की तुलना में अधिक होती है।

(2) **परिवर्तनशील लागतों में परिवर्तन** – विक्रय मूल्य में परिवर्तन की तरह इससे भी अंशदान सीमा सम–विच्छेद बिन्दु और लाभ–शैलियाँ प्रभावित होती है। यह परिवर्तन दो प्रकार का हो सकता है –

(अ) **परिवर्तनशील लागतों में वृद्धि** – इसका प्रभाव विक्रय मूल्य में कमी जैसा ही होता है।

(ब) **परिवर्तनशील लागतों में कमी** – इसका प्रभाव विक्रय मूल्य में वृद्धि जैसा ही होता है।

**नोट** – परिवर्तनशील लागतों में परिवर्तन का लाभों पर प्रभाव इन लागतों में परिवर्तन के अनुपात में नहीं होगा।

(3) **स्थिर लागतों में परिवर्तन** – लागतों में परिवर्तन हो जाने पर अंशदान और लाभ–मात्रा अनुपात प्रभावित नहीं होते। अतः स्थिर लागतों की वसूली की दर पूर्ववत् ही रहती है। यह परिवर्तन दो प्रकार के हो सकते हैं –

(अ) **स्थिर लागतों में वृद्धि** – इससे सम–विच्छेद बिन्दु ऊँचा हो जाता है तथा सुरक्षा–सीमा घट जाती है। सम–विच्छेद बिन्दु के पश्चात् लाभ स्थिर व्ययों में बढ़ी हुई राशि से घट जाते हैं और इस बिन्दु के नीचे हानियाँ स्थिर व्ययों में बढ़ी हुई राशि से बढ़ जाती है।

(ब) **स्थिर लागतों में कमी** – इससे सम–विच्छेद बिन्दु नीचा हो जाता है तथा सुरक्षा–सीमा बढ़ जाती है। सम–विच्छेद बिन्दु के पश्चात् लाभ स्थिर लागतों में कमी की राशि से बढ़ जाते हैं और इस बिन्दु के नीचे हानियाँ स्थिर लागतों में कमी की राशि से घट जाती है।

**विक्रय मूल्य और लागतों में एक साथ परिवर्तन** – इन कारकों में एक साथ परिवर्तन के बहुत से संयोग हो सकते हैं। यदि ये परिवर्तन एक ही दिशा में होते हैं तो इसका अंशदान, सम–विच्छेद बिन्दु और लाभ शैली पर प्रभाव बहुत ही अमहत्वपूर्ण होगा, क्योंकि एक कारक में परिवर्तन का प्रभाव दूसरे कारक के परिवर्तन से स्वतः ही लोप हो जाता है। फिर भी इससे लाभ–मात्रा अनुपात में परिवर्तन हो जाता है। दूसरी ओर यदि विक्रय मूल्य और लागतों में परिवर्तन एक–दूसरे के विपरीत दिशा में होते हैं तो इसका अंशदान, लाभ–मात्रा अनुपात, सम–विच्छेद बिन्दु और लाभ–शैली पर बहुत ही स्पष्ट प्रभाव पड़ेगा।

(4) **मात्रा में परिवर्तन** – मात्रा में परिवर्तन का अंशदान और सम–विच्छेद बिन्दु पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। विक्रय मात्रा में वृद्धि से सुरक्षा–सीमा बढ़ जाती है तथा इसमें कमी से सुरक्षा–सीमा घट जाती है। इसी तरह मात्रा में वृद्धि से लाभ प्रति इकाई अंशदान की दर से बढ़ जाते हैं और मात्रा में कमी से लाभ घट जाते हैं।

(5) **विक्रय मिश्रण में परिवर्तन** – विक्रय मिश्रण में परिवर्तन हो जाने से लाभ–मात्रा अनुपात में परिवर्तन हो जाता है। इससे सम–विच्छेद बिन्दु और लाभ–शैली भी बदल जाते हैं। विक्रय–मिश्रण के प्रतिकूल परिवर्तन (अर्थात् उच्च लाभ–मात्रा अनुपात वाली वस्तु के विक्रय में कमी) से लाभ कम हो जाते हैं और सम–विच्छेद बिन्दु ऊपर चढ़ जाता है। इसके विपरीत विक्रय मिश्रण के अनुकूल परिवर्तन से लाभ बढ़ते हैं और सम–विच्छेद बिन्दु गिर जाता है।

## लाभ–मात्रा चार्ट (Profit-Volume Chart)

यह एक विशेष प्रकार का सम–विच्छेद चार्ट होता है। इसे लाभ–मात्रा ग्राफ भी कहते हैं। यह चार्ट विक्रय मात्रा और लाभों के बीच सम्बन्धों को दर्शाता है। इस चार्ट पर लागत, मात्रा और विक्रय मूल्य के परिवर्तनों का लाभ पर पड़ने वाले प्रभाव भी दिखलाये जा सकते हैं। इसकी रचना विधि इस प्रकार है :

(1) इसमें X–अक्ष पर विक्रय मात्रा दिखालायी जाती है। विक्रय–मात्रा मौद्रिक रूप में अथवा पूर्ण क्षमता के प्रतिशत के रूप में दिखलायी जा सकती है।

(2) Y–अक्ष पर लाभ–हानि की स्थिति दर्शायी जाती है। Y–अक्ष पर शून्य बिन्दु के ऊपर की ओर लाभ तथा नीचे की ओर हानि दिखलाई जाती है। इस प्रकार यह ग्राफ दो भागों में बँटा होता है। ऊपर का भाग लाभ और नीचे का भाग हानि दर्शाता है। इस प्रकार क्षैतिज रेखा 'शून्य लाभ रेखा' बन जाती है।

(3) ग्राफ पर विभिन्न स्तरों पर लाभ–हानि की स्थिति अंकित की जाती है। शून्य क्रियाशीलता पर कुल स्थिर व्ययों की राशि की कुल हानि होती है। अतः अधिकतम हानि तब होती है जबकि विक्रय मात्रा शून्य हो। इसी तरह अधिकतम लाभ तब अर्जित किया जा सकता है जबकि फैक्ट्री पूर्ण क्षमता पर कार्य करे। अधिकतम हानि Y–अक्ष पर X–अक्ष के नीचे तथा अधिकतम लाभ X–अक्ष के ऊपर अंकित किये जाते हैं। अधिकतम हानि और अधिकतम लाभ के दोनों बिन्दुओं को मिलाकर एक सीधी रेखा खींची जाती है जिसे अंशदान रेखा (Contribution line) कहते हैं। यह अंशदान रेखा X–अक्ष को जिस बिन्दु पर काटे, वह बिन्दु सम–विच्छेद बिन्दु कहलाता है।

(4) X–अक्ष और अंशदान रेखा के बीच का फैलाव (space) सम–विच्छेद बिन्दु के दाहिनी ओर लाभ–क्षेत्र और बाईं और हानि–क्षेत्र कहलाता है। वास्तविक विक्रय मात्रा और सम–विच्छेद मात्रा के बीच अन्तर सुरक्षा–सीमा दर्शाता है।

इस ग्राफ की उपयोगिता इस तथ्य में सन्निहित है कि यह ग्राफ पूर्ण क्षमता के विभिन्न विक्रय मूल्यों पर सम–विच्छेद बिन्दु ज्ञात करने व सुरक्षा–सीमा निर्धारित करने के लिये भी प्रयोग किया जा सकता है। अतः यदि इसकी सीमाओं का उचित ध्यान रखा जाता है तो यह विश्लेषण प्रबन्ध के उत्पादन–मात्रा सम्बन्धी निर्णयों में बहुत उपयोगी सिद्ध होता है।

## सीमान्त लागत का वर्गीकरण
## (Classification of Marginal Cost)

**प्रारम्भिक** – किसी भी वस्तु के उत्पादन में प्रायः दो प्रकार के व्यय किये जाते हैं। प्रथम, वे व्यय जिन पर कुछ सीमा तक उत्पादन की इकाइयों में वृद्धि या कमी का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है, अर्थात् उत्पादन की मात्रा में वृद्धि करने पर या कमी करने पर इन खर्चों की रकम में कोई परिवर्तन नहीं होता है। ऐसे खर्चों को 'स्थिर व्यय' कहते हैं। द्वितीय, कुछ खर्चे ऐसे होते हैं, जो उत्पादन इकाइयों में कमी या वृद्धि होने पर कम या बढ़ जाते हैं। इन खर्चों को परिवर्तनशील व्यय या अस्थिर व्यय कहते हैं। स्थिर व्यय की यह प्रकृति होती है कि उत्पादन इकाई में वुद्धि होने पर प्रति इकाई स्थिर व्यय कम हो जाता है और इसके विपरीत दशा में बढ़ता जाता है। परिवर्तनशील व्यय सदैव प्रति इकाई एकसमान ही रहता है, चाहे उत्पादन की मात्रा में वृद्धि की गयी हो या कमी कर दी गयी हो। वर्तमान काल में यह सामान्य रूप से माना जाता है कि कुछ व्ययों के स्थिर व परिवर्तनशील व्ययों के रूप में बंटवारे द्वारा लागत–नियन्त्रण व निर्णयन में पर्याप्त सहायता मिल सकती है। इस उद्देश्य के लिए जिस विधि का प्रयोग किया जाता है, उसे 'सीमावर्ती लागत–विधि' कहते हैं।

सीमावर्ती लागत–विधि को उचित शब्दों में परिभाषित करना एक जटिल कार्य है। कुछ संस्थाओं में ऐसी विधि का प्रयोग किया जाता है, जिसके अन्तर्गत स्थिर व्यय और परिवर्तनशील व्यय का बंटवारा तो किया जाता है, परन्तु उस विधि को सीमावर्ती लागत–विधि के नाम से नहीं पुकारा जाता है। फिर यदि हम यह जान लें कि एक पूर्ण सीमावर्ती लागत–विधि की मुख्य विशेषताएं क्या हैं तो हम इसकी उचित परिभाषा दे सकते हैं। एक सीमावर्ती लागत–विधि के दो मुख्य सिद्धान्त हैं :

(1) सीमावर्ती लागत का निर्धारण।

(2) लाभदायकता की स्थिति को दर्शाने व प्रबन्ध द्वारा निर्णय लेने में सुविधा हेतु उपर्युक्त लागतों का वैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुतीकरण।

उक्त के अलावा एक सीमावर्ती लागत–विधि की कुछ और विशेषताएं हैं जो निम्न प्रकार हैं :

(क) सीमावर्ती लागत को ही वस्तु की उत्पादन लागत माना जाता है।

(ख) चालू कार्य व तैयार माल के स्कन्ध का मूल्यांकन सीमावर्ती लागत के आधार पर किया जाता है।

(ग) मूल्यों का निर्धारण सीमावर्ती लागत व दत्तांश (contribution) के आधार पर किया जाता है।

(घ) लाभ की गणना करने के लिए एक विशेष प्रकार के प्रारूप में लाभ–हानि खाता तैयार किया जाता है, जिसे 'सीमावर्ती लाभ–हानि खाता' कहते हैं।

(ड़) लाभ की गणना एक विशेष ढंग से की जाती है। कुल बिक्री धन में से सीमावर्ती लागत को घटा देते हैं। शेष को दत्तांश कहते हैं। इस दत्तांश में से स्थिर व्ययों को घटाने पर शुद्ध लाभ ज्ञात होता है।

(च) उत्पादन–सीमा स्तर बिन्दु (Break-even point) इस विधि का मुख्य अंग है।

उपर्युक्त विवेचना के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि सीमावर्ती लागत–विधि वह विधि है जिसके द्वारा उत्पादन की इकाइयों में कमी या वृद्धि के कारण उत्पादन लागत में होने वाली कमी या वृद्धि का अध्ययन किया जाता है और परिवर्तनशील लागत को ही उत्पादन लागत का प्रमुख अंश माना जाता है। यह एक ऐसी लागत–विधि है जिसके अन्तर्गत उत्पादन लागत में प्रत्यक्ष सामग्री, प्रत्यक्ष श्रम व परिवर्तनशील अप्रत्यक्ष व्यय को ही शामिल किया जाता है और चालू कार्य व तैयार माल के स्कन्ध का मूल्यांकन सीमावर्ती लागत पर किया जाता है। चूंकि उत्पादन स्तर में वृद्धि या कमी करने पर परिवर्तनशील लागत ही बढ़ती या घटती है, अतः लागत–विधि को 'उत्पादन स्तर में एक इकाई अधिक उत्पादन के कारण कुल लागत में हुए परिवर्तन को निर्धारित करने की 'तकनीकी' के रूप में भी माना जा सकता है।

## सीमान्त लागत का निर्धारण
## (Determination of Marginal Cost)

सीमावर्ती लागत–पद्धति का सुचारू रूप से अध्ययन करने के लिए यह जानना अति आवश्यक है कि सीमान्त लागत क्या है और इसका निर्धारण किस प्रकार से होता है। सीमान्त लागत के दो सम्भावित अर्थ हो सकते हैं। प्रथम, मूल लागत और परिवर्तनशील अप्रत्यक्ष व्ययों को सीमान्त लागत के रूप में माना जा सकता है, अर्थात् सम्पूर्ण परिवर्तनशील लागत चाहे वे किसी प्रकार की क्यों न हों, सीमान्त लागत हो सकते हैं। सीमान्त लागत का जो दूसरा अर्थ लगाया जा सकता है, उसके अन्तर्गत इन परिवर्तनशील व्ययों को एक विशिष्ट अर्थ में प्रयोग किया जाता है अर्थात् कुल उत्पादन की इकाई में एक और इकाई को घटाने या बढ़ाने पर कुल लागत में जो कमी या वृद्धि होती है, उसे ही सीमान्त लागत कहते हैं। उदाहरण के लिए, यदि 100 इकाई के उत्पादन में कुल लागत 500 रु. है और 101 इकाई के उत्पादन में कुल लागत 503 रु. हो जाती है तो कुल लागत में 3 रु. की वृद्धि अर्थात् 3 रु. सीमान्त लागत के रूप में माना जायेगा। मूलतः यह विचारधारा अर्थशास्त्रीय है। अर्थशास्त्र में सीमान्त इकाई की लागत को सीमान्त लागत कहते हैं। इस विचारधारा को प्रबन्ध के प्रयोग हेतु सीमावर्ती लागत–विधि के रूप में लाया जाता है। परन्तु लेखापालक इस अर्थ में प्रयुक्त सीमान्त लागत के स्थान पर भेदात्मक लागत (Differential Cost) या वृद्धिशील लागत (Incremental Cost) का प्रयोग करते हैं। परन्तु सीमान्त लागत–पद्धति के उद्देश्य के

लिए सीमान्त लागत को प्रथम वर्ष में ही प्रयोग किया जाता है। अर्थात् सीमान्त लागत में निम्न को शामिल कर सकते हैं :

(1) मूल लागत (Prime Costs)

(2) अस्थिर अप्रत्यक्ष व्यय (Variable Overheads)

साधारणतया मूल लागत के निर्धारण में कोई कठिनाई नहीं होती है। मूल लागत में प्रत्यक्ष सामग्री, प्रत्यक्ष श्रम व अन्य प्रत्यक्ष व्ययों को शामिल किया जाता है। प्रत्यक्ष सामग्री की लागत 'सामग्री सम्बन्धी आवश्यकता प्रपत्र' (Materials Requisition Form) से सरलतापूर्वक ज्ञात की जा सकती है। इसी प्रकार प्रत्यक्ष श्रम लागत की गणना कार्य–घड़ी कार्ड (Job-Clock Card) या टाइम शीट के प्रयोग द्वारा सम्भव बनायी जा सकती है। अप्रत्यक्ष व्यय का स्थिर और अस्थिर लागत व्ययों के अन्तर्गत बंटवारा करना ही सबसे कठिन कार्य है। लागत के कुछ तत्व तो ऐसे हैं जिनके बारे में यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि वे स्थिर हैं अथवा अस्थिर। परन्तु कुछ लागत व्यय ऐसे भी होते हैं, जिनके सम्बन्ध में निश्चित रूप से ऐसी कोई धारणा नहीं बनायी जा सकती। साथ ही कुछ ऐसे व्यय भी होते हैं जो अर्द्ध–स्थिर होते हैं। अर्द्ध–स्थिर लागत में निहित स्थिर व अस्थिर तत्व को अलग करने में प्रयुक्त विभिन्न रीतियों का वर्णन पीछे किया जा चुका है।

**सीमावर्ती लागत–विधि के अन्तर्गत कुल लागत का निर्धारण** – उत्पादन के विभिन्न स्तरों पर कुल लागत की गणना विधि इस प्रकार होगी :

चूंकि उत्पादन के विभिन्न स्तर पर स्थायी लागत एक समान रहेगी, अतः विभिन्न स्तरों पर परिवर्तनशील लागत की गणना ही आवश्यक होती है। चूंकि परिवर्तनशील लागत प्रति इकाई विभिन्न स्तरों पर एक समान रहती है, इसलिए उत्पादन के विभिन्न स्तरों पर उत्पादित इकाइयों को परिवर्तनशील लागत प्रति इकाई से गुणा करने पर कुल परिवर्तनशील लागत ज्ञात हो जाती है। इसे स्थिर व्यय में जोड़ने पर कुल लागत ज्ञात हो जाती है। सूत्र के रूप में :

$$\text{Total Cost} = \text{Fixed Cost} + (\text{Output in units} \times \text{Variable cost per unit})$$

$$TC = F + VQ$$

**Example :**

भिवानी प्रोडक्ट्स लि. एक प्रमाप प्रकार की वस्तु उत्पादित करते हैं, वर्ष के अन्तिम पांच माह का उनका परिणाम निम्नवत् है :

Bhiwani Products Ltd. produces one standard type of article. Their results during the last five months of the year were as follows :

| *Month* | *Output* |
|---|---|
| August | 100 units |
| September | 200 units |
| October | 300 units |
| November | 400 units |
| December | 500 units |

मूल लागत 5 रु. प्रति इकाई

परिवर्तनशील उपरिव्यय 1 रु. प्रति इकाई

स्थायी उपरिव्यय 36,000 रु. प्रति वर्ष

Prime Cost : Rs. 5 per unit

Variable overheads Rs. 1 per unit

Fixed overheads Rs. 36,000 per annum

सीमावर्ती लागत–पद्धति के आधार पर लागत विवरण तैयार कीजिए।

Prepare a cost statement on the basis of Marginal Costing.

**Solution :**

**Cost Statement**

| *Months* | *Aug.* | *Sept.* | *Oct.* | *Nov.* | *Dec.* |
|---|---|---|---|---|---|
| Level of Activity (Units) | 100 | 200 | 300 | 400 | 500 |
| Prime Cost | 500 | 1,000 | 1,500 | 2,000 | 2,500 |
| Variable Overhead | 100 | 200 | 300 | 400 | 500 |
| Marginal Cost | 600 | 1,200 | 1,800 | 2,400 | 3,000 |
| Fixed Costs | 3,000 | 3,000 | 3,000 | 3,000 | 3,000 |
| Total Cost | 3,600 | 4,200 | 4,800 | 5,400 | 6,000 |

**Example :**

दो अवधि में कुल लागत क्रमशः 15,000 इकाइयां व 20,000 इकाइयों के लिए 40,000 रु. व 50,000 रु. हैं। सीमावर्ती लागत प्रति इकाई कितनी है और कितनी स्थिर लागत है ?

In two periods, total costs amount to Rs. 40,000 and Rs. 50,000 against production of 15,000 units and 20,000 units respectively. How much is marginal cost per unit and how much is fixed cost ?

**Solution :**

ज्ञात है $TC = VQ + F$

पहली अवधि में $40{,}000 = 15{,}000\,V + F$

दूसरी अवधि में $50{,}000 = 20{,}000\,V + F$

दोनों समीकरणों को हल करने पर,

$$15{,}000\,V + F = 40{,}000$$
$$20{,}000\,V + F = 50{,}000$$
$$-- \quad -- \quad --$$
$$-5{,}000\,V = -10{,}000$$
$$V = \frac{10{,}000}{5} = \text{Rs. } 2$$

V का मूल्य समीकरण (i) में रखने पर,

$$15,000 \times 2 + F = 40,000$$
$$30,000 + F = 40,000$$
$$F = 40,000 - 30,000$$
$$F = Rs.10,000$$

इस प्रकार सीमावर्ती लागत 2 रु. प्रति इकाई तथा स्थिर लागत 10,000 रु. होगी।

## सीमावर्ती लागत–पद्धति के अन्तर्गत लाभ निर्धारण
## (Determination of Profit Under Marginal Costing)
## या
## लाभ गणना का सीमान्त उपगम
## (Marginal Approach to Profit Calculation)

सीमावर्ती लागत–पद्धति के अन्तर्गत लाभ गणना की विधि बताने से पूर्व 'दत्तांश के सिद्धान्त' (Theory of Contribution) पर प्रकाश डालना लाभदायक होगा। दत्तांश, जिसे कभी–कभी उपान्त (Margin) भी कहते हैं, बिक्री (S) का परिवर्तनशील लागत (VC) पर आधिक्य होता है। दत्तांश लाभ से बिल्कुल भिन्न होता है। यह पहले स्थायी व्यय को पूरा करता है और उसके बाद लाभ प्रदान करता है। सीमावर्ती लागत–पद्धति की यह आधारभूत मान्यता है कि बिक्री या परिवर्तनशील लागत पर आधिक्य (कुल मात्रा में या प्रति इकाई) स्थायी व्ययों की प्रतिपूर्ति के लिए उपान्त प्रदान करता है और संस्था के लाभ हेतु प्रावधान करता है। इस प्रकार दत्तांश को दो दृष्टियों से देखा जा सकता है – प्रथम, कहां से दत्तांश उत्पन्न होता है और द्वितीय, इसका कैसे उपयोग होता है। इन दोनों दृष्टिकोणों को समीकरण के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है।

यथा :

कहां से उत्पन्न होता है :

$$C = S - VC \qquad ...(i)$$

कैसे उपयोग किया जाता है :

$$C = F + Pt \qquad ...(ii)$$

इन दोनों से यह ज्ञात होता है :

$$S - VC = F + Pt \qquad ...(iii)$$

उक्त समीकरणों से कुछ अन्य महत्वपूर्ण समीकरण निकाले जा सकते हैं :

$$S = VC + F + Pt \qquad ...(iv)$$
$$VC = S - C \qquad ...(v)$$
$$F = C - Pt \qquad ...(vi)$$
$$Pt = C - F \qquad ...(vii)$$

उक्त समीकरणों से दत्तांश विश्लेषण के निम्न मुख्य तथ्य स्पष्ट होते हैं :

(i) यदि दत्तांश शून्य है, तो हानि स्थिर लागत के बराबर होगी क्योंकि केवल सीमान्त लागत ही पूरी हो पायेगी। अर्थात् C = zero, Loss equal to F

(ii) यदि दत्तांश ऋणात्मक है, तो हानि स्थिर लागत से अधिक होगी, क्योंकि सीमान्त लागत पूरी नहीं हो पायेगी। अर्थात् C = Negative, Loss > F

(iii) यदि दत्तांश धनात्मक है और स्थायी लागत से अधिक है, तो लाभ होगा, क्योंकि सीमान्त लागत व स्थिर लागत दोनों पूरी हो जायेंगी। अर्थात् C > F, profit

(iv) यदि दत्तांश धनात्मक है परन्तु स्थिर लागत से कम है, तो हानि होगी लेकिन हानि की मात्रा स्थिर लागत से कम होगी, क्योंकि पूरी सीमान्त लागत व स्थिर लागत का कुछ भाग पूरा होगा। अर्थात् C < F, Loss less than F.

(v) यदि दत्तांश धनात्मक है परन्तु स्थिर लागत के बराबर है, तो न लाभ होगा न हानि (अर्थात् सम–विच्छेद बिन्दु) अर्थात् C = F, No profit no loss.

दत्तांश के सिद्धान्त की व्याख्या के बाद अब हम सीमावर्ती लागत–पद्धति के अन्तर्गत लाभ निर्धारण विधि को अग्र रूप से सारांशित कर सकते हैं :

(अ) इस पद्धति के अन्तर्गत विक्रय–राशि की तुलना उसकी परिवर्तनशील लागत से की जाती है और अन्तर की रकम को दत्तांश कहते हैं। यह ध्यान में रखने योग्य तथ्य है कि केवल बेची गयी इकाइयों की परिवर्तनशील लागत को ही ध्यान में रखा जाता है।

(ब) सम्बन्धित अवधि की स्थिर लागत को दत्तांश में से घटा दिया जाता है और शेष को लाभ (हानि) मानते हैं।

(स) न बेची गयी इकाइयों (अर्थात् स्कन्ध) का मूल्यांकन सीमान्त लागत (परिवर्तनशील लागत) के आधार पर किया जाता है। स्कन्ध–मूल्यांकन के जरिये स्थिर लागत का कुछ भी अंश अगली अवधि में नहीं ले जाया जाता है। अतः अन्तिम स्कन्ध को लाभ निकालते समय ध्यान में नहीं रखा जाता है।

सामान्यतः सीमान्त लाभ की गणना हेतु एक विवरण बनाया जाता है, जिसका प्रारूप निम्न हो सकता है :

| | | | Rs. |
|---|---|---|---|
| | Sales....units @.... | (S) | ...... |
| *Less :* | Marginal Costs....units @.... | (VC) | ...... |
| | Contribution | (C) | ...... |
| *Less :* | Fixed Costs (total) | (F) | ...... |
| | Profit (+) Loss ( - ) | (Pt) | ...... |

यदि परम्परागत प्रारूप में सीमान्त लाभ–हानि खाता तैयार करने की जरूरत हो, तो सीमान्त लागत को बेची गयी वस्तु की लागत मानेंगे और उस दशा में दत्तांश की अवधारणा वित्तीय लेखांकन के सकल लाभ से मिलती–जुलती होगी।

**Marginal Profit & Loss Account**

| | | Rs. | | | Rs. |
|---|---|---|---|---|---|
| To Marginal Cost (detail) | (VC) | ...... | By Sales | (S) | ...... |
| To Contribution | (C) | ...... | | | |
| | | | | | ...... |
| To Fixed Cost | (F) | ...... | By Contribution | (C) | ...... |
| To Profit | (Pt) | ...... | | | |
| | | ...... | | | ...... |

यह विदित हो रहा है लाभ निकालने की उक्त विधि उस विधि से भिन्न है, जिसे Absorption Costing या Historical Costing या Total Costing कहते हैं और जिसके अन्तर्गत स्थिर लागत को भी उत्पादन लागत का अंग मानकर स्कन्ध मूल्यांकन में स्थिर लागत के कुछ भाग को

शामिल कर लिया जाता है। स्पष्ट है कि इन दोनों विधियों के अन्तर्गत लाभ की रकम असमान होगी, हालांकि परिस्थितियां एक समान हो सकती है। परन्तु यह ध्यान में रखना होगा कि लाभ की भिन्नता उसी अवधि में होगी, जब प्रारम्भिक या अन्तिम स्कन्ध हों। यदि उत्पादित व बेची गयी इकाइयां समान है, तो दोनों विधियों से लाभ की मात्रा एक समान ही ज्ञात होगी। निम्न उदाहरणों से इस बिन्दु को स्पष्ट किया गया है :

**Example :**

ए लि. एक एकक उत्पाद 'ट्रिन्का' का निर्माण करती है। नीचे दिये गये आंकड़ें 30 जून, 2015 को समाप्त होने वाले छः माह तथा बाद के 31 दिसम्बर, 2015 को समाप्त होने वाले छः माह से सम्बन्धित हैं :

A. Ltd. manufactures a single product 'TRINCA' The figures given below relate to six months ending 30th June, 2015 and to the following six months ending 31st Dec., 2015 :

| | 30th June, 2015 | 31st Dec., 2015 |
|---|---|---|
| Units of Trinca : | Rs. | Rs. |
| Produced | 30,000 | 8,000 |
| Sold | 15,000 | 23,000 |
| Variable cost per unit | 1.00 | 1.00 |
| Fixed Costs | 25,000 | 25,000 |

Normal Activity per annum :

Units of 'Trinca' to be produced 1,00,000 units
Units : Variable Cost Rs. 1.00 per unit
Fixed Costs Rs. 50,000

The selling price has been fixed at Rs. 2.50 per unit. There was no stock at 1st January, 2015. You are required to show Profit and Loss A/c for use by management in (a) Marginal approach, and (b) Total cost approach.

**Solution :**

**(a) Marginal Approach**

**Marginal Profit & Loss Statement of A. Ltd.**

| | *6 months to 30.06.2015* | *6 months to 31.12.2015* |
|---|---|---|
| | Rs. | Rs. |
| Sales @ Rs. 2.50 per unit | 37,500 | 57,500 |
| Less : Variable Costs | 15,000 | 23,000 |
| Contribution | 22,500 | 34,500 |
| Less : Fixed Costs | 25,000 | 25,000 |
| Net Loss (–) or Profit (+) | - 2,500 | +9,500 |

(b) Total Cost Approach

Profit and Loss Account

| *Particulars* | *6 months to 30.06.15* | *6 months to 31.12.15* | *Particulars* | *6 months to 30.06.15* | *6 months to 31.12.15* |
|---|---|---|---|---|---|
| | Rs. | Rs. | | Rs. | Rs. |
| To Opening Stock | | | By Sales | 37,500 | 57,500 |
| (15,000 units | | | By Closing Stock | | |

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| @ Rs. 1.50 p.u.) | -- | 22,500 | (15,000 units | | |
| To Cost of Production | 45,000 | 12,000 | @ Rs. 1.50 p.u.) | 22,500 | -- |
| To Fixed Costs not carried by units produced | 10,000 | 21,000 | | | |
| To Net Profit | 5,000 | 2,000 | | | |
| | 60,000 | 57,500 | | 60,000 | 57,500 |

Notes : (i) Costs of production has been arrived at as follows :

For six months to 30.06.15 = 30,000 units × Rs. 1.50
= Rs. 45,000

For six months to 31.12.15 = 8,000 units × Rs. 1.50
= Rs. 12,000

(ii) Since production was less than normal capacity in both period by 20,000 units and 42,000 units respectively the fixed costs relating to these units @ Rs. 0.50 must be charged to P/L A/c.

**Example :**

निम्न लागत समंक मैसर्स रोशन बद्रर्स द्वारा संचालित कारखाना से सम्बन्धित हैं :

The following costs data relate to a factory run by M/S Roshan Bros. :

| | 2014 | 2015 |
|---|---|---|
| Installed capacity (units) | 20,000 | 20,000 |
| Opening stock (units) | -- | 2,000 |
| Closing stock (units) | 2,000 | -- |
| Output (units) | 20,000 | 18,000 |
| Sales (units) | 18,000 | 20,000 |
| Selling price per unit | Rs. 14 | Rs. 14 |
| Variable costs per unit | Rs. 2.90 | Rs. 2.90 |
| Fixed costs per annum | Rs. 1,70,000 | Rs. 1,70,000 |

दोनों वर्षों के लिए अवशोषण लागत–पद्धति व सीमावर्ती लागत–पद्धति के अन्तर्गत लाभ निकालिए। स्टॉक के मूल्यांकन में फीफो आधार मान कर चलें।

Work out profit under absorption costing and marginal costing for two years. Assume FIFO bases for valuation of stocks.

***Solution :***

(A) *Profit determination – Absorption Costing*

| | 2014 | 2015 |
|---|---|---|
| | Rs. | Rs. |
| Opening Stock | Nil | 22,800 |
| Cost of production : | | |
| Variable | 58,000 | 52,200 |
| Fixed | 1,70,000 | 1,70,000 |
| | 2,28,000 | 2,45,000 |
| Less : Closing stock | 22,800 | -- |
| Cost of Sales | 2,05,200 | 2,45,000 |
| Profit | 46,800 | 35,000 |
| Sales | 2,52,000 | 2,80,000 |

Note : Closing stock has been valued @ Rs. 2.90 + $\frac{1,70,000}{20,000}$ = Rs. 11.40 per unit.

(B) *Profit determination – Marginal Costing :*

| | | 2014 | 2015 |
|---|---|---|---|
| | | Rs. | Rs. |
| | Sales | 2,52,000 | 2,80,000 |
| Less : | Variable costs of units sold | 52,200 | 58,000 |
| | Contribution | 1,99,800 | 2,22,000 |
| Less : | Fixed costs | 1,70,000 | 1,70,000 |
| | | 29,800 | 52,000 |

**Example :**

आभा लि. एक वस्तु का निर्माण करती है। इस वस्तु के सम्बन्ध में लागत सूचना है :

Abha Ltd. manufactures one product. Cost information in respect of this product are :

Total Fixed Costs Rs. 1,50,000
Variable Cost per unit Rs. 1
Selling price per unit Rs. 4.80
Normal Capacity 1,00,000 units per annum.

उत्पादन व विक्रय आंकड़े तीन वर्षों के लिए आगे दिये गये हैं :

Production and Sales data for three years are given below :

| Year | Production (Units) | Sales (units) | Sales (Rs.) |
|---|---|---|---|
| 2013 | 80,000 | 50,000 | 2,40,000 |
| 2014 | 40,000 | 50,000 | 2,40,000 |
| 2015 | 1,00,000 | 50,000 | 2,40,000 |

प्रत्येक वर्ष के लिए निर्माणी लागत वही थी, जो ऊपर इंगित की गयी हैं। 2013 के प्रारम्भ में तैयार माल की 10,000 इकाइयां 25,000 रु. पर मूल्यांकित थीं। आपको तैयार करना है:

(i) कुल लागत–विधि के अन्तर्गत आय विवरण
(ii) सीमावर्ती लागत–विधि के अन्तर्गत आय विवरण।

The manufacturing costs for each year were the same as indicated above. Finished goods at the start of 2013 were 10,000 units valued at Rs. 25,000. You are required to :

(i) prepare income statement under total cost approach.
(ii) prepare income statement under marginal approach.

**Solution :**

(i) *Income Statement – Total Cost Approach*

| | 2013 | 2014 | 2015 |
|---|---|---|---|
| | Rs. | Rs. | Rs. |
| Sales | 2,40,000 | 2,40,000 | 2,40,000 |
| Closing Stock | 1,00,000 | 75,000 | 2,00,000 |
| Total (A) | 3,40,000 | 3,15,000 | 4,40,000 |
| Opening Stock | 25,000 | 1,00,000 | 75,000 |
| Manufacturing Cost : | | | |
| Variable | 80,000 | 40,000 | 1,00,000 |
| Fixed | 1,50,000 | 1,50,000 | 1,50,000 |
| Total (B) | 2,55,000 | 2,90,000 | 3,25000 |
| Profit (A – B) | 85,000 | 25,000 | 1,15,000 |

**नोट** – अन्तिम स्टॉक की इकाइयां 2.50 रु. प्रति इकाई की लागत पर मूल्यांकित की गयी हैं, क्योंकि सामान्य क्षमता पर स्थिर लागत $\frac{1,50,000}{1,00,000}$ = 1.50 रु. प्रति इकाई और परिवर्तनशील लागत 1 रु. प्रति इकाई है। अन्तिम स्टॉक की इकाइयां 2013 में 40,000; 2014 में 30,000 तथा 2015 में 80,000 होंगी।

(ii) *Income Statement – Marginal Approach*

| | 2013 | 2014 | 2015 |
|---|---|---|---|
| | Rs. | Rs. | Rs. |
| Sales @ Rs. 4.80 | 2,40,000 | 2,40,000 | 2,40,000 |
| Less : Variable Cost @ Rs. 1 | 50,000 | 50,000 | 50,000 |
| Contribution | 1,90,000 | 1,90,000 | 1,90,000 |
| Less : Fixed Costs | 1,50,000 | 1,50,000 | 1,50,000 |
| Profit | 40,000 | 40,000 | 40,000 |

**लाभ पर प्रारम्भिक व अन्तिम स्टॉक का प्रभाव**

उपरोक्त उदाहरणों से सीमावर्ती लागत के अन्तर्गत और अवशोषण लागत के अन्तर्गत लाभ में जो अन्तर दिखायी देता है, वह केवल स्टॉक के कारण ही है। इन उदाहरणों के आधार पर निम्न निष्कर्ष निकाल सकते हैं :

(अ) जब तक प्रारम्भिक या अन्तिम स्टॉक नहीं होता है अर्थात् एक अवधि के सम्पूर्ण उत्पादन को उसी अवधि में बेच दिया जाता है, तो अवशोषण लागत व सीमावर्ती लागत के अन्तर्गत निकाला गया लाभ एकसमान होगा।

(ब) यदि प्रारम्भिक स्टॉक नहीं है और बिक्री उत्पादन से कम है अर्थात् अन्तिम स्टॉक है तो अवशोषण लागत–पद्धति द्वारा दर्शाया गया लाभ सीमावर्ती लागत–पद्धति द्वारा आकलित लाभ से अधिक होगा।

(स) यदि बिक्री उत्पादन से अधिक है अर्थात् प्रारम्भिक स्टॉक है लेकिन अन्तिम स्टॉक नहीं है, तो अवशोषण लागत–पद्धति द्वारा दर्शाया गया लाभ सीमावर्ती लागत–पद्धति द्वारा आकलित लाभ से कम होगा।

(द) यदि प्रारम्भिक स्टॉक और अन्तिम स्टॉक दोनों हैं और अन्तिम स्टॉक की मात्रा प्रारम्भिक स्टॉक की मात्रा से अधिक है, तो यह मानते हुए कि दोनों का मूल्यांकन समान दर पर हुआ है, अवशोषण लागत–पद्धति द्वारा दर्शाया गया लाभ सीमावर्ती लागत–पद्धति द्वारा आकलित लाभ से अधिक होगा।

(य) यदि अन्तिम स्टॉक की मात्रा प्रारम्भिक स्टॉक से कम है, तो यह मानते हुए कि दोनों का मूल्यांकन समान दर पर हुआ है, अवशोषण लागत–पद्धति द्वारा दर्शाया गया लाभ सीमावर्ती लागत–पद्धति द्वारा आकलित लाभ से कम होगा।

## सीमावर्ती लागत–पद्धति व अवशोषण लागत–पद्धति में अन्तर
## (Difference between Marginal Costing and Absorption Costing)

(i) अवशोषण लागत–पद्धति के अन्तर्गत अवधि (Period) महत्वपूर्ण होती है और एक अवधि में किये गये सभी खर्चे कुल लागत के रूप में माने जाते हैं। सीमावर्ती लागत–पद्धति में उत्पाद (Product) महत्वपूर्ण माना जाता है; एक अवधि में किये गये खर्च जिनका उत्पादन से कोई सम्बन्ध नहीं होता, ध्यान में नहीं रखे जाते हैं। इस

प्रकार अवशोषण लागत–पद्धति में स्थिर व्यय को कुछ लागत का अंग मानते हैं, परन्तु सीमावर्ती लागत–पद्धति में उन्हें उत्पादन लागत के अंग नहीं मानते हैं।

(ii) लाभ–निर्धारण करते समय स्थिर व्यय की कम या अधिक पुनः प्राप्ति (under or over recovery) को अवशोषण लागत–पद्धति में लाभ–हानि खाता से चार्ज किया जाता है, जबकि सीमावर्ती लागत–पद्धति में ऐसा नहीं किया जाता है।

(iii) अवशोषण लागत–पद्धति में स्कन्ध के मूल्य में स्थिर व्यय का भी कुछ अंश शामिल होता है और इस प्रकार चालू वर्ष का स्थिर व्यय का कुछ भाग अगले वर्ष में और गत वर्ष के स्थिर व्यय का कुछ भाग चालू वर्ष में ले जाया जाता है। सीमावर्ती लागत–पद्धति में स्कन्ध के मूल्य में स्थिर व्यय का कुछ भी अंश शामिल नहीं होता है; सम्पूर्ण स्थिर व्यय को चालू वर्ष के दत्तांश में से ही पूरा कर लिया जाता है।

(iv) यदि उत्पादन व बिक्रीत मात्राएं एक समान न हों तो उक्त (iii) के कारण दोनों पद्धतियों के अन्तर्गत लाभ की रकम एक समान नहीं होगी। यदि किसी अवधि में उत्पादन हो परन्तु बिक्री न हो तो सम्पूर्ण उत्पादन को स्कन्ध के रूप में अगली अवधि में ले जाया जायेगा और किसी भी प्रकार का लाभ–हानि अवशोषण लागत–पद्धति के अन्तर्गत नहीं होगा; परन्तु सीमावर्ती लागत–पद्धति के अन्तर्गत हानि स्थिर व्यय के बराबर होगी।

(v) अवशोषण लागत–पद्धति का प्रयोग दीर्घकालीन लागत व कीमत निर्धारण में अधिक उपयुक्त माना जाता है, सीमावर्ती लागत–पद्धति विभिन्न प्रकार की प्रबन्धकीय समस्याओं के निराकरण, निर्णयन, नियोजन व नियन्त्रण में अधिक सहायक होती है।

## सीमावर्ती लागत–पद्धति के लाभ
## (Advantages of Marginal Costing)

(i) यह पद्धति लागत–लेखांकन प्रक्रिया को सरल व बोधगम्य बना देती है। स्कन्ध–मूल्यांकन सरल हो जाता है और स्थिर व परिवर्तनशील लागत का अलग–अलग बंटवारा करके तैयार किया गया आय विवरण प्रबन्ध के लिए अधिक बोधगम्य होता है।

(ii) इस पद्धति के अन्तर्गत उत्पादन स्तर में परिवर्तन या स्कन्ध–मात्रा में परिवर्तन का लाभ पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। लाभ का सीधे बिक्री से सम्बन्ध होता है। इससे प्रबन्ध को यह सहायता मिलती है कि वह बदलती बिक्री मात्रा की दशा में वास्तविक लाभ की मात्रा ज्ञात कर सकता है।

(iii) यह पद्धति अर्थपूर्ण प्रबन्धकीय रिपोर्टिंग का ठोस आधार प्रदान करती है। इस पद्धति के द्वारा बिक्री पर आधारित सूचनाएं दी जाती हैं, जो क्षमता की सही स्थिति को दर्शाती है। अवशोषण लागत–पद्धति में प्रारम्भिक व अन्तिम स्कन्ध के कारण लाभ की सही स्थिति ज्ञात नहीं हो पाती है।

(iv) यह पद्धति लाभ नियोजन (विशेषतः अल्पकालीन) में भी सहायता देती है। लाभ नियोजन के लिए विभिन्न संचालनात्मक परिस्थितियों में 'लागत व्यवहार' का ज्ञान आवश्यक होता है। इस पद्धति में स्थिर व परिवर्तनशील लागत का भेद करते हुए लागत व्यवहार का व्यापक अध्ययन किया जाता है और दत्तांश के निर्धारण के माध्यम से लागत–लाभ–मात्रा सम्बन्ध के अध्ययन द्वारा लाभ नियोजन में सहायता ली जा सकती है।

(v) लाभदायकता–मूल्यांकन में भी यह पद्धति यन्त्र के रूप में सेवा करती है। जब कभी भी विभिन्न उत्पादों, विभागों या विक्रय–क्षेत्रों व माध्यमों की लाभदायकता का तुलनात्मक अध्ययन करना हो, तो यह पद्धति अधिक सहायक बन सकती है।

(vi) सीमान्त लागत विवरण से उत्पादन–मिश्रण में किये गये परिवर्तन का विक्रय मात्रा पर प्रभाव स्पष्टतः दृष्टिगोचर होता है, जो वैकल्पिक कार्यों के लाभ पर पड़ने वाले प्रभाव के निर्धारण से प्रबन्ध को सुविधा प्रदान करता है।

(vii) अनुकूलतम उत्पादन मात्रा व उत्पादन–मिश्रण एवं विक्रय–मिश्रण के निर्धारण में यह पद्धति अधिक सहायक होती है।

(viii) लागत नियन्त्रण व लागत में कमी के साधन के रूप में भी इस पद्धति का अधिक योगदान होता है। स्थिर व्यय व परिवर्तनशील व्यय में भेद करके यह पद्धति लचीला बजट बनाने में सहायता पहुंचाती है। चूंकि यह पद्धति उत्पादन लागत के रूप में केवल परिवर्तनशील लागत को ही मान्यता देती है, इन लागतों के लिए दायित्व निर्धारित करना सरल हो जाता है और उन पर नियन्त्रण भी सरल हो जाता है।

(ix) मूल्य नीति व इसके निर्धारण में भी यह पद्धति अधिक योगदान प्रदान करती है। जब कभी भी अनुकूलतम मूल्य, न्यूनतम मूल्य, राशिपातन मूल्य, आदि के निर्धारण की समस्या हो, तो इस पद्धति द्वारा प्रदत्त सूचनाओं के आधार पर ठोस व सही निर्णय लिये जा सकते हैं।

(x) वह प्रारूप, जिसके अनुसार सीमान्त लागत सूचना प्रस्तुत की जाती है, प्रबन्धकीय विचार व दर्शन के अनुरूप है। यह ऐसी सूचना प्रदान करती है जिसके आधार पर प्रबन्ध संचालन–परिणाम को और अच्छी तरह से समझा जा सकता है और नीति–निर्णय ले सकता है।

## सीमावर्ती लागत–पद्धति के दोष या हानियां
## (Demerits or Disadvantages of Marginal Costing)

कुछ विद्वानों ने सीमावर्ती लागत–पद्धति की आलोचना करते हुए इसके दोषों पर प्रकाश डाला है। यद्यपि तथाकथित दोष इस पद्धति की सीमाएं हैं फिर भी इन दोषों पर प्रकाश डाला गया है। संक्षेप में, इस पद्धति के निम्न दोष बताये गये हैं :

(i) यह पद्धति विक्रय–क्रिया पर अधिक जोर देती है, जबकि व्यावसायिक–क्षमता की दृष्टि से उत्पादन व विक्रय दोनों क्रियाएं समान महत्व रखती हैं।

(ii) स्कन्ध का केवल सीमान्त लागत के आधार पर मूल्यांकन वित्तीय प्रबन्धक की दृष्टि से 'कम' माना जा सकता है और इसके कारण कार्यशील पूंजी की समस्या उत्पन्न हो सकती है।

(iii) दीर्घकालीन मूल्य–नीति निर्धारण में यह असफल है।

(iv) बाह्य व्यक्तियों (विशेषकर कर–अधिकारी) के रिपोर्टिंग में यह पद्धति उपयुक्त नहीं है।

(v) यह पद्धति समय–कारक को उचित महत्व नहीं प्रदान करती है।

## सीमावर्ती लागत–पद्धति की सीमाएं
## (Limitations of Marginal Costing)

यद्यपि सीमावर्ती लागत–पद्धति प्रबन्ध के लिए महत्वपूर्ण यन्त्र साबित हो सकती है, इसके प्रयोग में अनेक खतरे पैदा हो सकते हैं। इन खतरों से हमेशा सावधान रहना चाहिए। ये खतरे (जिन्हें हम सीमाओं के रूप में भी मान सकते हैं) निम्न हैं :

(i) सीमावर्ती लागत–पद्धति की अवधारणा पूर्णतः कुल लागत के स्थिर व परिवर्तनशील लागत में वर्गीकरण पर आधारित है और इस प्रकार का वर्गीकरण वास्तव में एक बहुत ही जटिल कार्य है, विशेषकर उन खर्चों के सम्बन्ध में जो अंशतः स्थिर व अंशतः परिवर्तनशील होते हैं। ऐसे खर्चों के स्थिर व परिवर्तनशील अंगों को अलग करने की अनेक विधियों के बावजूद भी सही–सही अंश ज्ञात करना असम्भव ही है।

(ii) इस बात की भी सम्भावना है कि प्रदत्त क्षमता के भीतर भी स्थिर लागत में परिवर्तन हो जाय और परिवर्तनशील लागत भी उत्पादन मात्रा के परिवर्तन से भिन्न अनुपात में परिवर्तित हो। ऐसी स्थिति में सीमावर्ती लागत की मान्यता ही समाप्त हो जायेगी और इसका प्रयोग खतरनाक हो सकता है।

(iii) प्रबन्धकीय निर्णयों में सहायता हेतु सीमावर्ती लागत–पद्धति स्थायी व्ययों को यह मानकर शामिल नहीं करती है कि ये व्यय वर्तमान क्रिया–स्तर पर पूर्णतः अवशेषित ही हो रहे हैं। परन्तु कभी–कभी स्थायी व्ययों को ध्यान में रखना खास तौर पर कई उत्पादों की दशा में गलत निर्णय दे सकता है।

(iv) यह पद्धति सभी प्रकार के व्यवसायों के लिए उपयुक्त नहीं है। उदाहरण के लिए, एकल कार्य (Job) या ठेका व्यवसाय में इस पद्धति का प्रयोग सरल कार्य नहीं है।

(v) बजटरी नियन्त्रण व प्रमाप लागत–पद्धति सीमावर्ती लागत–पद्धति से श्रेष्ठतम हैं और जब उनका प्रयोग न किया जा सकता हो तभी इस पद्धति का प्रयोग करना चाहिए।

## सीमावर्ती लागत–पद्धति के उपयोग
## (Uses or Applications of Marginal Costing)

प्रबन्ध लेखापालक की यन्त्र–पेटी में सीमावर्ती लागत–पद्धति ने महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया है। इस पद्धति से ऐसी सूचना का सृजन व प्रस्तुतीकरण किया जा सकता है जो नियोजन व नीति निर्णयों में प्रबन्ध को पर्याप्त सहायता दे सकती है। अल्पकालीन प्रबन्धकीय समस्याओं व

तत्सम्बन्धी निर्णयों में यह पद्धति प्रबन्ध के लिए अपरिहार्य बन गयी है। कुछ महत्वपूर्ण प्रबन्धकीय समस्याएं व निर्णय–क्षेत्र, जहां यह पद्धति लाभदायक हो सकती है, निम्न हैं :

(i) लाभ के लक्ष्य की प्राप्ति
(ii) क्रिया–स्तर में वृद्धि
(iii) क्रिया का सर्वोत्तम स्तर
(iv) एक उत्पाद या विभाग को बन्द करना
(v) नये उत्पाद या विभाग को शुरू करना
(vi) अनुकूलतम उत्पाद–मिश्रण
(vii) क्रियाओं को बर्खास्त करना
(viii) बनाओ या खरीदो
(ix) अनुकूलतम विक्रय–मिश्रण
(x) विक्रय–माध्यम का चुनाव
(xi) विक्रय–सम्वर्द्धन योजनाओं का मूल्यांकन
(xii) बाजार सम्वर्द्धन
(xiii) एक बाजार या क्षेत्र को चालू न रखना
(xiv) मूल्य नीति (अल्पकालीन)
(xv) मूल्य परिवर्तन

उक्त वर्गीकरण में थोड़ी कमी अवश्य है क्योंकि कई समस्याएं एक–दूसरे के अनुरूप ही हैं। साथ ही उक्त में कई समस्याओं का निराकरण सम–विच्छेद बिन्दु विश्लेषण से भी किया जा सकता है। यह भी स्मरणीय है कि सीमावर्ती लागत–विधि द्वारा जब हम उक्त समस्याओं का निराकरण करने का प्रयास करते हैं, तो उसे निर्णय लेखांकन (Decision Accounting) भी कहते हैं।